



ईशादिषोपनिषद

## ॥ जाहिरखबर ॥

ॐ



# ईशाद्यष्टोपनिषद्

अर्थात्

ईशा, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय,
औ ऐतरेय उपनिषद्

## पंडित श्रीपीतांबरजीकृत

सटीक संपूर्ण शंकरभाष्यानुसार वेदांतदीपिकानामक
भाषाटीकासहित.

द्वितीयाऽऽवृत्ति.

---

कर्त्तानैं, सर्व मुमुक्षुनके हितार्थ

कच्छदेशाधिपति महाराजा महाराओ
श्री, खेंगारजीके आश्रयसैं

मुंबईमैं

जावजी दादाजी इन्होंके

"निर्णयसागर" प्रेसमैं छपवायके प्रकट करी.

---

श्लोकः

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥ १ ॥

---

विक्रमसंवत् १९५०. इंग्रेजी सन १८९३.



# अर्पणपत्र.

श्री खेंगार वंश सिंधु सुधाकर, स्वदेशीयराजमंडलमृगेंद्र, अष्टदिक्पालांश, सर्वदेशप्रसिद्धप्रभाव, सुकीर्तिकुसुमितभिक्षुपक्षिपादप, सप्तप्रकृतिपालक, राजधर्मधुरंधर, विद्यादिशुभगुणवर्द्धक, प्रजारंजनाद्यनेकोत्तमगुणमणिमंडित, पुण्यप्रतापपुंज, परमरमणीय नारायणसरोवर द्वारिकापुरकरभूषणभूषित समुद्रमेखलांकित भुजनगरभालतिलक कमनीय श्रीकच्छधराऽधिपति, महाराजाधिराज, महाराओ श्री ७ खेंगारजी सवाईबहादुर !

सर्वशास्त्रशिरोमणि च्यारीवेदनका शिरोभाग परममान्य उपनिषद्रूप वेदांतशास्त्र है। वे उपनिषद् अनेक (१०८) हैं, तिनविषै दशोपनिषद् मुख्य हैं; भाष्य अरु टीकासहित तिनका या देशकी प्रजाकूं उपयोगी कोउ भाषांतर होयके अद्यपर्यंत कहूं बी छप्या नहीं है। यातैं तिनमैंसैं भाष्य टीकासहित ईशादि अष्ट उपनिषद्नका हिंदुस्थानी भाषांतर करिके छपानेकी इच्छा अनेक सज्जनोकी सूचनासैं मेरे मनमैं भईथी सो आपनैं आपकी प्रजाके हितेच्छु मुख्यमंत्री श्रीमणिभाई यशभाई द्वारा पूर्ण करी। तासैं मेरेकूं औ अनेक सज्जनोकूं परमसंतोष भया, अरु सर्वदेशकी मोक्षेच्छु प्रजाका कल्याण होवेगा। यह आपका बहुत उपकार भयाहै। यातैं अधिक पुण्यप्रतापसहित आपकी वंशपरंपरा, चंद्रसूर्यपर्यंत स्थित होहु; औ आप, दिन दिन अधिक अधिक पुण्यप्रतापसहित चिरंजीव रहो औ परमश्रेयकूं पावो। यह मेरा आशीर्वाद है ॥

॥ श्लोक ॥

मम मनःस्थसरस्वतिमोदतो भवतु मंजुलश्रीभुजभूपतेः।
सकलराजशिरोमणिसद्धरेस्तदनु सद्गृहिणामतिमंगलम् ॥१॥
पीतांबरप्रणीता या श्रीमद्वेदांतदीपिका।
समर्पिता महाविष्णौ भूयात् सा श्रेयसे नृणाम् ॥ २ ॥

लि० पंडित पीतांबर पुरुषोत्तमजी।



# ॥ अथ प्रस्तावना ॥



सच्चिदानंदस्वरूप औ मायाविशिष्ट जो परमेश्वर है, सो आकाशसैं आदि लेके स्थूलदेहपर्यंत जगत्की रचना करिके तिसविषै जीवरूपसैं प्रवेशकूं पायाहै। तिसतैं पूर्वहीं भांग पीनेहारा पुरुष जैसैं भांगके पानसैं पूर्वहीं खट्टाई आदिक प्रमादनिवर्त्तक पदार्थकूं पास रखता है, ताकी न्यांई ईश्वर, संसारनिवृत्तिके साधन च्यारी वेदनकूं अग्नितैं धूमवत् वा निःश्वासवत् अनायाससैं प्रकट करता भया।

वे वेद अनादि औ ईश्वररचित होनेतैं परम प्रमाण हैं, औ जीवरचित नहीं, यातैं अपौरुषेय कहिये हैं। किंवा पुरुषरचित वाक्य, भ्रांति प्रमाद विप्रलिप्सा औ साधनकी अपूर्णता; इन च्यारी दोषनकरि युक्त होनेतैं स्वतःप्रमाण नहीं, किंतु वेदानुसारी प्रमाण हैं औ वेदविरुद्ध अप्रमाण हैं। उक्त च्यारी दोषनसैं रहित ईश्वरवाक्य वेद, स्वतःप्रमाणरूप हैं; यातैं अविद्यासैं संसारदशाकूं प्राप्त भयेकी न्यांई प्राप्त भया ( जीव हुया ) सो परमात्मा; जब तिन वेदनकूं आश्रय करताहै, तब संसारतैं उद्धारकूं पावताहै।

जैसैं स्थूलशरीरविषै वात कफ पित्त भेदतैं तीनि दोष हैं, वे रोगके कारण हैं; तिनकी निवृत्तिअर्थ धन्वंतरि भगवानूनैं आयुर्वेद कियाहै। तैसैं मनविषै मल विक्षेप आवरण भेदतैं तीनि दोष हैं, वे संसारके कारण हैं; तिनकी निवृत्तिअर्थ ईश्वरनैं च्यारी वेद किये हैं। तिनमैं कर्मकांड उपासनाकांड ज्ञानकांड, ये तीनि कांड हैं. मल नाम पापका है, तिसकी निवृत्ति कर्मकांडविषै उक्त कर्मके अनुष्ठानसैं होवैहै. विक्षेप नाम चंचलताका है, तिसकी निवृत्ति उपासनाकांडविषै उक्त सगुण निर्गुणरूप उपासनासैं होवै है। आवरण नाम अज्ञानका है, तिसकी निवृत्ति ज्ञानकांडविषै उक्त ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माके ज्ञानसैं होवै है। यातैं इसजन्मविषै अथवा पूर्वजन्मविषै किये कर्म उपासनासैं जिनके मल औ विक्षेप दोष दूरी

भये हैं; याहीतैं विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति, मुमुक्षुता, ये च्यारी साधन जिनकूं प्राप्त भये हैं औ केवल आवरणदोषहीं जिनकूं अवशेष रहा है, वे अधिकारी, इस उपनिषद्रूप ज्ञानकांडकूं ब्रह्मनिष्ठ गुरुद्वारा श्रवण करिके, तिस श्रवण किये ब्रह्म आत्माकी एकतारूप अर्थका मनन निदिध्यासन करिके, स्वरूपके साक्षात्कारसैं सर्व अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं पावते हैं।

वे उपनिषद् अनेक हैं, तथापि ईशावास्य, केन, कठवल्ली, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्यक, ये दश उपनिषद् मुख्य हैं। इनकेउपर श्रीमत् शंकराचार्यके किये भाष्य औ आनंदगिरि आदिक तिन्हके शिष्यनके किये संस्कृत व्याख्यान हैं। वे संस्कृतके अभ्याससैं रहित अधिकारिनकूं दुर्बोध हैं।

यातैं हमनैं ईशा आदिक अष्ट उपनिषदनकी [औ अबी बृहदारण्यक संपूर्ण छपवायके छांदोग्यकी] वेदांतदीपिकानामक भाषाटीका करनेका उद्योग किया है, सो निष्फल नहीं; किंतु संस्कृतके अभ्यासविषै अल्पमतिवाले अधिकारीनके अर्थ सफल है।

औ जैसैं आयुर्वेदविषै उक्त औषधनका बोध, ताके अनुसारी अन्य संस्कृत वा प्राकृत ग्रंथनसैं बी यथार्थ होवै है; तैसैं उपनिषदनविषै उक्त अर्थका बोध, ताके अनुसारी अन्य संस्कृत वा प्राकृत ग्रंथनसैं बी यथार्थ होवै है; यातैं बी भाषाटीकाका उद्योग निष्फल नहीं, किंतु संस्कृत व्याख्यानसहित उपनिषदनके श्रवण वा विचारसैं रहित स्त्रीपुरुषरूप सर्व जातिवाले अधिकारिनके अर्थ सफल है।

किंवा उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति,ये षट् तात्पर्यकेनिर्णायक लिंग हैं। इनका वर्णन श्रीपंचदशीकी तत्त्वप्रकाशिकानामक भाषाटीका हमनैं करी है, तामैं तृप्तिदीपके १०१ श्लोकके टिप्पणविषै किया है सो तहां देखलेना। इन लिंगनसैं वेदवाक्यनके तात्पर्यका निश्चय होवै है।

उपनिषद्नका तात्पर्य अद्वैत ब्रह्मविषै है। तिसके जनावनेहारे लिंग, श्रीमत् शंकराचार्यनैं तहां तहां प्रसंगसैं दिखाये हैं, औ आनंदगिरि स्वामीकृत तत्त्वालोकनामक ग्रंथविषै स्पष्ट लिखेहैं। औ अस्मत्कृत श्रुतिषड्लिंगसंग्रहनामक लघुग्रंथ जो याके आरंभमैं इस प्रस्तावनाके अनंतर धरा है॥ तामैं वी उदाहरणसहित लिखे हैं॥ इन षट् लिंगनसैं उपनिषद्रूप वेदांतके तात्पर्यका निश्चय श्रवण कहिये है। तिस श्रवणसैं प्रमाणगत संदेहकी निवृत्ति होवै है। सो श्रवण, अद्यपर्यंत (यातैं पूर्व) प्राकृतभाषाके अभ्यासी जननकूं दुर्लभ है, यातैं वी यह भाषाटीकाका उद्योग निष्फल नहीं; किंतु भाषावालोंकूं वी ज्ञानके प्रतिबंधरूप प्रमाणगत संदेहका श्रवणकी सिद्धिद्वारा निवर्त्तक होनेतैं सफल है।

या ग्रंथमैं संकेत यह है:—इस भाषाटीकाविषै संपूर्ण शंकरभाष्यका अर्थ धऱ्या है, ताके अंतर्गत मूलश्रुतिमात्रके अर्थके बोधक जे पद हैं वे किंचित् वडे अक्षरनमैं रखे हैं; सो सूक्ष्मदृष्टिसैं विचारनेवालोंकूं विदित होवैगा। एक एक उपनिषदके मूलश्रुतिवाक्यनके अंक, प्रथम आवृत्तिविषै अनुक्रमसैं रखे थे [अबी द्वितीय आवृत्तिविषै अध्याय किंवा खंडनके विभागके अनुसार धरे हैं। तिनके अनुसारहीं अनुक्रमणिकाविषै वी वाक्यनके अंक धरे हैं] सो अभ्यासकी सुगमताअर्थ हैं। स्वामी श्री आनंदगिरिकृत टीकामैं जो जो विशेष उपयोगी अर्थ है, सो सो अर्थ; भाषाटीकाके पदके ऊपर एक एक उपनिषद्मैं अनुक्रमसैं अंक लगायके ताके अनुसार नीचे अंक लगायके तहां जो टिप्पण धऱ्या है तामैं लिखा है। क्वचिद्भाष्यके पदका अर्थ विकट जानिके टिप्पणविषै धऱ्या है, औ क्वचित् संस्कृत टीकाके पदका अर्थ अतिशयसंबंधी जानिके भाषाटीकाविषै धऱ्या है। क्वचित् हमनैं स्वतंत्र बी टिप्पण किया है औ बहुतसा टिप्पणतो संस्कृत टीकाके अनुसारहीं है।

यामैं पर्याय शब्द ( ) ऐसैं द्विकपाल चिन्हमैं धरे हैं। अपर्या-

यरूप अधिक अर्थ जो है, सो [ ] ऐसै चतुष्कोण चिन्हमैं धऱ्या है । मूलके अक्षरार्थसैं मिलित पदनके बीच–ऐसा संयोग चिन्ह धऱ्या है ।

इसमैं जे जे चिन्ह धरे हैं, तिनके नाम औ आकार नीचे लिखे हैं ।

| | |
|---|---|
| , स्वल्पविराम. | ; अर्धविराम. |
| . पूर्णविराम. | ॥ प्रसंगविभागदर्शक चिन्ह. |
| :–निर्देशचिन्ह. | ! आश्चर्यचिन्ह. |
| ? प्रश्नचिन्ह. | – संयोगचिन्ह. |
| ( ) स्पष्टदर्शक चिन्ह. | [ ] चतुष्कोणचिन्ह. |

तैत्तिरीय उपनिषद्के वल्लीरूप अध्यायके अंतर्गत अनुवाक नामवाले प्रकरण हैं; तिनके अंतमैं कहुं अधिक पद धरे हैं औ तिनका हमनैं अर्थ बी लिख्या है; जैसैं प्रथम वल्लीके द्वितीय अनुवाकके अंतमैं ॥ शिक्षा पंच ॥ ऐसा पद है, औ यामैं पांच प्रकारकी शिक्षाकूं कहैंगे ॥ यह ताका अर्थ लिख्या है । वे पद वा पदार्थ मूलके अर्थसैं संगतिवाले नहीं, किंतु मंत्रार्थके स्मरणार्थ हैं । औ तीनो वल्लीके अंतमैं बी विस्तारसैं ऐसे वाक्य हैं, वे बी ऐसैहीं जानि लेनें ।

या ग्रंथका विषय श्रुतिषड्लिंगके अनंतर धरी हुई अनुक्रमणिकाविषै स्पष्ट लिख्या है; तहां देखलेना ।

या ग्रंथकी प्रसिद्धिरूप कार्यविषै हमारे परमसुहृत्, सत्समागमी, जूनागढके एजंट राजमान्य राज्यश्री मनःसुखराम सूर्यरामनैं बहुत श्रम स्वीकार किया है औ श्रीभावनगरके महाराज तथा श्री वढवाणके दर्बार इनसैं आदिलेके कितनैक सद्गृहस्थोनैं इस कार्यविषै उत्तेजन दिया है ।

**लि० पंडित पीतांबर पुरुषोत्तमजी ।**

---

# ॥ अथ ईशाद्यष्टोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥

## अथ ईशोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥ १ ॥

## अथ केनोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥ २ ॥



## अथ कठोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥ ३ ॥

### अथ प्रथम अध्याय ॥ १ ॥

---

अथ प्रश्नोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥ ४ ॥

---

## ॥ अथ मुंडकोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥ ५ ॥

---

## अथ मांडूक्योपनिषद्सहित गौडपादीय कारिका अनुक्रमणिका ॥ ६ ॥

# अथ तैत्तिरीयोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥ ७ ॥

## अथ शिक्षाध्यायरूप प्रथम वल्ली ॥ १ ॥

---

## अथ ऐतरेयोपनिषद् अनुक्रमणिका ॥ ८ ॥

### प्रथम अध्याय ॥ १ ॥

अथ द्वितीय खंड २ ॥ मंत्र १–५ ॥



अथ तृतीय खंड ३ ॥ मंत्र १–१४



अथ द्वितीय अध्यायरूप चतुर्थखंड ४ ॥ मंत्र १–६

परलोकतैं भ्रष्ट भये जीवका पुरुष (पिता) विषै वीर्यरूपसैं गर्भभावकी प्राप्तिपूर्वक स्त्री (माता)के उदरविषै योनिद्वारा वीर्यका सिंचनरूप प्रथम जन्म है। स्त्रीविषै गर्भरूपसैं स्तनादि अपने अंगकी न्याईं अभेदभावकूं पाया हुया सो पुरुष ताकूं नाश करता नहीं औ सो स्त्री ताकूं पालन करै है। गर्भरूप भर्त्ताकी पालक सो स्त्री भर्त्ताकरि पालनीय है। जन्मतैं पूर्व ता गर्भकूं स्त्री धारण करे है। औ पिता, जन्मतैं आगे पीछे जो पुत्रका पालन

इति ऐतरेयोपनिषद् अनुक्रमणिका समाप्ता ॥ ८ ॥

॥ इति ईशाद्यष्टोपनिषदामनुक्रमणिका समाप्ता ॥

---

## ॥ अवशिष्ट सूचना ॥

इस द्वितीय आवृत्तिविषै मांडूक्योपनिषत्‌की गौडपादीय कारिकासैं आदिलेके ऐतरेयोपनिषत्पर्यंत प्रतिप्रकरण। प्रतिवल्ली औ प्रतिखंडके विषय पृष्ठनके शिरपर दिखाये हैं। औ कितनैक शब्दनकी शुद्धि करी है औ प्रतिकरणके चढते अंक पलटायके भिन्न भिन्न यथायोग्य अंक किये हैं औ ताके अनुसारहीं अनुक्रमणिकामैं अंक कियेहैं॥ औ याके साथि दशोपनिषदनके तात्पर्यका निश्चय श्रुतिषड्लिंग संग्रह नामक लघुग्रंथ धराहै। इतना विशेष है॥



ॐ

प्रत्यगभिन्नब्रह्मणे नमः ॥

# अथ श्रीश्रुतिषड्लिंगसंग्रहः प्रारभ्यते ॥

## उपोद्घातकीर्त्तनम् ॥ १ ॥

**स्मृत्वाऽद्वैतपरात्मानं शंकरं परमं गुरुम् ।**
**तात्पर्यसंविदे वक्ष्ये श्रुतिषड्लिंगसंग्रहम् ॥ १ ॥**

टीकाः—अद्वैत परमात्मारूप जो परमगुरु शंकर हैं । तिनकूं सरण करिके । श्रुतिनके तात्पर्यके ज्ञान अर्थ । मैं श्रुतिषड्लिंगसंग्रह नामक लघु ग्रंथकूं कहताहूं ॥ १ ॥

**विषयासक्ति-मानस्थ-मेयस्थ-संशय-भ्रमाः ।**
**चत्वारः प्रतिबंधाः स्युर्ज्ञानादार्ढ्यस्य हेतवः ॥२॥**

टीकाः—१ विषयासक्ति २ प्रमाणगतसंशय ३ प्रमेयगतसंशय औ ४ भ्रम कहिये विपर्यय । ये च्यारी ज्ञानकी अदृढताके हेतु प्रतिबंध होवैहैं ॥ २ ॥

**आद्यस्य विनिवृत्तिः स्याद्वैराग्यादिचतुष्टयात् ।**
**श्रवणेन द्वितीयस्य मननात्तार्त्तीयस्य च ॥ ३ ॥**

टीकाः—प्रथमकी निवृत्तिं । वैराग्य है आदि जिसके ऐसे साधनोंके चतुष्टयतैं होवैहै औ द्वितीयकी निवृत्ति । श्रवणसैं होवैहै औ तृतीयकी निवृत्ति । मननतैं होवैहै ॥ ३ ॥

**ध्यानेन तु चतुर्थस्य विनिवृत्तिर्भवेद्ध्रुवम् ।**
**पूर्वपूर्वानिवृत्त्या नै-वोत्तरोत्तरनाशनम् ॥ ४ ॥**

टीकाः—औ चतुर्थ प्रतिबंधकी निवृत्ति। निदिध्यासनसैं निश्चित होवैहै ॥ पूर्वपूर्वकी अनिवृत्तिकरि उत्तरउत्तरका नाश (निवृत्ति) नहीं होवैहै ॥ ४ ॥

**विषयासक्तिनाशेन विना नो श्रवणं भवेत्।**
**ताभ्यामृते न मननं न ध्यानं तैर्विना भवेत् ५**

टीकाः—विषयासक्तिके नाशसैंविना श्रवण होवै नहीं औ तिन दोनूं विना मनन नहीं होवैहै औ इन तीनूंसैं विना निदिध्यासन होवै नहीं ॥ ५ ॥

**स्ववर्णाऽऽश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।**
**साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम् ॥ ६ ॥**

टीकाः—स्व कहिये मिथ्यात्मा शरीर ताके वर्ण अरु आश्र- संबंधी धर्मकरि औ कृच्छ्रचांद्रायणादि तपकरि औ हरिभजन कि- सर्व भूतनपर दयादिरूप हरिके संतोषकारक कर्मतैं पुरुषनं- वैराग्यादिकका चतुष्टयरूप साधन प्रकर्षकरि होवैहै ॥ ६ ॥

**तत्सिद्धावुपसन्नः सन् गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम्।**
**ज्ञानोत्पत्त्यै महावाक्यश्रुतिं कुर्याद्धि तन्मुखात् ७**

टीकाः—तिनच्यारी साधनोंकी सिद्धिके हुये ब्रह्मवेत्ताओंवि- उत्तम ( निर्दोष ) गुरुकेप्रति उपसत्तियुक्त ( शरणागत ) हुया ज्ञानकी उत्पत्ति अर्थ तिस गुरुके मुखतैं वेदविषे प्रसिद्ध अर्थस- हित महावाक्यके श्रवणकूं करै ॥ ७ ॥

**तत्सिद्धौ द्वापरभ्रांतिप्रहाणाय मुमुक्षुभिः।**
**श्रवणं मननं ध्यानमनुष्ठेयं फलावधि ॥ ८ ॥**

टीकाः—ता ज्ञानकी सिद्धि ( उत्पत्ति )के हुये मुमुक्षुनक-

द्वापर जो द्विविधसंशय औ भ्रांति जो विपरीतभावना। तिनके नाश अर्थ। प्रमाणसंशयादि त्रिविध प्रतिबंधके नाशरूप फलपर्यंत जैसैं होवै तैसैं श्रवण मनन औ निदिध्यासन करनेकूं योग्य है ॥ ८ ॥

**श्रवणस्य प्रसिद्धयैव भवतोंऽत्ये तथा सति।**
**द्वयोर्मूलं तु श्रवणं कर्त्तव्यं तद्धि धीधनैः ॥ ९ ॥**

टीकाः—श्रवणकी प्रकर्षकरि सिद्धिसैंहीं अंतके दो जे मनन अरु ध्यान वे होवैहैं। तैसैं हुये तिन दोनूंका प्रसिद्ध मूल जो श्रवण। सो तो बुद्धिरूप धनवानोंकरि प्रथम कर्तव्य है ॥ ९ ॥

**वेदांतानामशेषाणामादिमध्यावसानतः।**
**ब्रह्माऽऽत्मन्येव तात्पर्यमिति धीः श्रवणं भवेत् १०**

टीकाः—तात्पर्यके निर्णायक षट्लिंगरूप युक्तिनकरि "सर्व वेदांत जे उपनिषद्। तिनका आदि मध्य औ अंततैं ब्रह्मरूप आत्माविषैहीं तात्पर्य है" ऐसी जो बुद्धि (निश्चय)। सो श्रवण होवैहै ॥ यह श्रवणका शास्त्रउक्त लक्षण है ॥ १० ॥

**[१]उपक्रमोपसंहारा[२]वभ्यासो[३]ऽपूर्वता [४]फलम्।**
**[५]अर्थवादोप[६]पत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये ॥ ११ ॥**

टीकाः—तिन षट्लिंगनकूं अब नामकरि निर्देश करैहैंः—१ उपक्रम अरु उपसंहार इन दोनूंकी एकरूपता २ अभ्यास ३ अपूर्वता ४ फल ५ अर्थवाद ६ औ उपपत्ति। यह प्रत्येक तात्पर्यके निर्णयविषै लिंग है ॥ ११ ॥

**वस्तुनः प्रतिपाद्यस्याऽऽदावंते प्रतिपादनम्।**
**उपक्रमोपसंहारौ तदैक्यं कथितं बुधैः ॥ १२ ॥**

टीकाः—अब षट्श्लोकनकरि प्रत्येक लिंगके लक्षणकूं कहैहैंः—

१ प्रकरणकरिके प्रतिपादन करनेकूं योग्य जो ब्रह्मरूप अद्वितीय वस्तु है। ताका प्रकरणके आदिविषै तथा अंतविषै जो प्रतिपादन। सो उपक्रम अरु उपसंहार है ॥ तिनमैं आदिविषै जो प्रतिपादन। सो उपक्रम है औ अंतविषै जो प्रतिपादन। सो उपसंहार है। तिन दोनूंकी एकलिंगरूपता पंडितोंनैं कहीहै ॥ १२ ॥

**[2]वस्तुनः प्रतिपाद्यस्य पठनं च पुनः पुनः ।**
**अभ्यासःप्रोच्यते प्राज्ञैः स एवाऽऽवृत्तिशब्दभाक्१३**

**टीकाः**—२ प्रकरणकरि प्रतिपादन करने योग्य अद्वितीय वस्तुका तिस प्रकरणके मध्यविषै जो पुनः पुनः पठन। सो पंडितनकरि अभ्यास कहिये है। सोई अभ्यास आवृत्ति शब्दका वाच्य है ॥ १३ ॥

**[3]श्रुतिभिन्नप्रमाणेनाविषयत्वमपूर्वता ।**
**कुत्रचित्स्वप्रकाशत्वमप्यमेयतयोच्यते ॥ १४ ॥**

**टीकाः**—३ प्रकरणकरि प्रतिपाद्य अद्वितीय वस्तुकी जो श्रुतितैं भिन्न ( प्रत्यक्षादि लौकिक ) प्रमाणकरि अविषयता है। सो अपूर्वता है ॥ औ कहींक ता अद्वितीय वस्तुकी स्वप्रकाशता बी अमेयता ( सर्व प्रमाणनकी अविषयता )रूप हेतुकरि अपूर्वता कहिये है ॥ १४ ॥

**श्रूयमाणं तु तज्ज्ञानात्तत्प्राप्त्यादिप्रयोजनम् ।**
**फलं प्रकीर्त्तितं प्राज्ञैर्मुख्यं मोक्षैकलक्षणम् ॥१५॥**

**टीकाः**—४ औ प्रकरणकरि प्रतिपाद्य अद्वितीय वस्तुके ज्ञानतैं प्रकरणविषै श्रूयमाण ( सुन्या ) जो तिसकी प्राप्ति आदिक प्रयोजन। सो पंडितोंनैं मोक्षरूप एक लक्षणवाला मुख्य फल कहा है ॥ १५ ॥

[५]वस्तुनः प्रतिपाद्यस्य प्रशंसनमथापि वा ।
निंदा तद्विपरीतस्य ह्यर्थवादः स्मृतो बुधैः ॥१६॥

टीकाः–५ प्रकरणकरि प्रतिपाद्य अद्वितीय वस्तुका जो प्रशंसन ( स्तुति ) अथवा तिसतैं विपरीत ( द्वैत )की निंदा बी पंडितोंनैं अर्थवाद कहा है ॥ १६ ॥

[६]वस्तुनः प्रतिपाद्यस्य युक्तिभिः प्रतिपादनम् ।
उपपत्तिः प्रविज्ञेया दृष्टांताद्या ह्यनेकधा ॥१७॥

टीकाः–७ प्रकरणकरि प्रतिपाद्य अद्वितीय वस्तुका युक्तिसैं जो प्रतिपादन । सो दृष्टांत आदिक अनेक प्रकारकी युक्तिरूप उपपत्ति जाननेकूं योग्य है ॥ १७ ॥

एतल्लिंगविचारेण भवेत्तात्पर्यनिर्णयः ।
तात्पर्यं यस्य शब्दस्य यत्र सः स्यात्तदर्थकः॥१८॥

टीकाः–उक्त प्रकारके षट् लिंगनके उपनिषदनविषै विचारसैं उपनिषदनका अद्वैत ( प्रत्यक् अभिन्न ) ब्रह्मविषै जो तात्पर्य है । ताका निश्चय होवैहै ॥ औ जिस शब्दका जिस अर्थविषै तात्पर्य होवै । सो ता शब्दकाअर्थ होवैहै । अन्य ( केवल वाच्यअर्थ ) नहीं ॥ १८ ॥

मंदानां श्रुतिसंसिद्ध्या मानसंशयनुत्तये ।
करोम्यवनिनिक्षिप्तनिधिवल्लिंगकीर्त्तनम् ॥ १९ ॥

टीकाः–मंद ( अपंडित ) जनोंके "वेदांतनके अद्वितीय ब्रह्मविषै तात्पर्यके निश्चय रूप" श्रवणकी सिद्धिकरि "वेदांत अद्वैत ब्रह्मके प्रतिपादक हैं वा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं" इस ज्ञानरूप प्रमाणसंशयके नाश अर्थ । भूमिविषै गाडेहुये निधिके सिद्धकरि कीर्त्तनकीन्याईं । मैं लिंगनके कीर्त्तनकूं करूं हूं ॥ १९ ॥

**तत्त्वाऽऽलोके विशेषोऽपि विचारस्तददर्शनात् ।**
**मया त्वेषां समासेन क्रियते दिक्प्रदर्शनम् ॥२०॥**

टीका:—यद्यपि आनंदगिरि स्वामीकृत तत्त्वालोक नामक ग्रंथविषै इन लिंगनका विशेष विचार किया है । यातैं इस लघुग्रंथका प्रयोजन नहीं है । तथापि ता तत्वालोकके अदर्शनतैं । मुजकरितो संक्षेपसैं इन लिंगनकी दिशामात्रका प्रदर्शन करिये है॥२०॥

**सर्वेषूपनिषद्ग्रंथेषूपासनमनेकधा ।**
**ज्ञानशेषं तु तज्ज्ञेयं चित्तशुद्धिकरं यतः ॥ २१ ॥**

टीका:—सर्व उपनिषद्रूप ग्रंथनविषै अनेक प्रकारका उपासन (ध्यान) कहा है । सो तो ज्ञानका शेष (उपकारक) जाननेकूं योग्य है । जातैं चित्तकी शुद्धिका करने हारा है ॥ यातैं उपनिषदनविषै जो उपासना भाग है । ताके पृथक् लिंगनके विचारका उपयोग नहीं है । यातैं सो इहां नहीं किया ॥ २१ ॥

इति श्रीश्रुतिषड्लिंगसंग्रहे उपोद्घातकीर्त्तनं नाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

---

# अथेशावास्योपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥२॥



**ईशावास्यमुपक्रम्योपसंहारः स पर्यगात् ।**
**अनेजदेकमित्याद्योऽभ्यासस्तस्याद्वयस्य च ॥१॥**

टीका:—[१] "ईशावास्यमिदꣳ सर्वं (यह सर्व जगत् । ईश्वरकरि आवास्य कहिये आच्छादन करनेकूं योग्य है)" ऐसैं १ प्रथम मंत्रसैं उपक्रम करिके । "स पर्यगाच्छुक्रं (सो व्यारी ओरतैं जाताभया औ शुद्ध है)" इस ८ मंत्रकरि उपसंहार है॥

[२] औ "अनेजदेकं मनसो जवीयो (अचंचल एक-मनसैं वेगवान् है)" ४ इस आदि अर्थरूप तिस अद्वैतका अभ्यास है । इहां आदिशब्दकरि "तदंतरस्य सर्वस्य (सो इस सर्वके अंतर है)" इस ५ मंत्रका ग्रहण है ॥ १ ॥

**नैनद्देवा अपूर्वत्वं फलं मोहाद्यभावकम् ।**
**कुर्वन्नित्यनुवाद्यैवासूर्य्या भेदविनिंदनम् ॥ २ ॥**

**टीकाः**–[३] "नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत् (इसकूं देव जे इंद्रिय वे न प्राप्त होते भये । सो पूर्व गया है)" इस ४ मंत्रकरि उपनिषदनतैं अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणनकी अविषयतारूप **अपूर्वता** कही है ॥ [४] औ "तत्र को मोहः कः शोक एकत्व मनुपश्यतः (तहां एकताके देखनेहारेकूं कौंन मोह है कौंन शोक है)" इस ७ मंत्रसैं मोह आदिकका अभावरूप **फल** कहा है ॥ [५] औ "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत९ समाः (इहां कर्मनकूं करता हुया शतवर्ष जीवनेकूं इच्छे)" इस २ मंत्रसैं जीवनेकी इच्छावाले भेददर्शीकूं कर्म करनेका अनुवादकरिकेहीं । पीछे "असूर्य्या नाम ते लोकाः (वे असुरनके लोक प्रसिद्ध हैं)" इस ३ मंत्रसैं भेदज्ञानकी निंदा अरु अर्थात् अभेदज्ञानकी स्तुतिरूप **अर्थवाद** कहा है ॥ २ ॥

**तस्मिन्नपो मातरिश्वेत्युपपत्तिः प्रदर्शिता ।**
**एतैरीशोपनिषदोऽद्वैते तात्पर्यमिष्यते ॥ ३ ॥**

**टीकाः**–औ [६] "तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति (ताके होते वायु जलकूं धारताहै)" ऐसैं इस ४ मंत्रसैं **उपपत्ति** (अभेदबोधनकी युक्ति) । दिखाई ॥ ॥ इन लिंगोंकरि **ईशोपनिषद्**का अद्वैतब्रह्मविषै तात्पर्य अंगीकार करियेहै ॥ ३ ॥

इति श्री० ईशोपनिषल्लिंगकी० द्वितीयं प्रकरणं० ॥ २ ॥

---

# अथ केनोपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥ ३ ॥



**श्रोत्रस्येत्याद्युपक्रम्य प्रतिबोधादिवाक्यतः ।**
**उपसंहार एवोक्तस्तदैक्यं ज्ञायते बुधैः ॥ १ ॥**

**टीका**:-[१] "श्रोत्रस्य श्रोत्रं (श्रोत्रका श्रोत्र है)" इत्यादि १ खंडके २ वाक्यसैं उपक्रमकरिके ॥ [२] "प्रतिबोधविदि (बोधबोधकेप्रति विदित है)" इत्यादि २।१२ वाक्यतैं उपसंहार हीं कहा है । इन दोनूंकी एकता पंडितनकरि जानियेहै ॥ १ ॥

**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धीत्याद्यभ्यास उदीरितः ।**
**न तत्रेत्याद्यपूर्वत्वं प्रेत्यास्मादिति वै फलम् ॥ २ ॥**

**टीका**:-[२] "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि (ताहीकूं तूं ब्रह्म जान)" इत्यादि १।४-८ **अभ्यास** कहा है ॥ [३] औ "न तत्र चक्षु र्गच्छति (तिसविषै चक्षु गमन करता नहीं)" इत्यादि १।३ उ निषदनतैं भिन्न प्रमाणकी अविषयतारूप **अपूर्वता** है ॥ [४] "भू तेषु भूतेषु विचित्य धीराः (धीर । सर्व भूतनविषै जानिके)" ऐं आत्मज्ञानकूं अनुवाद करिके "प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवंति (इस लो कतैं देह अरु प्राणके वियोगकूं पायके अमृतरूप होवैहैं)" ऐं २।५ प्रसिद्ध **फल** कहा है ॥ २ ॥

**ब्रह्म हेत्याद्यर्थवादोऽविज्ञातमिति चांतिमम् ।**
**एतैः केनोपनिषदोऽद्वैते तात्पर्यमिष्यते ॥ ३ ॥**

**टीका**:-औ [५] "ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये (ब्रह्म देवनके अ विजय देताभया)" इत्यादि इन ३।१ वाक्यनसैं आख्यायिकारू **अर्थवाद** कहा है ॥ [६] औ "यस्यामतं तस्य मतं (जिसकूं अज्ञा

है तिसकूं ज्ञात है )" इत्यादिरूप इस २।३ स्वयंप्रकाश अद्वैत वस्तुके साधक वाक्यकरि अंतिम कहिये उपपत्ति ( तर्कमययुक्ति ) रूप षष्ठ लिंग कहाहै ॥ इन लिंगोंकरि केन उपनिषद्का अद्वैतब्रह्मविषै तात्पर्य अंगीकार करिये है ॥ ३ ॥

इति श्री० केनोपनिषल्लिंगकीर्त्तनं नाम तृ० प्र० समाप्तम् ॥ ३ ॥

---

# अथ कठोपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥ ४ ॥

येयं प्रेते मनुष्ये त्वि-त्यादिः सामान्यतस्तथा ।
अन्यत्र धर्मतस्त्वित्या-दिवाक्याच्च विशेषतः॥१॥

टीकाः-[१] "येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये ( मरे मनुष्यविषै जो यह संशय है)" इत्यादि १।१।२० सामान्यतैं उपक्रम है। तथा "अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ( धर्मतैं भिन्न अरु अधर्मतैं भिन्न औ इस कार्य अरु कारणतैं भिन्न है)" इत्यादि १।२।१४ वाक्यतैं विशेषकरि उपक्रम है ॥ १ ॥

उपक्रमोऽगुष्ठमात्र इत्यारभ्योपसंहृतिः ।
न जायतेऽशरीरं च नित्यानां नित्य एव सः ॥२॥

टीकाः-औ "अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽतरात्मा ( अंगुष्ठमात्र पुरुष अंतरात्मा है )" ऐसैं आरंभ करिके इस २।६।१७ वाक्यसैं उपसंहार कहा है [२] औ "न जायते म्रियते वा ( जन्मता नहीं वा मरता नहीं )" १।२।१८ औ "अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् (अस्थिर शरीरनविषै स्थित अशरीरकूं )" १।२।२१ औ "नित्यो नित्यानां (सो नित्योंका नित्य है )" २।५।१३ ॥ २ ॥

**चेतनोऽचेतनानां च बहूनामेक एव च ।**
**अस्तीत्येवोपलब्धव्य इत्याद्यभ्यास ईरितः ॥३॥**

टीकाः–औ "चेतनश्चेतनानामेको बहूनां विदधाति कामान् (चेतनोंका चेतन है । बहुतनके मध्य एक हुया कामोंकूं करत है)" २।५।१३ औ "अस्तीत्येवोपलब्धव्यः (है ऐसैंहीं जानने योग्य है)" २।६।१३ इत्यादि बहुकरिके अभ्यास कहा है॥३

**नैव वाचा न मनसेत्याद्यपूर्वत्वमिंगितम् ।**
**मृत्युप्रोक्तां त्वेवमाद्यात्फलं श्रुत्या समीरितम् ४**

टीकाः– [३] "नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा (नहीं वाणीकरि न मनकरि न चक्षुकरि जाननेकूं शक्य है)" २।६।१२ इत्यादि अपूर्वता अभिप्रेत है ॥ औ [४] "मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् । ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव (अनंतर नचिकेता यमकरि कही इस विद्याकूं औ संपूर्ण योगविधिकूं पायके ब्रह्मकूं प्राप्त निर्मल मृत्युरहित होताभया । अन्यबी जो अध्यात्मकूंहीं जानै सो ऐसैं होवैगा)" इत्यादि १ अध्यायकी ६ षष्ठवल्लीके १ वाक्यतें ॥ श्रुतिमैं फल सम्यक् कहाहै ॥ ४ ॥

**स लब्ध्वा मोदनीयं वै फलं प्रोक्तं स्फुटं तथा**
**ब्रह्म क्षत्रं च युगलमोदनं त्वेवमादितः ॥ ५ ॥**

टीकाः–तैसैं "स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा (सो मोदरूप अनुभव करने योग्यकूं पायके मोदकूं पावताहै)" १।२।१३ इस वाक्यकरि ऐसैं यहबी स्पष्ट फल कहाहै ॥ [५] औ "यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनं (जाका ब्राह्मण औ क्षत्रिय दोनूं ओदन होवैहैं)" १।२।२४ इत्यादि वाक्यतैं ॥ ५ ॥

**अर्थवादश्च युक्तिर्वै त्वग्निरित्यादिवाक्यतः ।**
**एभिः कठोपनिषदोऽद्वैते तात्पर्यमिष्यते ॥ ६ ॥**

**टीकाः**—अद्वैत ब्रह्मकी स्तुतिरूप **अर्थवाद** कहाहै ॥ तैसैं "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति (जो इहां नानाकीन्याईं देखताहै सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावताहै)" इस १।४।१० आदिक १।४।११ वाक्यनसैं भेदज्ञानकी निंदारूप जो **अर्थवाद** कहाहै। सो बी "च" शब्दकरि सूचन किया ॥ औ [६] "अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूप रूपं प्रतिरूपो बभूव (जैसैं एक अग्नि भुवनके प्रति प्रविष्ट हुया रूप रूपकेतांईं प्रतिरूप होताभया)" २।५।९–११ इत्यादि तीन मंत्ररूप वाक्यनकरि औ चकारसैं "येन रूपं रसं गंधं (जिसकरि रूपकूं रसकूं गंधकूं जानताहै)" इस २।४।३ आदिक अनेक वाक्यनसैं बी युक्ति शब्दकी वाच्य **उपपत्ति** कहीहै ॥ इन लिंगोंकरि **कठवल्ली उपनिषद्**का अद्वैतब्रह्मविषै तात्पर्य अंगीकार करियेहै ॥ ६ ॥

इति श्री० कठोपनिषल्लिंगकी० च० प्र० समाप्तम् ॥ ४ ॥

---

# अथ प्रश्नोपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥ ५ ॥

**ब्रह्मपरा हि वै ब्रह्म-निष्ठा इत्युपक्रम्य तत् ।**
**तान्होवाचैतावदेवो-पसंहारस्तदेकता ॥ १ ॥**

**टीकाः**—[१] "ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठा परं ब्रह्मान्वेषमाणाः (ब्रह्मविषै तत्पर ब्रह्मनिष्ठ परब्रह्मकूं खोजतेहुये)" १।१ ऐसैं तिस परब्रह्मकूंहीं उपक्रम करिके। "तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद नातः परमस्ति (तिनकूं कहताभयाः—इतनाहीं मैं इस पर ब्र-

ह्मकूं जानताहूं । इसतें पर नहीं है)" ६ प्रश्नके ७ वाक्यसैं ऐसैं उपसंहार है । इन दोनूंकी एकलिंगरूपता है ॥ १ ॥

**एतद्वै सत्यकामेति यत्तदभ्यास उच्यते ।**
**इहैवांतः शरीरे तु सोम्य! चेत्याद्यपूर्वता ॥ २ ॥**

**टीकाः**–[२] औ "एतद्वै सत्यकाम ! परं चापरं च यदोंकारः (हे सत्यकाम ! यह निश्चयकरि परब्रह्म औ अपरब्रह्म है । जो ॐकार है )" ५।२ ऐसैं औ "यत्तच्छांतमजरममृतमभयं परं च (जो सो शांत अजर अमृत अभय अरु परब्रह्म है )" ५।७ ऐसैं अभ्यास कहियेहै ॥ औ [३] "इहैवातः शरीरे सोम्य ! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवंति ( हे सोम्य ! इसीहीं शरीरके भीतर सो पुरुष है । जिसविषै ये षोडशकला उपजतीयां हैं )" इस ६।२ वाक्यसैं शरीरविषै स्थितकाहीं उपदेश विना अनुपलंभ-( अप्रतीति )रूप अपूर्वता सूचनकरी ॥ २ ॥

**तं वेद्यं पुरुषं वेदेत्यादितः फलमुच्यते ।**
**तदच्छायमदेहं चे-त्यादिभिः कथिता स्तुतिः॥ ३ ॥**

**टीकाः**– औ [४] "तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा । मा वो मृत्युपरिव्यथा इति ( तिस वेद्य पुरुषकूं जैसा है तैसा जानना । तुमकूं मृत्युकी पीडा मति होहु ऐसैं )" ६।६ इत्यादि वाक्यतैं फल कहियेहै ॥ औ [५] "तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य ! स सर्वज्ञः सर्वो भवति ( हे सोम्य ! जो कोईक तिस अज्ञानरहित अशरीर अलोहित शुद्ध अक्षरकूं जानताहै । सो सर्वज्ञ अरु सर्व होवैहै )" इत्यादि ४।१० वाक्यनकरि अर्थवादरूप स्तुति कहीहै ॥

**नदीसमुद्रदृष्टांतादुपपत्तिः प्रदर्शिता ।**
**एतैः प्रश्नोपनिषदोऽद्वैते तात्पर्यमिष्यते ॥ ४ ॥**

टीका:-औ [६] "स यथेमा नद्यः (सो जैसैं ये नदीयां)" इस ६।५ आदिक ६।६ वाक्यगत दृष्टांततैं परमात्मातैं षोडशकलाओंकी उत्पत्ति अरु विनाशके उपन्यासतैं उपपत्ति दिखाई ॥ इन लिंगोंकरि प्रश्नोपनिषद्का अद्वैतब्रह्मविषै तात्पर्य अंगीकार करिये है ॥ ४ ॥

इति श्री० प्रश्नोपनिषल्लिंग० पंचमं प्र० समाप्तम् ॥ ५ ॥

---

# अथ मुंडकोपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥ ६ ॥



**अथ परेत्युपक्रम्य यो ह वै परमं च तत् ।**
**ब्रह्म वेदेत्यादिवाक्यादुपसंहार ईरितः ॥ १ ॥**

टीका:-[१] "अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते यत्तदद्रश्यं (अब पराविद्या कहियेहै:-जिसकरि सो अक्षर जानियेहै जो सो अदृश्य है)" इत्यादि १।१।५-६वाक्यकरि उपक्रम करिके । "स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद (सो जोई तिसपरम ब्रह्मकूं जानता है)" इत्यादि ३।२।९ वाक्यतैं उपसंहार कहाहै ॥ १ ॥

**आविः सन्निहितं चेति तदेतदक्षरं त्विति ।**
**अभ्यासो गृह्यते नैव चक्षुषेत्याद्यपूर्वता ॥ २ ॥**

टीका:-औ [२] "आविः सन्निहितं (प्रत्यक्ष है अरु समीपमैं है)" २।२।१ औ "तदेतदक्षरं ब्रह्म (सो यह अक्षररूप ब्रह्म है)" २।२।२ ऐसैं तो अभ्यास कहाहै ॥ औ [३] "न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा (न चक्षुकरि ग्रहणकरियेहै अरु वाक्करि बी नहीं)" इत्यादिरूप ३ मुंडकके १ खंडके ८ वाक्यकी अर्थरूप अपूर्वता (प्रमाणांतरकी अविषयता) है ॥ २ ॥

**भिद्यते हृदयग्रंथिरित्याद्यात्फलमीरितम् ।**
**यं यं लोकं च हेत्याद्यैरर्थवादः प्रघोषितः ॥ ३ ॥**

**टीकाः**—[४] "भिद्यते हृदयग्रंथिः ( तिस परावरके देखे हुये। हृदयग्रंथि भेदकूं पावता है )" इस २।२।८ आदिक ३।२।८-९ वाक्यतैं फल कहाहै ॥ [५] औ "यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तसादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ( निर्मल मनवाला जिस जिस लोककूं मनसैं चितवताहै औ जिन भोगनकूं इच्छताहै। तिस तिस लोककूं औ तिन भोगनकूं पावताहै । तातैं विभूतिकी इच्छावाला आत्मज्ञानीकूं पूजन करै )" इस ३।१।१० आदिक वाक्यनसैं अर्थवाद कहाहै ॥ ३ ॥

**सुदीप्ताग्नेर्यथेत्यादि-नोपपत्तिः प्रकाशिता ।**
**एतैर्मुंडकतात्पर्यमद्वैतेंऽगीकृतं बुधैः ॥ ४ ॥**

**टीकाः**—औ [६] "यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवंते सरूपाः । तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य ! भावाः प्रजायंते तत्र चैवापियंति ( जैसैं प्रज्वलित अग्नितैं हजारों हजार सरूप विस्फुलिंग उपजतेहैं । तैसैं हे सोम्य ! अक्षरतैं विविध पदार्थ उपजतेहैं औ तहांहीं लीन होतेहैं )" इस २।१।१ आदिक वाक्यनैं उपपत्ति प्रकाश करी है ॥ इन लिंगोंकरि **मुंडकोपनिषद्**का अद्वैतविषै तात्पर्य पंडितोंनैं अंगीकार किया है ॥ ४ ॥

इति श्री० मुंडकोपनिषल्लिंग० षष्ठं प्र० समाप्तम् ॥ ६ ॥

---

# अथ मांडूक्योपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥७॥



**ॐमित्येतदुपक्रम्यामात्र इत्युपसंहृतिः ।**
**प्रपंचोपशमं शांतमित्याद्यभ्यास ईरितः ॥ १ ॥**

**टीकाः**–[१] "ॐमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं (यह सर्व "ॐ" ऐसा यह अक्षर है)" इस १ वाक्यसैं उपक्रम करिके । "अमात्रश्चतुर्थो (अमात्ररूप चतुर्थपाद है)" इत्यादिरूप १२ वाक्यसैं उपसंहार है ॥ औ [२] "प्रपंचोपशमं शांतं (निष्प्रपंच अरु शांत है)" १२ इत्यादि अभ्यास कहा है ॥ १ ॥

**अदृष्टमाद्यपूर्वत्वं संविशत्यात्मना फलम् ।**
**अवांतरफलोक्तिस्तु ह्यर्थवादो विदां मते ॥ २ ॥**

**टीकाः**–औ [३] "अदृष्टमव्यवहार्यं (अदृष्ट है अरु अव्यवहार्य है)" ७ इत्यादि प्रमाणांतरकी आविषयतारूप अपूर्वता है औ [४] "संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद (आत्माकूं जो ऐसैं जानताहै सो आत्माके साथि प्रवेश करताहै)" इस १२ वाक्यकरि फल कहाहै ॥ औ [५] "आप्नोति ह वै सर्वान् कामान् (सर्व कामोंकूं पावता है)" इस ९ आदिक १० वाक्यनसैं जो अवांतर फलकी उक्ति है । सो तो विद्वानोंके मतविषै प्रसिद्ध अर्थवाद है ॥ २ ॥

**अद्वैते च प्रवेशायो-पपत्तिः पादकल्पना ।**
**मांडूक्योपनिषद्भाव एवमैरिष्यतेऽद्वये ॥ ३ ॥**

**टीकाः**–औ [६] अद्वैत ब्रह्मविषै प्रवेश अर्थ १–१२ वें वाक्यपर्यंत जो ४ पादनकी कल्पना है । सो उपपत्ति (युक्ति) है ॥ इन-

लिंगोंकरिहीं मांडूक्योपनिषद्का भाव (तात्पर्य) अद्वैतब्रह्मविषै अंगीकारकरियेहै ॥ ३ ॥

इति श्री० मांडूक्योपनिषल्लिंग० सप्तमं प्र० समाप्तम् ॥ ७ ॥

---

# अथ तैत्तिरीयोपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥८॥

**ब्रह्मविदित्युपक्रम्य यश्चायं तूपसंहृतिः ।**
**तस्माद्वा इत्यथो वाक्यं यदा ह्येवेति चापरम् ॥१॥**

टीकाः–[१] "ब्रह्मविदाप्नोति परं (ब्रह्मवित् परब्रह्मकूं पावता है)" २।१ ऐसैं उपक्रम करिके । "स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये । स एकः (सो जो यह पुरुषविषै है औ जो यह आदित्यविषै है सो एक है)" इत्यादिरूप इस २।८ वाक्यकरि उपसंहार है ॥ औ [२] "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत (तिस इस आत्मातैं आकाश उपज्या)" २।१ ऐसैं औ "यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्ते निलयने (जबहीं यह इस अदृश्य अशरीर अवाच्य अनाधारविषै)" यह २।७ अपर वाक्य है ॥१

**भीषाऽस्मादित्यथोऽभ्यासो यतो वाचो त्वपूर्वता।**
**सोऽश्नुते ब्रह्मणा कामान् सहेत्यादि फलं श्रुतम् ॥**

टीकाः–औ "भीषाऽस्माद्वातः पवते (इस परमात्मातैं भयकरि वायु वहता है)" २।८ ऐसैं अभ्यास है ॥ औ [३] "यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह (मनसहित वाणीयां अप्राप्तहोयके जिसतैं निवर्त्त होवैहैं)" इस २।४ वाक्यसैं मनवाणीकरि उपलक्षित सकल प्रमाणोंकी अगोचरतारूप अपूर्वता कही ॥ [४] औ "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता (सो ज्ञानी ज्ञानरूप ब्रह्मके

साथि एक हुया सर्व कामोंकूं भोगता है )" २।१ इत्यादि २ वल्लीके ७ वें अनुवाकसैं फल कहा है॥ २ ॥

**अर्थवादोंऽतरं कुर्यादुदरं भेदनिंदनम् ।**
**गायन्नास्ते हि सामैतदित्यादिर्विदुषः स्तुतिः॥३॥**

टीकाः-[५] "यदुदरमंतरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति (जो यत् किंचित् भेदकूं करताहै । अनंतर ताकूं भय होवैहै )" २।७ ऐसैं भेदज्ञानकी निंदा है औ "गायन्नास्ते हि तत्साम० अहमन्नमहमन्न महमन्नम् । अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः (विद्वान् इस सामकूं गायन करताहुया स्थित होवैहैः—मैं [सर्व] भोग्य हुं मैं भोग्य हुं मैं भोग्य हुं । मैं [सर्व] भोक्ता हुं मैं भोक्ता हुं मैं भोक्ता हुं )" इत्यादि ३।१० विद्वान्की स्तुति है । सो अर्थवाद है॥३॥

**यतो भूतानि जायंते तत्सृष्ट्वेत्यादितोंऽतिमम् ।**
**तैत्तिरीयश्रुतेर्भाव एवमैरिष्यतेऽद्वये ॥ ४ ॥**

टीकाः—औ [६] "यतो वा इमानि भूतानि जायंते (जिसतैं ये भूत उपजते हैं )" ३।१ औ "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् (ताकूं सृजिके ताहीके प्रति प्रवेशकरताभया )" २।६ इत्यादि कार्य कारणके अभेदके बोधक सृष्टि वाक्यतैं औ प्रवेष्टा प्रविष्ट अरु प्रवेश्यके अभेदके बोधक प्रवेश वाक्यतैं अंतका उपपत्ति रूप लिंग कहा है ॥ इन लिंगोंकरिहीं तैत्तिरीयोपनिषद्का भाव (तात्पर्य ) अद्वैतविषै अंगीकार करिये है ॥ ४ ॥

इति श्री० तैत्तिरीयोपनिषल्लिंग० नामाष्टमं प्र० समाप्तम् ॥ ८ ॥

---

# अथैतरेयोपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥ ९ ॥

**आत्मा वा इत्युपक्रम्योपसंहरस्तु चांतिमे ।**
**प्रज्ञानं ब्रह्म वाक्येन महतोक्तो हि धीधनैः ॥१॥**

टीकाः–[१] "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् ( यह आगे आत्माहीं होताभया )" १।१।१ ऐसैं उपक्रम करिके । "प्रज्ञानं ब्रह्म ( प्रज्ञान जो जीव सो ब्रह्म है )" इस अंतके ३ अध्यायविषे स्थित ५ खंडके ३ ऋकूगत महावाक्यकरि बुद्धिमानोंनैं प्रसिद्ध उपसंहार कहा है ॥ १ ॥

**स इमानसृजल्लोकान्स ईक्षत सृजा इति ।**
**तस्मादिदंद्र इत्यादिवाक्यैरभ्यास ईरितः ॥ २ ॥**

टीकाः–[२] औ "स इमांल्लोकानसृजत् ( सो इन लोकनकूं सृजताभया )" १।१।२ औ "स ईक्षतेमे नु लोका लोकान्नु सृजा इति ( सो ईक्षण करताभयाः–ये लोक हैं । लोकपालोंकूं सृजूं ऐसैं )" १।१।३ औ "तस्मादिदंद्रो नाम ( तातैं इदंद्र नाम है )" १।३।१४ इत्यादि वाक्योंकरि अभ्यास कहा है ॥ २ ॥

**स जात इत्यपूर्वत्वं प्रज्ञानेत्रं तदित्यपि ।**
**स एतेनेतिवाक्येन फलं स्पष्टमुदारितम् ॥ ३ ॥**

टीकाः–[३] औ "स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत् ( सो प्रगटहुया भूतनकूं स्पष्ट जानता भया )" इस १।३।१३ वाक्यसैं सर्व भूतनका प्रकाशक होनेकरि तिनकी अविषयतारूप किंवाः–"सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं (सर्व जगत् स्वप्रकाश चैतन्यरूप निर्वाहकवाला है)" इस ३ अध्यायके ५ खंडके ३ वाक्यसैं ऐसैं स्वप्रकाशतारूपबी अपूर्वता कही है। औ [४] "स एतेन प्रज्ञेनाऽऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे

लोके सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् इत्योम् (सो इस ज्ञानस्वरूपसैं इस लोकतैं उल्लंघन करिके उस मोक्षरूप लोकविषै सर्व कामोंकूं पायके अमृत होताभया होताभया ऐसैं सत्य है)" इस ३ अध्यायके ९ खंडके ४ वाक्यकरि स्पष्ट फल कहा है ॥ ३ ॥

**ता एता देवताः सृष्टा स्तथा गर्भे नु सन्निति ।**
**स्तुतिर्युक्तिस्तु स इमानित्यारभ्य विदार्य सः॥४॥**
**एतं सीमानमित्यादिश्रुतिवाक्यात्प्रकीर्त्तिता ।**
**इमैरुक्तैस्तु षड्लिंगैरैतरेयश्रुतौ गतम् ॥ ५ ॥**
**तात्पर्यं ज्ञायतेऽद्वैते तन्निष्ठैर्वेदपारगैः ।**
**तथा मुमुक्षुभिः सर्वैरपि विज्ञेयमादरात् ॥ ६ ॥**

टीकाः-[५] औ "ता एता देवताः सृष्टाः (वे ये उत्पादित देवता स्तुतिकरती भई)" १।२।१ औ "गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा (माताके गर्भस्थानविषैहीं हुया मैं इन देवनके सर्व जन्मोकूं जानता हुं)" २।४।५ ऐसैं अद्वैत परमात्माकी स्तुतिरूप अर्थवाद कहा है ॥ औ [६] "स इमांल्लोकानसृजत् (सो इन लोकनकूं सृजताभया)" १।१।२ इहांसैं आरंभ करिके ॥ ४ ॥ "स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत (सो इसीहीं मस्तकगत सीमाकूं विदारण करिके इस द्वारकरि शरीरविषै प्राप्त होताभया)" इत्यादि १।३।१२ वाक्यतैं श्रुतिनैं युक्ति (उपपत्ति) कही है ॥ उक्त इन षट्लिंगोंसैं तो ऐतरेयउपनिषद्विषै स्थित ॥ ५ ॥

अद्वैतविषै जो तात्पर्य है सो। वेदके पारकूं प्राप्तभये (श्रोत्रिय) औ तिसविषै निष्ठावाले (ब्रह्मनिष्ठ)नकरि जानियेहै ॥ तैसैं सर्व मुमुक्षुनकरिबी आदरसैं जाननेकूं योग्य है ॥ ६ ॥

इति श्री० ऐतरेयोपनिषल्लिंग० नवमं प्र० समाप्तम् ॥ ९ ॥

---

# अथ श्रीछांदोग्योपनिषल्लिंगकीर्त्तनम् ॥ १० ॥



## तत्र षष्ठाध्याय-लिंगकीर्त्तनम् ॥ ६ ॥

**सदेवेत्युपक्रम्यैवै-तदात्म्यमिदमित्यतः ।**
**उपसंहृतिरभ्यासो नवकृत्व उदीरितः ॥ १ ॥**

टीकाः–[१] "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं (हे सोम्य! सृष्टितैं पूर्व एकहीं अद्वितीय सत्हीं होताभया)" ६।२।१ ऐसैं उपक्रम करिके "एतदात्म्यमिदं सर्वं (यह सर्व इस सत्रूप आत्मभाववाला है)" ऐसैं इस ६ अध्यायके १६ खंडके ३ वाक्यतैं उपसंहार कहा है॥ औ [२] अभ्यास नववार कहा है॥ १॥

**तत्त्वमसीतिवाक्यस्याऽऽवर्त्तनाद्बुद्धिमत्तमैः ।**
**अत्रैव सोम्य! सन्नेत्य-पूर्वतोक्ता हि पंडितैः॥२**

टीकाः–"तत्त्वमसि (सो तूं हैं)" इस ६।८।१६ वाक्यके आवर्तनतैं पंडितोंनैं [कहा है] ॥ [३] औ "अत्र वाव किल सत्सोम्य! न निभालयसेऽत्रैव किलेति (ऐसैं हे सोम्य! इस शरीरविषै आचार्यके उपदेशतैं विना सत्रूप ब्रह्म विद्यमान है ताकूं इंद्रियनसैं नहीं जानताहैं। इहांहीं विद्यमान सत्कूं गुरु उपदेशसैं अन्य उपायसैं जान)" ६।१३।२ ऐसैं पंडितोंनैं गुरु उपदेशविना प्रमाणांतरकी अविषयतारूप प्रसिद्ध अपूर्वता कही है ॥२॥

**तावदेव चिरं तस्येत्यादिवाक्यात्फलं स्मृतम्।**
**तमादेशमुताप्राक्ष्य इत्योदेः स्तुतिरीरिता ॥३॥**

टीकाः–[४] "आचार्यवान् पुरुषो वेद । तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये ( आचार्यवान् पुरुष जानताहै । तिसज्ञानीकूं तहां लगिहीं विदेहमोक्षविषै विलंब है जहांलगि प्रारब्धके क्षयकरि देहका अंत भया नहीं । अनंतर सत्‌रूप ब्रह्मकूं पावताहै )" इत्यादि ६।१४।२ वाक्यतैं फल कहा है ॥ औ [५] "उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातं ( हे श्वेतकेतो! तिस आदेशकूंबी आचार्यके प्रति तूं पूंछताभया हैं । जिसकरि नहीं सुन्या सुन्या होवैहै । नहीं मननकिया मननकिया होवैहै । नहीं जान्या जान्या होवैहै )" इत्यादि ६।१।१ वाक्यतैं अर्थवादरूप अद्वैतके ज्ञानकी स्तुति कही है ॥ ३ ॥

**उपपत्तिर्यथा सोम्यैकेनेत्यादिनिदर्शनम् ।**
**एतैश्छांदोग्यतात्पर्यं षष्ठगं त्विष्यतेऽद्वये ॥ ४ ॥**

टीकाः–औ [६] "यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्यात् ( हे सोम्य ! जैसें एक मृत्तिकाके पिंडकरि सर्व घटादि कार्य मृत्तिकामय जान्या जावैहै )" इत्यादि इस ६।१।१–३ वाक्यगत दृष्टांतरूप उपपत्ति है ॥ इनलिंगोंकरि षष्ठअध्यायगत छांदोग्य उपनिषद्का तात्पर्य अद्वैतविषै अंगीकारकहियेहै ॥ ४ ॥

## अथ सप्तमाध्यायलिंगकीर्त्तनम् ॥७॥

**शोकं तरति तद्वेत्ते-त्युपक्रम्योपसंहृतिः ।**
**तस्य ह वेतिवाक्येन तदैक्यमनुभूयताम् ॥ ५ ॥**

टीकाः–[१] "तरति शोकमात्मवित् (आत्मज्ञानी शोककूं तरता है )" ७।१।३ ऐसें उपक्रम करिके । "तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशा ( तिस इस

ऐसैं देखनेवालेके औ ऐसैं मननकरनेवालेके औ ऐसैं जाननेवालेके आत्मातैं प्राण औ आत्मातैं आशा होवैहै ।)" इस ७ अध्यायके २६ खंडके १ वाक्यकरि उपसंहार कहा है । तिन दोनूंकी एकता अनुभव करना ॥ ५ ॥

**अधस्ताच्च स एव स्यात्तथाऽथातस्त्वहंकृते-**
**रादेशश्च स्मृतोऽभ्यासोऽथात आत्मोपदेशयुक् ६**

टीकाः—औ [२] "स एवाधस्तात्स उपरिष्टात् (सोई नींचे है सो उपरि है )" तैसैं "अथातोऽहंकारादेश एवाहमधस्तादहमुपरिष्टात् (अब अहंकारका उपदेश हीं है किः—मैं नींचे हूं मैं उपरि हुं)" तैसैं "अथात आत्माऽऽदेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टात् (अब आत्माका उपदेश है किः—आत्माहीं नींचे है । आत्मा उपरि है)" इस आत्माके उपदेशकरि युक्त । उक्त ७ अध्यायके २५ खंडके १–२ वाक्यनकरि अभ्यास कहा है ॥ ६ ॥

**ऋगादिसर्वविद्यानामगोचरतयाऽऽत्मनः ।**
**अपूर्वता फलं पश्यो नैव मृत्युं हि पश्यति ॥७॥**

टीकाः—औ [३] सहोवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि (नारद सनत्कुमारकूं कहैहैः—हे भगवन् ! ऋग्वेदकूं पढ्या हूं)" इत्यादि ७।१।२ वाक्यकरि आत्माकी ऋग्वेद आदि सर्व विद्याओंकी अगोचरताकरि गुरु उपदेशकरि वेद्यतारूप अपूर्वता कही है ॥ औ[४] "न पश्यो मृत्युं पश्यति ( ज्ञानी मृत्युकूं देखता नहीं )" इत्यादि ७।२६ वाक्यकरि फल कहा है ॥ ७ ॥

**पश्यः पश्यति सर्वं हीत्यर्थवादः सुसूचितः ।**
**जाता वा आत्मतः प्राणादयो युक्तिः प्रदर्शिता ।**

टीकाः—औ [५] "सर्वं ह पश्यः पश्यति । सर्वमाप्नोति सर्व

( ज्ञानी सर्वकूं देखताहै । सर्व तर्फसैं सर्वकूं पावताहै )" ७।२६।२ ऐसैं अर्थवाद सूचन किया है॥ औ [६] "आत्मतः प्राण आत्मत आशा (आत्मातैं प्राण। आत्मातैं आशा)"इत्यादि ७।२६।१ वाक्य-करि हेतु आत्मैकताबोधक युक्ति ( उपपत्ति ) दिखाई ॥ ८ ॥

**छांदोग्यश्रुतितात्पर्यं सप्तमाध्यायगं बुधैः ।**
**इष्यते चाद्वये भूम्नि षड्भिर्लिंगैरिमैः स्फुटम् ॥९॥**

टीकाः–पंडितोनैं इन षट् लिंगोंकरि सप्तमाध्यायगत छांदोग्य उपनिषद्का तात्पर्य । अद्वैत ब्रह्मविषै स्पष्ट अंगीकार करिये है ॥९॥

## अथाष्टमाध्यायलिंगकीर्त्तनम् ॥ ८ ॥

**य आत्मेत्युपक्रम्यैव तं वा एतमुपासते ।**
**इत्यादिनोपसंहार एष आत्मेतिवाक्यतः॥ १० ॥**

टीकाः–[१] "य आत्माऽपहतपाप्मा ( जो आत्मा पापरहित है )" ८।७।१ ऐसैं उपक्रम करिके हीं । "तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते ( तिस इस आत्माकूं देव निश्चयकरि उपासतेहैं )" इत्यादि ८।१२।६ रूपवाक्यकरि उपसंहार कहा है ॥ औ [२] "एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति ( यह आत्मा । यह अमृत अभय यह ब्रह्म है । ऐसैं कहताभया )" इस ८ अध्यायके १० खंडके १ वाक्यतैं [अभ्यास कहा है] ॥ १० ॥

**अभ्यासोऽपूर्वता ब्रह्म-चर्येणेत्यादितः फलं ।**
**पुनरावर्तते नैव स इत्यादिरवेरितम् ॥ ११ ॥**

टीकाः–[३] औ "तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्य्येणानुविंदंति तेषामेवैष ब्रह्मलोकः ( तातैं जेई इस ब्रह्मरूप लोककूं ब्रह्मचर्य्य-करि शास्त्र अरु आचर्यके उपदेशके पीछे प्राप्त करते हैं । तिन-हींकूं यह ब्रह्मरूप लोक प्राप्त होवैहै )" इस ८।४।३ आदिक वा-

क्यनतैं अपूर्वता ध्वनित करी है ॥ औ [४] "ब्रह्मलोकमभिसं-पद्यते । न च पुनरावर्त्तते (ब्रह्मरूप लोककूं पावताहै औ पुनरावृत्तिकूं पावता नहीं )" इत्यादि ८।१५।१ वाक्यकरि कहा फल है ॥११॥

**आख्यायिकाऽर्थवादः स्यादिंद्रस्यासुरस्वामिनः ।**
**अशरीरो वायुरभ्रमित्यादिर्युक्तिरीरिता ॥ १२ ॥**

टीकाः—औ [५] इंद्र अरु विरोचनकी आख्यायिका अर्थ-वाद होवैहै ॥ औ [६] "अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि ( वायु अशरीर है । मेघ बीजली मेघगर्जन ये अशरीर हैं)"इत्यादि ८।१२।२ अभेदक युक्तिरूप उपपत्ति कही है ॥१२॥

**छांदोग्यश्रुतितात्पर्यमष्टमाध्यायगं त्विमैः ।**
**इष्यतेऽद्वय एवास्मिन्ब्रह्मण्येतत्प्रदर्शितम् ॥ १३ ॥**

टीकाः—इन लिंगोंकरि तो अष्टमाध्यायगत छांदोग्य उपनि-षद्का तात्पर्य । इस अद्वैत ब्रह्मविषै हीं अंगीकार करिये है । यह दिखाया ॥ १३ ॥

इति श्री० छांदोग्योपनिषल्लिंग० दशमं प्र० समाप्तम् ॥ १० ॥

---

# अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषल्लिंगकी-र्त्तनम् ॥ ११ ॥

## तत्र प्रथमाध्यायलिंगकीर्त्तनम् ॥ १ ॥

**आत्मेत्येवेत्यादिवाक्यादुपक्रम्योपसंहृतिः ।**
**लोकमात्मानमेवोपा-सीतेत्यादिसमीरणात् ॥१॥**

टीकाः—[१] "आत्मेत्येवोपासीत ( आत्मा ऐसैंहीं जानना )"

इत्यादि १। ४।७ रूप वाक्यतैं उपक्रम करिके। "आत्मानमेव लोकमुपासीत (आत्मारूपहीं लोककूं जानना)" इत्यादि १ अध्यायके ४ ब्राह्मणके १९ वें वाक्यतैं उपसंहार कहा है ॥ १ ॥

**तदेतत्पदनीयं च तदेतत्प्रेय इत्यपि।**
**वाक्यमारभ्य संप्रोक्तोऽभ्यासस्तस्य परात्मनः २**

टीकाः—[२] औ "तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य यदयमात्मा (सो यह प्राप्तकरनेकूं योग्य है। जो यह इस सर्वका आत्मा है)" १।४।७ ऐसैं औ "तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात् (सो यह पुत्रतैं प्रिय है वित्ततैं प्रिय है)" इसी १।४।८बी वाक्यकूं आरंभकरिके। आगे (१।४।१० विषै) दोवार "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यके कथनपर्यंत तिस परमात्माका अभ्यास कहा है ॥ २ ॥

**तदाहुर्यदितीराया अपूर्वत्वं समिंगितम्।**
**य एवं वेद वाक्येन सर्वात्मत्वं फलं स्मृतम्॥३॥**

टीकाः—औ [३] "तदाहुर्यद्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यंतो मनुष्या मन्यंते (सो कहते हैं:—जो ब्रह्मविद्याकरि सर्वरूप होनेवाले मनुष्य मानते हैं)" इस १।४।९ उक्ति (वाक्य)तैं प्रमाणांतरकी अविषय जीवनकी सर्वात्मतारूप अपूर्वता अभिप्रेत है ॥ औ [४] "य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति (जो ऐसैं "अहं ब्रह्मास्मि" इस प्रकारसैं जानताहै। सो यह सर्व होवैहै)" इस १।४।१० वाक्यकरि ज्ञानसैं सर्वात्मभावरूप फल कहा है ॥ ३ ॥

**तस्याभूत्यै हि देवाश्च नेशते हेतिवाक्यतः।**
**अर्थवादो द्विरूपो वै प्रोक्तः श्रुत्या स्फुटोक्तितः४**

टीकाः—औ [५] "तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते (तिस ब्रह्मजिज्ञासुके ब्रह्मसर्वभावके न होनेअर्थ देवबी समर्थ होते नहीं

तब अन्य न होवैं यामैं क्या कहना )" इत्यादि रूप इस १।४।१० वाक्यतैं अभेदज्ञानकी स्तुति औ भेदज्ञानकी निंदा । इन दो रूपनवाला अर्थवाद श्रुतिनैं स्पष्ट उक्तितैं कहा है ॥ ४ ॥

**उपपत्तिः स एषो हीहेतिवाक्यात्स्मृता त्विमैः ।**
**बृहदारण्यकाद्यस्याद्वैते तात्पर्यमिष्यते ॥ ५ ॥**

**टीकाः**—औ [६] "स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः ( सो परमात्मा नखाग्रपर्यंत इस देहविषै प्रविष्टभया है )" इत्यादिरूप इस १।४।७ वाक्यतैं उपपत्ति कही है ॥ इन लिंगोंसैं बृहदारण्यक उपनिषद्के प्रथमाध्यायका अद्वैतविषै तात्पर्य । अंगीकार करिये है ॥ ५ ॥

# अथ द्वितीयाध्यायलिंगकीर्त्तनम् ॥ २ ॥

**ब्रह्म तेऽहं ब्रवाणीति सामान्योपक्रमः स्मृतः ।**
**व्येव त्वा ज्ञपयिष्यामि विशेषोपक्रमस्त्वयम् ॥ ६ ॥**

**टीकाः**—[१] "ब्रह्म तेऽहं ब्रवाणीति (ब्रह्म तेरेतांई कहताहूं)" २।१।१ यह सामान्य उपक्रम है औ "व्येव त्वा ज्ञपयिष्यामि ( ब्रह्म तेरेतांई जनावूंगाहीं )" २।१।१५ यह तो विशेष उपक्रम है ॥ ६ ॥

**य एषः पुरुषो विज्ञा-नमयस्तूपसंहृतिः ।**
**सामान्यतो विशेषेण तदेतत् ब्रह्म चेत्यपि ॥ ७ ॥**

**टीकाः**—औ "य एषः पुरुषो विज्ञानमयः ( जो यह पुरुष विज्ञानमय है )" २।१।१६ यह तो सामान्यतैं उपसंहार है औ "तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरं ( सो यह ब्रह्म कारणरहित अरु कार्यरहित है )" २।५।१९ यह विशेषकरि उपसंहार है ॥ ७ ॥

**सत्यं सत्यस्य चाथात आदेशो नेति नेति च।**
**स योऽयमिति चाभ्यासो बहुकृत्व उदीरितः॥८॥**

टीकाः—[२] औ "सत्यस्य सत्यं (सत्यका सत्य है)" २।१।२०+२।३।६ औ "अथात आदेशो नेति नेति (यातैं अब नेति नेति ऐसा आदेश है)" २।३।६ औ "स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् (सो जो यह आत्मा है यह अमृत है यह ब्रह्म है यह सर्व है)" २।५।१–१९ ऐसैं बहु करिके अभ्यास कहा है॥८॥

**विज्ञातार मरे ! केनेत्यादिनाऽपूर्वता मता।**
**यत्र वास्य ह्यभूदात्मै-व सर्वं चादितः फलम्॥९॥**

टीकाः—औ [३] "विज्ञातारमरे! केन विजानियात् (अरे! मैत्रेयि! विज्ञाताकूं किसकरि जानै)" इत्यादि २।४।१४ वाक्यकरि प्रमाणांतरकी अविषयतारूप अपूर्वता मानी है॥ औ [४] "यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत् (जहां [जिस मोक्षविषै] इस विद्वान्‌कूं सर्व आत्माहीं होताभया तहां किसकरि किसकूं सूंघे)" इत्यादि २ अध्यायके ४ ब्राह्मणके १४ वाक्यतैं निष्प्रपंच ब्रह्मरूपसैं अवस्थितिरूप अद्वैत ज्ञानका फल कहा है॥ ९॥

**परादाद्ब्रह्म ते चैवाऽऽख्यायिका बहवोऽपि च॥**
**अर्थवादस्तूपपत्तिरूर्णनाभ्याद्यनेकशः॥ १०॥**

टीकाः—[५] औ "ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद (ब्राह्मणजाति ताकूं तिरस्कार करैहै जो आत्मातैं अन्य ब्राह्मणजातिकूं जानताहै)" २।४।६ ऐसैं भेदज्ञानकी निंदा औ बहुत आख्यायिका बी अर्थवाद है॥ औ [६] "स यथोर्णनाभिस्तंतुनोच्चरेद्यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरंति (सो जैसैं ऊर्णनाभि तंतुकरि उच्चगमन करैहै औ जैसैं अग्नितैं अल्प अग्निके अवयव वि-

विध उच्चगमन करैहैं )" इस २।१।२० आदिक २।४।९-१२ वाक्यनविषै अनेक दृष्टांतरूप उपपत्ति हैं ॥ १० ॥

**बृहदारण्यकस्यैव द्वितीयस्याद्वितीयके ।**
**तात्पर्यं त्विष्यते प्राज्ञैरेभिर्लिंगैः समिंगितैः॥११॥**

टीकाः–बृहदारण्यक उपनिषद्‌के द्वितीय अध्यायका पंडि-तोंकरि इन सूचन किये लिंगोंसैं अद्वितीय ब्रह्मविषै तात्पर्य अंगी-कार करिये है ॥ ११ ॥

## अथ तृतीयाध्यायलिंगकीर्त्तनम् ॥ ३ ॥

**यत्साक्षादित्युपक्रम्योपसंहारस्तु वाक्यतः ॥**
**विज्ञानमित्यतः प्रोक्त आवृत्तिरेष ते स्वात् ॥१२॥**

टीकाः–[१] "यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म ( जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है )" ३।४।१ ऐसैं उपक्रम करिके । "विज्ञानमानंदं ब्रह्म ( विज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है )" ऐसैं इस ३।९।२८ वाक्यतैं तो उपसंहार कहा है ॥ औ [२] "एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ( यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है )" इस ३।७।३-२३ वाक्यतैं आवृत्तिका वाच्य अभ्यास कहा है ॥ १२ ॥

**तं त्वौपनिषदं चाहं पृच्छामीति त्वपूर्वता ।**
**फलं परायणं चैतत्तिष्ठमानस्य तद्विदः ॥ १३ ॥**

टीकाः–[३] औ "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि ( तिस उ-पनिषदनकरि गम्य पुरुषकूं [ मैं याज्ञवल्क्य ] तुज [शाकल्य]केताईं पूछताहूं )" ३।९।२६ ऐसैं तो उपनिषदनकीहीं विषयतारूप अ-पूर्वता कहीं है ॥ औ [४] "परायणं तिष्ठमानस्य तद्विदः ( यह ब्रह्म अद्वैत तत्वविषै स्थित तत्त्ववेत्ताका परमगति है )" ३।९।२८ ऐसैं फल कहा है ॥ १३ ॥

**योवै तत्काप्य! सूत्रं तं विद्याच्चेत्यादितोऽपि च।**
**यो वै एतच्च न ज्ञात्वाऽक्षरं गार्गीति च स्तुतिः १४**

टीकाः—औ [९] "यो वै तत्काप्य! सूत्रं विद्यात्तं चांतर्यामिणमिति स ब्रह्मवित् (हे काप्य! जोई तिस सूत्रकूं औ तिस अंतर्यामीकूं जानताहै। सो ब्रह्मवित् है)" यह ३।७।१ वी। औ "यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिन्लोके जुहोति (हे गार्गी! जोई इस अक्षरकूं न जानिके इस लोकविषै होमताहै)" इस ३।८।१० आदिक वाक्यतैं अभेदज्ञानकी स्तुति औ चकारकरि भेदज्ञानकी निंदारूप **अर्थवाद** कहा है॥ १४॥

**एतस्य वा अक्षरस्येत्यादितो युक्तिरीरिता।**
**तटस्थलक्षणस्योप-न्यासेन परमात्मनः॥ १५॥**

टीकाः—औ [६] "एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! सूर्याचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः (हे गार्गी! इस अक्षरकी आज्ञाविषै सूर्यचंद्र धारणकिये हुये स्थित होवैहैं)" इत्यादि ३।८।९ रूप वाक्यतैं परमात्माके तटस्थ लक्षणके उपन्यासकरि उपपत्ति कही है॥१५॥

**बृहदारण्यकश्रुत्यास्तृतीयस्य समिष्यते।**
**तात्पर्यमद्वये लिंगैरेभिस्तु परमात्मनि॥ १६॥**

टीकाः—बृहदारण्यकोपनिषद्के इस तृतीय अध्यायका। इन लिंगोंकरि अद्वय परमात्माविषै तात्पर्य। सम्यक् अंगीकार करियेहै॥ १६॥

## अथ चतुर्थाध्यायलिंगकीर्त्तनम्॥ ४॥

**इंधश्च किमुपक्रम्याभयं स उपसंहृतिः।**
**सामान्यतो विशेषेण यत्र त्वस्येति वाक्यतः १७**

टीकाः-[१] "इंधो ह वै नाम ( इंध ऐसा प्रसिद्ध नाम है)" ४।२।२ ऐसैं सामान्यतैं औ "किं ज्योतिरयं पुरुष इति। (किस ज्योतिवाला यह पुरुष है)" ४।३।२ ऐसैं विशेषकरि उपक्रम करिके "अभयं वै जनक ! प्राप्तोऽसि । हे जनक ! तूं अभयकूं प्राप्त भया हैं)" ४।२।४ ऐसैं । वा "स वा एष महानज आत्मा ( सोई यह महान् अज आत्मा)" ४।४।२९ ऐसैं सामान्यतैं उपसंहार है औ "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् (जहां तो सर्व आत्माहीं होताभया)" इस ४।५।१९ वाक्यतैं विशेषकरि उपसंहार है ॥ १७ ॥

**तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ।**
**इत्यादिबहुभिर्वाक्यैरभ्यासः स्पष्टमीक्ष्यते॥१८॥**

टीकाः-[२] " तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ( इस ब्रह्मकूं देव ज्योतिनका ज्योति आयु अरु अमृतरूप उपासते हैं )" ४।४।१६ इत्यादि बहुत वाक्यनकरि अभ्यास स्पष्ट देखिये है ॥ १८ ॥

**विज्ञातारमगृह्यो च न तं पश्यत्यपूर्वता ।**
**अथाकामयमानो य इत्यादिबहुभिः फलम्॥१९॥**

टीकाः-औ [३] "विज्ञातारमरे ! केन विजानीयात् ( अरे मैत्रेयि ! विज्ञाताकूं किसकरि जानना )" ४।५।१९ औ "अगृह्यो न हि गृह्यते ( जातैं अग्रहण करनेकूं अयोग्य है । तातैं नहीं ग्रहण करिये है)" ४।४।२२ औ "न तं पश्यति कश्चन (ताकूं शास्त्रगुरुके उपदेशविना कोईबी नहीं देखताहै )" ४।३।१४ इत्यादि वाक्यनसैं सिद्ध प्रमाणांतरकी अविषयतारूप अपूर्वता है ॥ औ [४] "अथाकामयमानो यो (औ जो निष्काम है )" इत्यादि ४।४।६-८ बहुत वाक्यनकरि फल कहा है ॥ १९ ॥

**मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति**
**एत एतमु हैवेत्या-दिवाक्याच्च स्तुतिः स्मृता २०**

टीकाः—औ [९] "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति (सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावता है जो इहां नानाकीन्यांई देखता है)" ४।४।१९ ऐसैं औ "एतमु हैवैते न तरतः (इस ज्ञानीकूं ये पुण्य पाप तरते नहीं)" ४।४।२२—२३ इत्यादि वाक्यतैं अर्थवादरूप निंदा अरु स्तुति कहीहै ॥ २० ॥

**यद्वै तन्नेति प्राणस्य प्राणं चैव न वा अरे!।**
**पत्युः कामाय नैवायं पतिर्हि भवति प्रियः॥२१॥**
**इत्यादिवाक्यजातेनो-पपत्तिः परिकीर्तिता।**
**बृहदारण्यकश्रुत्याश्चतुर्थाध्यायगं बुधाः ॥ २२ ॥**
**तात्पर्यमद्वये षड्भिरेवमैर्लिंगकैर्विदुः।**
**अग्नेर्धूम इवेमानि लिंगान्यस्य परात्मनः ॥२३॥**

टीकाः—औ [६] "यद्वै तन्न पश्यति, (जहां सुषुप्तिविषै तिसरूपकूं नहीं देखता है)" ४।३।२३—३० ऐसैं। औ "प्राणस्य प्राणमुत (प्राणकेबी प्राणकूं जानतेहैं)" ४।४।१८ ऐसैं। औ "न वा अरे! पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति (अरे मैत्रेयि! पतिके कामअर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै। आत्माके तो कामअर्थ पति प्रिय होवैहै)" ॥ २१ ॥ ॥ इस ४।५।६ आदिक ४।५।८—१३ वाक्यनके समूहकरि ब्रह्मरूप आत्माके बोधनकी युक्तिरूप उपपत्ति कही है ॥ पंडित इस बृहदारण्यकरूप उपनिषद्भागके चतुर्थाध्यायगत ॥ २२ ॥ ॥ अद्वैतविषै तात्पर्यकूं इन षट् लिंगोंकरि

जानतेहैं ॥ ॥ औ अग्निके निश्चायक धूमरूप लिंगकी न्यांई इस प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मके निश्चायक ये लिंग हैं। [ऐसैं जानना]॥२३॥

**इति संक्षेपतः प्रोक्ता षड्लिंगानां विचारणा।**
**दशोपनिषदां तद्वत्तामन्यास्वपि योजयेत् ॥२४॥**

टीकाः—इसरीतिसैं संक्षपतैं दश उपनिषदनके षट् लिंगनका विचार कहा। ताकी न्यांई ता (विचार)कूं अन्य उपनिषदनविषै बी जोडना ॥ २४ ॥

**दोषोऽप्यत्रोपयुक्तत्वाद्गुण एवेति चिंत्यताम्।**
**सारग्रहणशीलैस्तु पितृभ्यां बालवाक्यवत् ॥२५॥**

टीका—इस ग्रंथविषै क्वचित् दोषबी उपयोगी होनेतैं "गुणहीं है" ऐसैं सारग्राही स्वभाववाले कविनकरि विचारनेकूं योग्य है ॥ माता पिताकरि विनोदअर्थ उपयोगि बालकके कल वाक्यकीन्यांई ॥२५॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषल्लिंगकीर्त्तनं नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

**इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाऽऽचा-**
**र्य्य बापुसरस्वती पूज्यपाद शिष्य**
**पीतांबरशर्मविदुषा विरचितः**
**सटीकः श्रुतिषल्लिंगसंग्र-**
**हाऽऽख्यो ग्रंथः**
**समाप्तः ॥**

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

# ईशाद्यष्टोपनिषत्

अथ ईशोपनिषत्प्रारंभः ॥ १ ॥

नमस्काराद्यात्मकमंगलाचरणपूर्वकग्रंथारंभप्रतिज्ञा

यस्य स्मरणमात्रेण विघ्नजातं विनश्यति ।
हस्तितुंडलसत्काय गणनाथ नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

वेदांतसिद्धांतविकासकाय
तमोतमोध्वंसनतत्पराय ।
शीतांशुसीतांकितशेखराय
नमोऽस्तु तस्मै गुरुशंकराय ॥ २ ॥

श्री

## ईशाद्यष्टोपनिषद्भाष्यभाषादीपिका

अथ यजुर्वेदीय ईशावास्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ १ ॥

॥ भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—अब भाषाकर्त्ता, गणेश औ अपने इष्टदेव गुरु औ वेदांतशास्त्रका नस्काररूप मंगल करिके ग्रंथके आरंभकी प्रतिज्ञा करै हैः—

जिसके स्मरणमात्रसैं विघ्नका समूह नाश होवैहै औ हस्तीके वदनसैं शोभित है शरीर जिसका, ऐसे हे गणनाथ! तुम्हारे ताईं मेरा नमस्कार होहु ॥ १ ॥

टीकाः—वेदांतके सिद्धांतरूप कमलकूं सूर्यकी न्यांई प्रफुल्लित

**सर्वानर्थनिहंत्री या परमानंददायिनी ।**
**ता हितोपनिषद्रूपा ब्रह्मविद्या भजामहे ॥ ३ ॥**
**श्रीरामं सद्गुरुं बापुं सज्जनान् ब्रह्मवित्तमान् ।**
**पंडितांश्च प्रणम्याहं कुर्वे वेदांतदीपिकाम् ॥४॥**
**गोप्येयं परमा विद्या महिषीव महीयसी ।**
**दैवादनार्यदृष्टा चेदार्यैर्दृश्याऽपि नो कुतः ॥ ५ ॥**

---

करनेहारे औ अज्ञानरूप अंधकारके नाश करनेविषै तत्पर औ चंद्रमा अरु गंगाकरिके शोभित है जटामुकुट जिसका, ऐसै जे श्रीगुरुशंकर हैं, तिनके तांई मेरा नमस्कार होहू ॥ २ ॥

**टीकाः**—अविद्या तत्कार्यरूप सर्व अनर्थनकी निवर्तक औ परमानंदकी देनेहारी औ सहस्रमातातुल्य हितकारिणी जो उपनिषद्रूप[1] ब्रह्मविद्या है, तिसकूं हम भजते हैं ॥ ३ ॥

**टीकाः**—मेरे परसद्गुरु श्रीरामकूं औ साक्षात्सद्गुरु श्रीबापुमहाराजकूं औ ब्रह्मनिष्ठ सज्जनोंकूं औ निर्मत्सर पंडितनकूं प्रणाम करिके, मैं उपनिषदनकी वेदांतदीपिका[2] नाम टीका करूं हूं ॥ ४ ॥

**टीकाः**—यद्यपि यह उपनिषद्रूप परमविद्या आधुनिक कोइक राजाकी महाराणीकी न्यांई अतिशय बडी है औ त्रिवर्णरूप स्वसंबंधिनकूं छोडिके अन्यलोकनसैं गुप्त रखनेकूं योग्य है तथापि सो उपनिषद्रूप महाराणी, दैवगतिसैं देशांतरवासी नीचलोकोंनैं जब देखी,

---

१ उपनिषद् शब्दका मुख्यअर्थ ब्रह्मविद्या है, औ उपचारसैं ब्रह्मविद्याके जनक वेदके अंतभागकूं बी उपनिषद् कहै हैं । यह अर्थ, कठउपनिषद्के आरंभमैं आगे लिखा है, तहां देखलेना.

२ वेदनका अंत, कहिये ब्रह्म औ आत्माकी एकताका निर्णय; ताकूं जातैं दीपककी न्यांई प्रकाशनेवाली है यातैं या टीकाका नाम वेदांतदीपिका है । अथवा वेदांत, कहिये वेदनके अंतभागमैं परिगणित जे

**भाष्यकारोक्तिसन्मार्गं सट्टीकासार्थवाहकम् ।**
**मयाऽऽश्रित्यैव श्रुत्यर्थप्रदेशः प्राप्यते जनैः ॥६॥**

## ॥ वस्तुनिर्देशरूप मंगलाचरण ॥

**परमात्माद्वयानन्दः पूर्णः शुद्धः स्वयंप्रभः ।**
**वेदांतविषयः साक्षात् सोऽहमस्मि निरंतरम्॥७॥**

---

तब स्वदेशवासी उच्चलोकनकरि बी किस कारणतैं देखनेकूं योग्य नहीं है ? किंतु देखने योग्यहीं है, प्रथमहीं मर्यादाके भंग होनेतैं ॥ ९ ॥

**टीकाः**—श्रीस्वामी आनंदगिरिकृत श्रेष्ठ टीकारूप है साथि मार्गका दिखावनेहारा जिसविषै, ऐसा जो श्रीमत् शंकराचार्यकृत भाष्यरूप श्रेष्ठमार्ग है, ताकूं आश्रय करिकेहीं मेरेकरि भाषाटीकाद्वारा संशयादिरूप सिंह चौरादिकसैं रक्षण किये अधिकारीजनोंकरि ब्रह्मआत्माकी एकतारूप जो श्रुति (उपनिषद्)नका अर्थ है, तारूप निर्भय सर्वदुःखरहित सुखस्वरूप देश है सो प्राप्त करिये है ॥ ६ ॥

## ॥ वस्तुनिर्देशरूप मंगलाचरण ॥

**टीकाः**—अद्वैत आनंदस्वरूप पूर्ण शुद्ध स्वयंप्रकाश परमात्मारूप जो वेदांत ( उपनिषद् )नका विषय है, सो साक्षात् निरंतर मैं हूं ॥ ७ ॥

---

ईशावास्य, केन, कठवल्ली, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, औ ऐतरेय येः अष्टउपनिषद् हैं । तिनके अर्थकूं जातैं दीपककी न्याईं प्रकाशनेवाली है, यातैं या टीकाका नाम वेदांतदीपिका है । याहीका एक एक उपनिषद्के अंतमैं भाष्यभाषादीपिकानामसैं व्यवहार किया है ।

## ॐ । वाजसनेयसंहितोपनिषद् ॥ १ ॥

**ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥**

### ईशोपनिषद्भाष्यभाषादीपिका प्रारंभः ॥

**टीकाः**—“ईशावास्य” इनसैं आदिलेके जे वेदके मंत्र हैं, तिनका कर्मविषै संबंध नहीं है, काहेतैं तिन वेदके मंत्रनकूं कर्मके अनुपयोगी आत्माके स्वभावके प्रकाशक होनेतैं । आत्माका स्वभाव जो शुद्धपना निष्पापपना एकपना नित्यपना अशरीरपना सर्वगतपना इनसैं आदिलेके आगे कहियेगा, सो कर्मसैं विरुद्ध होवै

---

३ भगवान् भाष्यकार (श्रीशंकराचार्य) जे हैं, वे इहां ईशावास्यसैं आदिलेके जे अष्टादशमंत्र हैं, तिनका व्याख्यान करते हुये, प्रथम वे मंत्र कर्मविषै उपयोगी होवैंगे या शंकाकूं दूरी करै हैं । केइक कर्मजड जे हैं, वे ऐसैं मानते हैंः—ईशावास्य आदिक जे मंत्र हैं, वे कर्मविषै उपयोगी हैं, मंत्र होनैतैं; अन्य मंत्रोंकी न्याईं । यातैं इन मंत्रनके भिन्न प्रयोजनआदिक अनुबंधनके अभावतैं, ये मंत्र व्याख्यान करनेयोग्य नहीं हैं, ऐसैं मानते हैं, तिनके ताईं कहै हैं ।

४ कर्मविषै अनुपयोगी जो शुद्ध आदिक विशेषणरूप आत्माका स्वभाव है, सो इन मंत्रनसैं प्रतिपादन किया है, सो इन मंत्रनके कर्मविषै उपयोगीपनैमैं प्रमाणके अभावतैं है । सो आत्माका स्वभाव, केवल कर्मविषै अनुपयोगी है इतनाहीं नहीं, किंतु कर्मसैं विरुद्ध है । काहेतैं, मैं स्वभावतैं शुद्ध हूं औ किसी बी पापसैं रहित हूं औ सर्वत्र एक हूं औ अशरीर हूं औ आकाशकी न्याईं व्यापक हूं, ऐसैं जानता हुयां पुरुष, कटाक्षसैं बी कर्मकूं नहीं देखता है, किंतु लोकनके अनुग्रह अर्थ ऊपरकी दृष्टिसैं वा लोकनसैं उलटा कर्मकूं करता है । तहां बी अज्ञानदशाजैसी कर्मकी प्रवृत्तिकूं करता नहीं, किंतु रोकता है; या अभिप्रायकरि इहांसैं कहते हैं ।

है, यातैं इन मंत्रनका कर्मविषै असंबंध युक्तहीं है। कथन किया जो आत्माका स्वभाव, सो उत्पत्ति होनेयोग्य वा विकारी होनेयोग्य वा प्राप्त होनेयोग्य वा संस्कार करनेके योग्य, वा कर्त्ता वा भोक्ता होवै तो आत्मा कर्मका शेष( कर्मविषै उपयोगी )होवै। जातैं आत्माका स्वभाव तैसा नहीं, यातैं आत्मा कर्मका शेष नहीं है ॥ किंवा, सर्वउपनिषदनकी आत्माके स्वभावके निरूपणकरिहीं

---

५ किंवा जो कर्मविषै उपयोगी पदार्थ है, सो पुरोडाश आदिककी न्याईं उत्पत्ति करनेयोग्य औ सोम आदिककी न्याईं विकारकूं पावनेयोग्य औ मंत्र आदिककी न्याईं प्राप्ति होनेयोग्य औ तंदुल आदिककी न्याईं संस्कार करनेयोग्य देख्या है; तैसा आत्माका स्वभाव नहीं, यातैं उत्पत्ति विकार प्राप्ति औ संस्काररूप जो कर्मके साधनोंविषै व्यापक धर्म हैं, वे आप आत्माके स्वभावतैं भिन्न हुये आत्माके स्वभावकी कर्मसाधनताकूं बी दूरी करते हैं। या अभिप्रायसैं आचार्य इहां कहै हैं।

६ आत्मा, जब कर्त्ता भोक्ता होवै, तब 'मेरा यह कर्म वांछितफलका साधन है, तातैं मुजकरि करनेयोग्य है' या अहंकारके संबंधपूर्वक कर्मका आत्मारूप कर्त्ताके साथि संबंध होवै, आत्माका स्वभाव जातैं कर्त्ता औ भोक्ता नहीं है, तातैं बी आत्मा कर्मविषै उपयोगी नहीं, ऐसैं इहां कहै हैं।

७ "जा अर्थविषै शब्दका तात्पर्य है, सो शब्दका अर्थ है" ऐसी मीमांसाशास्त्रकी प्रसिद्धितैं औ सर्व उपनिषदनके एक आत्मभावविषै तात्पर्यके देखनेतैं, उपनिषदनकूं कर्मसंबंधी जपविषै उपयोगीपना कहनेकूं शक्य नहीं है। तैसैं दिखावैहैं:—"ईशावास्य (ईश्वरसैं ढांपनेयोग्य)" ऐसैं प्रथममंत्रसैं उपक्रम (आरंभ) करिके "स पर्य्यगाच्छुक्र (सो चारिओरतैं जाता भया औ शुद्ध है) ऐसैं अष्टममंत्रकरि उपसंहार (समाप्ति) तैं, औ "अनेजदेकं (अचंचल है अरु एक है)" ऐसैं चतुर्थमंत्रसैं औ "तदंतरस्य सर्वस्य (सो सर्वके अंतर है)" ऐसैं पंचममंत्रसैं अभ्यास (वारंवारकथनरूप आवृत्ति)के देखनैतैं, औ "नैनद्देवा आप्नुवन् (याकूं देव नहीं पावते भये)" ऐसैं चतुर्थमंत्रसैं, उपनिषद्तैं अन्यप्रमाणकी अविषयतारूप अपूर्वताके सम्यक् कहनेतैं, औ "को मोहः कः शोक एकत्वम-

समाप्तितैं। अरु गीताआदिक मोक्षशास्त्रविषै गायन किये जे मोक्षके धर्म, तिनकूं आत्मस्वभावके परायण होनेतैं, आत्माकूं कर्मकी शेषता नहीं है। तातैं आत्माका अनेकपना कर्त्तापना भोक्तापना आदिक औ अशुद्धपना पापसंबंधिपना आदिक जे धर्म हैं, तिन धर्मनकूं लेके लोकनकी बुद्धिसैं सिद्ध कर्म विधान किये हैं। जो पुरुष, ब्रह्मतेज आदिक दृष्ट औ स्वर्गआदिक अदृष्टरूप कर्मके

---

नुपश्यतः (एकताके देखनेहारेकूं कौन मोह है, कौन शोक है)" ऐसैं सप्तममंत्रसैं फलवान्ताके सम्यक् कहनेतैं, औ "कुर्वन्नेवेह (इहां कर्मनकूं करता हुयाहीं जीवनेकूं इच्छे)" ऐसैं द्वितीयमंत्रसैं, जीवनेकी इच्छावाले भेददर्शीकूं कर्म करनेके अनुवादकरि, पीछे "असूर्य्या नाम ते (वे असुरनके लोक प्रसिद्ध हैं)" ऐसैं तृतीयमंत्रसैं, भेदज्ञानकी निंदाकरि एक आत्मभावके ज्ञानकी स्तुति करनेरूप "अर्थवाद"के देखनैतैं, औ "तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति (ताके होते वायु जलकूं धारता है)" ऐसैं चतुर्थमंत्रसैं उपपत्ति (युक्तिसैं प्रतिपादन)कूं कहनेवाली या ईशाउपनिषद्का एक आत्मभावविषै तात्पर्य देखिये है। ऐसैं अन्यउपनिषदनके बी उपक्रम अरु उपसंहारकी एकरूपता, अभ्यास, अपूर्वता, फलवान्ता, औ युक्तिसैं प्रतिपादनरूप जे षट्तात्पर्यके लिंग हैं; वे विकल्पसैं वा समुच्चयसैं आनंदगिरिकृत तत्त्वालोक नाम ग्रंथविषै दिखाये हैं [वा श्रुतिषड्लिंग संग्रह इसके आरंभमैं रखा है। तामैं दिखायेहै] या इहां तिनका विस्तार नहीं करियेहै। इन षट्लिंगनसैं सर्व उपनिषदनका अद्वैतब्रह्मविषै तात्पर्यका निश्चय, श्रवण कहियेहै। तातैं प्रमाणगत संशयकी निवृत्ति होवैहै। यातैं उपनिषदनके विचारनेवै इन षट्लिंगनकूं जानिके तिनके तात्पर्यका निश्चय करना योग्य है।

८ जब ऐसा (कर्मविषै अनुपयोगी) आत्मतत्त्व है, तब अधिकारीके अभावतैं कर्मकांडका उच्छेद होवैगा। यह आशंका बी करने योग्य नहीं। काहेतैं, उपनिषद्गम्य आत्माके स्वभावकूं न जाननेवाले तीव्रक्रोधकरियुक्त चित्तवाले पुरुषके ताईंहीं अथर्वणवेदउक्त शत्रुनाशक श्येनयाग आदिककी विधिका प्रमाणपना है। तैसैं मिथ्यादर्शीके ताईंहीं कर्मविधिका प्रमाणपना है। या अभिप्रायसैं इहां कहे हैं।

फलका अर्थी है, अरु मैं द्विजाति ( ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य ) हूं, काण औ अंगभंग आदिक अनधिकारके धर्मवाला नहीं, ऐसैं आपकूं मानता है, सो कर्मविषै अधिकारी होवै है, ऐसैं अधिकारके जाननेहारे जैमिनि आदिक कहते हैं। तातैं ये वेदके मंत्र आत्माके स्वभावके प्रकाशनेसैं, आत्माकूं विषय करनेहारा जो स्वाभाविक कर्मका ज्ञान है, ताकूं निवृत्त करते हुये, शोक मोह आदिक संसारके धर्मकी निवृत्तिका साधन जो आत्माके एकता आदिक स्वभावका ज्ञान है, ताकूं उत्पन्न करते हैं। ऐसैं कथन किये विषय संबंध औ प्रयोजनवाले मंत्रनकूं अब संक्षेपतैं व्याख्यान करै हैं ॥ ॥ सर्वका ईशिता परमेश्वर परमात्मा जो है, सोई सर्व जंतुनका आत्मा

---

९ जातैं आत्माके स्वभावके प्रकाशक ये मंत्र, कर्मके साधन नहीं औ अन्य प्रमाणोंतैं विरुद्ध नहीं, तातैं तिनकूं अधिकारी विषय प्रयोजन औ संबंध, इन चारिअनुबंधनसैं युक्तपना बी सिद्ध भया। ऐसैं इहां कहे हैं।

१० इहां यह रहस्य हैः—ईशिता शब्द जो है, सो सर्वके स्वामीपनैके कर्त्ताका वाची है, परमेश्वर अक्रिय होनेतैं ता शब्दका वाच्य कैसैं बनै? तहां कहे हैंः—माया उपाधिवाले परमेश्वरकूं सर्वके स्वामीपनैका कर्त्ता होनेका संभव है, तातैं ताकूं ईशिता शब्दका वाच्य होनेका विरोध नहीं; औ माया उपाधिरहित परमेश्वरकूं लक्ष्यपना होवैगा, यातैं इहां परमेश्वरकूं ईशिता औ परमात्मा, ये दोनूं विशेषण दिये हैं, वे घटित हैं।

११ जब परमेश्वर ईशिता है, तब सो राजाकी न्याईं सर्व जीवनके स्वामीपनैका कर्त्ता भया औ सर्व जीव, प्रजाकी न्याईं ता स्वामीपनैरूप क्रियाके विषय भये; यातैं तिनका भेद प्राप्त होवैगा। यह शंका बनै नहींः—काहेतैं, जैसैं दर्पण आदिकनविषै, एक पुरुषके अनेक प्रतिबिंब होवै हैं; तिनका निजरूप जो बिंबभूत पुरुष, सो ईशिता होवै है। तैसैं परमेश्वर, सर्व जीवनका आत्मा हुया बी ईशिता संभवै है। यातैं इहां भेदकी शंका नहीं है।

( निजरूप ) हुया सर्वके प्रति स्वामीपनैकूं धारता है। तिस परमात्मारूप अपने स्वरूपसैं [12]पृथिवीविषै जो कछु [13]जगत् है, यह सर्व मैंहीं हूं, ऐसैं परमार्थ सत्यरूपसैं मिथ्या यह सर्व चराचर, आच्छादन (तिरोधान) करनेकूं योग्य है। [14]जैसैंः—चंदन अगरु आदिकका जलादिकके संबंधसैं जो गीलेपना होवैहै, तिससैं भया जो उपाधिका किया मिथ्या दुर्गंध, सो तिस चंदनादिकके स्वरूपके घसीटनेसैं प्रगट भया जो स्वाभाविक गंध, तिससैं आच्छादित होवै है। [15]तैसैंहीं अपने आत्माविषै अध्यस्त स्वाभाविक ( अविद्याक

---

१२ इहां मूलविषै जो पृथिवीका वाचक "जगती" शब्द है, सो सा प्रपंचके ग्रहण अर्थ है।

१३ इहां जगत् शब्दसैं पृथिवी शब्दकी न्यांई नाम रूप औ क्रियाम जो सर्व चराचररूप प्रपंच है ताका ग्रहण है। परंतु ता "पृथिवी" शब्दसैं आधारभावसैं स्थित सारे प्रपंचका ग्रहण है; औ या "जगत्" शब्दसैं आधेयभावकरि स्थित सारे प्रपंचका ग्रहण है; यातैं पुनरुक्तिदोष बी नहीं

१४ जा पुरुषकूं आचार्यके उपदेशसैं जन्य ज्ञानमात्रसैं मिथ्या दृष्टि निवृत्ति नहीं होवै है; ताकी मिथ्यादृष्टि, विचार आदिक प्रयत्नसैं ब्रह्मात्माकी एकतारूप तत्त्वके अपरोक्ष भये निवृत्त होवै है; या अभिप्राय इहां चंदन आदिकके दुर्गंधका दृष्टांत कहै हैं।

१५ जैसैं चंदन आदिकनकूं जल आदिकके संबंधतैं गीला आदिक होनेकरि भया जो दुर्गंधपना, सो जल आदिककी उपाधि किया मिथ्या होनेतैं, ताके स्वरूपके संघर्षणकरि प्रगट भये स्वाभाविक गंधसैं तिरस्कारकूं पावता है; तैसैं विचार आदिक प्रयत्नरूप घर्षणकरि प्रकट भया जो आत्माका स्वाभाविक ( परमार्थसैं सत्य निजस्वरूप, ताके निश्चयसैं, कल्पित औ स्वाभाविक कर्त्ताभोक्तापनैं भावनारूप मिथ्याबुद्धि ( विपरीतज्ञान )का तिरस्कार ( त्याग ) होवै है इहां स्वभाव, कहिये अनादि अविद्या। ताका कार्य जो कर्त्तापना औ भोक्तापना आदिक प्रपंच, सो स्वाभाविक कहिये है। इनसैं आदि लेके

कार्य ) जो कर्त्ताभोक्तापनैसैं आदिलेके द्वैतरूप सर्वहीं नाम रूप कर्म इस नामवाला विकारनका समूह जगत् है, सो परमार्थ सत्य आत्माकी भावनासैं त्याग किया होवैहै ॥ [१६]ऐसैं ईश्वररूप आत्माकी भावनासैं युक्त पुरुषकूं पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा, इन तीन एषणा (इच्छा)-के संन्यास ( त्याग )विषै अधिकार है, कर्मविषै नहीं । [१७]तिसैं त्यागसैं आत्माकी पालना ( रक्षा ) कर । [१९]ऐसैं त्याग करी हैं तीन एषणा जिसनैं, ऐसा जो तूं, सो काहूके धनकी (परके धनकी वा अपने धनकी) इच्छाकूं मति कर । अथवा ( यह दूसराअर्थ है )

---

प्रपंचके विशेषण कहे हैं, वे ताके बाध होनेकी योग्यताके दिखावने अर्थ हैं । या अभिप्रायसैं अब कहे हैं ।

१६ ऐसैं विचार आदिक प्रयत्नवाले पुरुषकूं "यह मिथ्यादृष्टि है" ऐसा निश्चय कहिके, अब युक्तिकूं जाननेवाले औ "सर्वका जाननैवाला ईश्वर मैं हीं हूं" ऐसी भावनाविषै अरु विचारविषै अधिकारी युक्तिकुशल पुरुषकूं; सर्वकर्मके संन्यासविषैहीं अधिकार है, ऐसैं या मंत्रविषै कहनेकूं इच्छित है । काहेतैं, "ता त्यागसैं" इन पदनसैं त्यागके स्मरणसैं । औ "जातैं त्यागनैवालेसैं सो ब्रह्मजाननैयोग्य है, तातैं त्यागनेवालेकूं सर्वांतर परमपद प्राप्त होवै है" ऐसैं अन्य ठिकाने वी कहनेतैं, औ त्यागनेयोग्य पुत्रादिककी तीनएषणाकूं चित्तविक्षेपकी हेतु होनेकरि प्रसिद्ध होनेतैं । या अभिप्रायसैं इहां कहे है ।

१७ अब कथन कीये प्रपंचके त्यागरूप संन्यासकी स्तुति करै हैं ।

१८ जातैं यह त्याग निष्क्रिय आत्मस्वरूपकी स्थिति करनेविषै अनुकूल है, तातैं या त्यागसैं आत्माकी रक्षा होवै है ।

१९ अब संन्यासीकूं शरीरकी धारणाविषै उपयोगी जो कौपीन अंचला औ भिक्षाका भोजन, तातैं भिन्नपदार्थके संग्रहविषै जब कोइक प्रकारसैं राग प्राप्त होवै, तब ताके रोकनेविषै प्रयत्न किया चाहिये, काहेतैं, ता रागकूं मुख्य विरोधी होनेतैं । या अभिप्रायसैं संन्यासीके प्रति नियमविधिकूं कहे हैं ।

**कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।**
**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥**

---

इच्छाकूं मति कर । काहेतैं किसीका धन है, किसीका बी नहीं जिसकी इच्छा करिये । आत्माहीं सर्व है, ऐसी ईश्वरकी भाव नासैं सर्व त्याग किया है ॥ जातैं आंत्माकाहीं यह सर्व है [20] आंत्माहीं सर्व है, यातैं मिथ्यावस्तुविषै इच्छाकूं मति कर, य अर्थ है ॥ १ ॥

**टीका:**–ऐसैं[22] आत्मज्ञानीकूं पुत्रादिककी एषणा तीनके त्याग आत्मज्ञानविषै निष्ठावान् होनेसैं, आत्माकी रक्षा करनेयोग्य है; ऐ यह वेदका अर्थ है, सो प्रथममंत्रविषै दिखाया। अब दूसरामंत्र, अ त्मज्ञानी होनेसैं आत्माके ग्रहणविषै असमर्थ अन्य पुरुषकूं यह कर्म उपदेश करता है:–शतवर्षका पुरुषका परमआयु है, तातैं य प्राप्त आयुके अनुवादसैं, जो इहां शतवर्ष जीवनेकूं इच्छता है सो अग्निहोत्रादिक कर्मनकूं करता हुयाहीं इच्छे, यह विधि है

---

२० व्यवहारदृष्टिसैं यह सर्वप्रपंच आत्मासैंहीं शेषरूप ( भुक्त ) है। काहेतैं, जड वस्तुकूं चेतनके अधीन होनेतैं । यातैं संन्यासीकूं श (भुक्त) विषयविषै इच्छा करनी योग्य नहीं । यह अभिप्राय है ।

२१ परमार्थसैं तो आत्माहीं सर्वरूप है, यातैं कोइ इच्छाका विष नहीं; यह तात्पर्य्य है ।

२२ प्रथममंत्रके पूर्वार्द्धसैं तत्त्वका उपदेश किया औ ताके तृतीयपा अपरिपक्कज्ञानीकूं ज्ञानविचारविषै उपयोगी निवृत्तिके साधन संन्या विधि कहा औ ताके चतुर्थपादसैं संन्यासीकूं नियमका विधि कहा। रीतिसैं प्रथममंत्रके पदपदका व्याख्यान करिके, अब द्वितीयमंत्रसैं प्रथम त्रके संबंधके कहनेकी इच्छासैं, आचार्य, प्रथममंत्रके अर्थका सं अनुवाद करै हैं ।

इस प्रकारका जीवनेकूं इच्छनेहारा नरमात्रका अभिमानी जो तूं हैं, तिस तेरेविषै इस अग्निहोत्रादिक कर्मनकूं करते हुये वर्तमान करनेरूप प्रकारतैं और प्रकार नहीं है । जिस प्रकारसैं तूं अशुभकर्मसैं लिप्त होवै नहीं । यह अर्थ है । यातैं पुरुष, शास्त्रविहित अग्निहोत्रादिक कर्मनकूं करता हुयाहीं जीवनेकूं इच्छे ॥ इहां इन दोमंत्रनका समुच्चयविषै तात्पर्य होवैगा । ऐसी एकदेशीकी शंका है:–[२३]पूर्वमंत्रविषै संन्याससहित ज्ञाननिष्ठा कही औ द्वितीयमंत्रसैं

---

२३ इहां जा अधिकारीकूं पूर्वमंत्रसैं ज्ञान कहा, ताहीकूं द्वितीयमंत्रसैं कर्म कहा है, यातैं इन दोनूंमंत्रनका समुच्चय (मिलितज्ञान अरु कर्म)के अनुष्ठानविषै तात्पर्य्य है । या अभिप्रायसैं वेदांतके एक देशकूं माननेवाले प्राचीनवृत्तिकार, भर्तृप्रपंच नामवाले एकदेशीके मतकी शंका है, ताकूं प्रकट करै हैं ॥ जो समुच्चयवादी कहै:—शुद्धब्रह्मके ज्ञानका औ कर्मका एक पुरुषके ताईं क्रमविना अधिकारका विरोध है, यातैं ऋतुगमन औ त्रिदंडीके धर्मकी न्याईं, इहां बी क्रमसैं एककूं अधिकार होवैगा । सो बनै नहीं:–काहेतैं, तहां गृहस्थपनैं औ त्रिदंडीपनैंकरि विशिष्टरूपके भेदतैं क्रमसैं एककूं अधिकारका संभव है औ इहां शुद्धपनैं आदिक औ कर्त्तापनैं आदिक विशिष्टरूपके भेदके अभावतैं, ज्ञान औ कर्म दोनूंका क्रमसैं बी (प्रथम ज्ञानका, पीछे कर्मका) एककूं अधिकार संभवै नहीं । जो कहै:–इहां ज्ञान औ कर्म दोनूंकूं शास्त्रविहित हुये शुद्धिकी समतातैं विरोध असिद्ध है ? सो बी बनै नहीं:–काहेतैं, ऐसैं हुये ऋतुगमन औ त्रिदंडीके धर्मकूं बी अविरोधका प्रसंग होवैगा । जो कहै:–ऋतुगमन औ त्रिदंडीका धर्म ये दोनूं, एककूं शास्त्रविषै विहित नहीं ? तब एककूं करनेका शास्त्रविषै निषेध, ज्ञान औ कर्मका बी तुल्य है । जो कहै:–ऋतुगमन औ त्रिदंडीके धर्मका एककालविषै दोनूंका अनुष्ठान करनेरूप समुच्चय नहीं है । तब इहां बी "न कर्मसैं न प्रजासैं मोक्षकूं पावता है" औ "बहुत शब्दनकूं चितवे नहीं" इत्यादि वाक्यसैं ज्ञान औ कर्मके समुच्चयका निषेध तुल्य है । औ यह श्रुतिउक्त निषेध केवल कर्मकाहीं है अरु ज्ञानका नहीं । यह कहना बनै नहीं:–काहेतैं, तहां केवल पदका अभाव है औ अबतलकी

तिसविषै असमर्थकूं कर्मनिष्ठा कहिये है, यह कैसैं जानिये है? शंकाका यह समाधान हैः—ज्ञान औ कर्मका विरोध पर्वतकी न्या अचल कहा है, ताकूं क्या स्मरण नहीं करता हैं? ईहां बी क है:—"जो जीवनेकूं इच्छे सो कर्म करता हुया इच्छे, यह सर्व ईश्व रसैं आच्छादन करने योग्य है, तिस त्यागसैं पालनाकूं कर, कि सीके बी धनकी इच्छा मतिकर" "जीवित वा मरणविषै इच्छा औ वनकूं जावै, इन दोनूंका मिलाप बनै नहीं, तिस वनविषै मन किये पीछे आवै नहीं," ऐसा संन्यासका शासन है। यातैं ज्ञा कर्मका समुच्चय बनै नहीं। औ ज्ञानकर्मके फलका भेद आगे इ हीं उपनिषद्विषै कहियेगा औ नारायणउपनिषद्विषै बी कहा है "क्रियामार्ग औ इसी प्रकारका संन्यास, ये दोनूंमार्ग सृष्टिका विषै भूतनकी सृष्टिके पीछे प्रवृत्त भये हैं। तिन दोनूंविषै सं सहीं श्रेष्ठ होवैहे" औ "संन्यासहीं श्रेष्ठ होवैहे [परम षार्थके अंतरायसैं रहित होनेतैं]" ऐसैं तैत्तिरीयविषै कहा औ वेदनके आचार्य भगवान् व्यासजीनैं बी शुकदेव पुत्रके विचारिके निश्चित कहा हैः—"अब ये दोनूं मार्ग हैं, जिन

---

समुच्चयका विधि अनिश्चित है। तातैं इन दोनूं मंत्रनका समुच्चयविषै त्पर्य नहीं है। या शंकासमाधानके अभिप्रायसैं आचार्य्य इहांसैं समु वादीके प्रति कहै हैं।

२४ इन दोनूंमंत्रनके लिंगतैं बी ज्ञान औ कर्मका अधिकार भिन्न तीत होवै है। काहेतैं, इन दो मंत्रनविषै जीवनेंकी इच्छावाले कर्मका विधान किया है औ "सर्व ईश्वरही हैं" ऐसैं जाननैंवालेकूं त्या विधान कीया है। किंवा, धनवान्कूंहीं कर्मका अधिकार होवै है। प्रथममंत्रके अर्थके अधिकारीकूं धनकी इच्छाके निषेधसैं कर्मके अधि रका निषेध प्रतीत होवै है। किंवा जीवनेकी इच्छा कर्मके अधिका होवै है, ज्ञानके अधिकारीकूं नहीं। यामैं अनेक प्रमाण हैं। यातैं औ कर्मका समुच्चय बनै नहीं। या अभिप्रायसैं अब कहै हैं।

**असूर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।**
**तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ३**

---

वेद स्थित हैं । एक प्रवृत्तिलक्षणवाला धर्म है औ दूसरा निवृत्ति-विषै सिद्ध किया ( संन्यास ) है " इत्यादि इन दोनूं मार्गनका विभाग आगे दिखावैंगे ॥ २ ॥

**टीका:**—अब अविद्वान्‌की निंदाअर्थ यह तीसरा मंत्र आरंभ करियेहै:—जे **आत्माके हनन करनेहारे जन** हैं । वे अद्वैत-परमात्मभावकी अपेक्षासैं देवादिक असुर हैं, तिनके शरीररूप कर्मनके फल अनेकप्रकारके जे जन्म हैं, वे प्रसिद्ध **असूर्य लोक हैं,** औ जे अदर्शनमय अज्ञानरूप **अंधकारसैं आवरणकूं प्राप्त भये हैं** । तिन देवनसैं आदिलेके स्थावरपर्यंत देह-रूप लोकन-**कूं इस देहका त्याग करिके,** कर्म अनुसार जैसैं शास्त्रविषै सुन्या है, तैसैं **प्राप्त होवैहैं** । कौंन वे आत्माके हनन करनेहारे जन हैं? तहां कहैहैं:—जे अविद्वान् हैं । वे कैसैं नित्य आत्माकी हिंसा करैहैं? तहां कहै हैं:—[25]अविद्यारूप दोषसैं विद्यमान आत्माके तिरस्कारके करनेतैं वे नित्य आत्माकी हिंसा करैहैं । विद्यमान आत्माका जो अजर अमरपनैआदिक लक्षणविषै "मैं हूं" ऐसैं जानने औ कहनेरूप कार्य औ फल है, सो तिस

---

२५ इहां या अध्यात्मशास्त्रविषै लोकप्रसिद्ध अपने उदरके भेदक आत्महत्यारेके प्रसंगके अभावतैं अशुद्धपनैके अध्याससैं आत्माके तिरस्कारका कर्त्ताहीं इहां आत्महत्यारा कहियेहै । जैसैं कोइ शुद्धपुरुषकूं मिथ्या आरोप शस्त्रका वध कहियेहै, तैसैं आत्माविषै पापीपनै आदिकका अध्यास की हिंसा हीं है औ "अजर अमरपनै आदिक लक्षणवाला मैं हूं," ऐसा ज्ञान औ कथनरूप जो कार्य है, सो बी हननकिये पुरुषकी न्याईं आत्माकूं नहीं देखियेहै । जातैं यह आत्माका हनन कथनमात्र है औ या आत्मघातके प्रायश्चित्तका विधान नहीं देखिये है, तातैं जन्मादि संसारहीं याका फल है । या अभिप्रायसैं कहैहैं ॥

**अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुव-**
**पूर्व्वमर्षत् ।**
**तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मात-**
**श्वा दधाति ॥ ४ ॥**

---

आत्माका तिरोधानकूं प्राप्त भया है; यातैं प्राकृत जे अवि-(अज्ञानी) जन हैं, वे आत्मघाती कहियेहैं । वे अज्ञानीज-तिस आत्माके हननरूप दोषसैं, जन्मादिसंसारकूं पावतेहैं ॥ ३

टीकाः—जिस आत्माके हननतैं अविद्वान् संसारकूं पाव-औ तिनतैं विपरीतज्ञानसैं आत्माके नहीं हनन करनेहारे जे-द्वान् हैं, वे संसारतैं छूटतेहैं । सो आत्मतत्त्व कैसा है ? यह-तुर्थमंत्रविषै कहियेहैः—सो आत्मतत्त्व चलनसैं रहित है । हिये सर्वदा एकरूप (निर्विकार) है औ एक है, औ स-तनविषै संकल्पादिरूप मनसैं अतिशय वेगवान् है ॥ ननु-आत्मतत्त्व व्यापक औ अचल है, यातैं मनतैं वेगवाला है; विरुद्ध कैसैं कहतेहो ? तहां कहैहैं:—यह दोष नहीं है, क-निरुपाधिवान्पना औ उपाधिवान्पना, इन दोनूंका संभव है, तहां निरुपाधिकरूपसैं निश्चल औ एक कहिये है । औ सं-विकल्प लक्षणवाला अंतःकरणरूप जो मन है, तिसरूप उपा-अंगीकारतैं चंचलताआदिक व्यवहारका आश्रय कहियेहै-देहविषै स्थित मनकूं ब्रह्मलोकादिक दूरस्थित वस्तुका सं-क्षणमात्रतैं होवैहै; यातैं मन वेगवान् लोकविषै प्रसिद्ध है । मनके ब्रह्मलोकादिकके प्रति क्षणमात्रतैं गमन करते हुये,

---

२६ आत्मतत्त्व जब अक्रिय है, तब केईक पुरुष स्वर्गकूं जाते हैं, के-नरककूं जातेहैं, यह संसारकी व्यवस्था कैसैं होवैगी ? तहां मनरूप उ-धिसैं होवैहै; या अभिप्रायसैं अब कहैहैं ।

प्रथम प्राप्त हुयेकी न्यांई आत्मचैतन्यका आभास ग्रहण करियेहैं; यातैं आत्मतत्त्व, मनतैं बी वेगवान् है, ऐसैं कहा है। औ द्योतन (विषयनका प्रकाश) करनेतैं देव जे चक्षु आदिक इंद्रिय हैं, वे इस आत्मतत्त्व-कूं प्राप्त होते नहीं; काहेतैं, तिन इंद्रियनतैं मन वेगवान् है, यातैं इंद्रियनकी प्रवृत्तिकूं मनके व्यापारकी अपेक्षावाली होनेतैं, तिस मनके अविषय आत्माका आभासमात्र बी जब चक्षुआदि इंद्रियरूप देवनका विषय नहीं होवैहै तब आत्मा नहीं; यामैं कहा कहना है! जातैं आत्मतत्त्व आकाशकी न्यांई व्यापक है, यातैं वेगवान् मनतैं बी पूर्वहीं गया है, आकाशकीन्यांई व्यापक होनेतैं ॥ अब सर्वव्यापी सो आत्मतत्त्व सर्वसंसारधर्मनसैं रहित है, औ अपने निरुपाधिक स्वरूपसैं निर्विकारहीं हुया, अविवेकी मूढनकूं उपाधिकृत सर्वसंसारके विकारनकूं अनुभव करते हुयेकी न्यांई औ देहदेहके प्रति अनेककी न्यांई भासताहै; यह कहैहैं:—सो आत्मतत्त्व शीघ्र गमन करनेहारे आपतैं विलक्षण जे अन्य मन औ वाक्इंद्रिय आदिक हैं, ति-नकूं उल्लंघन करिके गमन करते हुयेकी न्यांई है ॥ अब इव (न्यांई) शब्दके अर्थकूं आपहीं श्रुति दिखावती है:—आप स्थित (निर्विकारहीं) है, ता नित्य चैतन्यस्वभाव आत्मचैतन्य-के होते, मातरिश्वा (वायु); आप (जल) कहिये प्राणीनकी चेष्टारूप औ अग्नि सूर्य आदिकनके जलना जलावना, प्रकाश वर्षण आदिकरूप कर्म, तिन-कूं विभाग करता है; वा धारण करता है। "या परमात्माके भयसैं वायु चलता है", इत्यादि श्रुतितैं। सैंर्वे हीं कार्य कारण आदिक विकार जे हैं, वे सर्वके आश्रयरूप नित्य चैतन्य आत्मस्वरूपके होते हीं होवैहैं. यह अर्थ है ॥ ४ ॥

---

२७ इहां मातरिश्वा (वायु)का ग्रहण, सर्व प्रपंचके ग्रहण अर्थ है; या तात्पर्य्यकूं दिखावैहैं।

**तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदंतिके ।**
**तदंतरस्य सर्व्वस्य तदु सर्व्वस्यास्य बाह्यतः॥**
**यस्तु सर्व्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।**
**सर्व्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६**

---

**टीकाः**—इन मंत्रनकूं आलस्य नहीं है, इस अभिप्रायसैं पूर्व मंत्रविषै कथन किये बी अर्थकूं फेर कथन करैहैः—जो प्रसंगप्राप्त है सो आत्मतत्त्व चलता (क्रिया करता) है औ सो आपतैं नहीं चलताहै; कहिये अचल हुआ चलतेकी न्यांई है किंवा सो दूर है; कहिये अविद्वानोंकूं वर्षनकी कोटिनसैं बी प्राप्त होने योग्य नहीं; यातैं दूरकी न्यांई है । तैसैं विद्वानोंका आत्मा है; यातैं अत्यंतहीं समीप है । केवल दूर औ समीप नहीं, किंतु सो इस सर्वके भीतर है। "आत्मा सर्वांतर है" इस श्रुतितैं। औ सो नामरूप औ क्रियात्मक इस सर्व जगत्के बाहिर है; काहेतैं आकाशकी न्यांई व्यापक होनेतैं, औ सर्वसैं अधिक सूक्ष्म होनेतैं यातैं "प्रज्ञानघनहीं है" इस श्रुतिके शासन (आज्ञा)तैं आत्मा निरंतर (एकरस) है ॥ ५ ॥

**टीकाः**—[२८]जो संन्यासी मुमुक्षु, अव्यक्त जो अज्ञान, तासैं आदि लेके स्थावरपर्यंत जे सर्व भूत हैं, तिन-कूं आत्माविषैहीं देखता है; कहिये, आपतैं भिन्न नहीं देखता है, औ तिन सर्वभूतनविषै आत्माकूं देखताहै; कहिये अपने आत्माकूं तिन भूतनका आत्मा देखताहै । जैसैं " इस कार्यकारण संघातरूप शरीरका आत्मा, औ सर्ववृत्तिनका साक्षी चेतन केवल निर्गुण हूं, इसीहीं स्वरूपसैं अव्यक्तसैं आदिलेके स्थावरपर्यंत सर्व भूतनका मैंही आत्मा हूं

---

२८ कथन किये आत्मज्ञानका फल, विधिनिषेधरहित जीवन्मुक्तरूपसैं अवस्थान है, या अर्थकूं षष्ठ औ सप्तम इन दोनूं मंत्रनसैं कहैहैं

**यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।**
**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥**

---

ऐसैं सर्वभूतनविषै निर्विशेषआत्माकूं जो देखता है, सो तिसीहीं दर्शन-तैं किसीकी निंदा नहीं करता है। यह प्राप्तका अनुवाद है। जातैं सर्वनिंदा, आत्मातैं भिन्न दृश्यवस्तुकूं देखनेहारे पुरुषकूं होवैहैं, आत्माकूंहीं अत्यंत निष्कलंक भेदरहित देखनेहारेकूं निंदाका निमित्त नहीं है; यातैं विद्वान्कूं यह निंदाका अभाव प्राप्तहीं हैं; तातैं निंदा नहीं करता है ॥ ६ ॥

**टीकाः**—इसीहीं अर्थकूं अन्य सप्तममंत्र बी कहता हैः—**जा कालविषै वा जा उक्त आत्माविषै,** तिन **सर्वभूतनके** प्रति प-रमार्थरूपआत्माके **दर्शनतैं आत्माहीं आच्छादित होता भया, ता कालविषै वा ता आत्माविषै एकता**(परमार्थ वस्तु)**के जाननेहारेकूं कौन मोह है औ कौन शोक है!** मोह औ शोक ये कामके बीज हैं औ अज्ञानतैं होवैहैं, यातैं शुद्ध औ आकाश-जैसै आत्माके एकपनैकूं देखनेहारे पुरुषकूं कोइ मोह औ कोइ शोक नहीं है। इहां अविद्याके कार्य जे मोह, शोक, तिनका जातैं आक्षेपसैं अदर्शन है, यातैं यह कारणसहित संसारकी अत्यंत[२९] निवृत्ति दिखाई है ॥ ७ ॥

---

२९ इहां यह रहस्य हैः—निरतिशय आनंद स्वरूप औ स्वभावसैंहीं दुःखके संबंधसैं रहित आत्माके न जाननेवालेकूं "हा (कष्ट है,) मैं माऱ्या गया हूं; मुझकूं पुत्र नहीं है, क्षेत्र नहीं है," यह बुद्धि होवैहै। तातैं पुत्रादिककूं इच्छता है औ ताके अर्थ देवता आराधन आदिकनके करनेकी इच्छा करता है; तातैं आत्माकी एकताके देखनेवाले तुजकूं अन्वय औ व्यतिरेकसैं शोक आदिकके अविद्याकी कार्यताके निश्चयतैं, मूलअविद्याकी निवृत्तिसैं हीं शोक आदिककी अत्यंतनिवृत्ति, विद्याका फल होनेकरि कहनेकूं इच्छित है। जा निवृत्तिके भये कार्यकी-

**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमप**
**पविद्धम् ।**
**कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्**
**व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥**
**अन्धं तमः प्रविशंति येऽविद्यामुपासते ।**
**ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँरताः॥९**

---

**टीकाः**—जो यह पूर्वके मंत्रनसैं कथन किया आत्मा, सो स्व रूपसैं इस प्रकारका है; ऐसैं यह अष्टममंत्र कहता हैः—**सो** आ **चारिओरतैं प्राप्त भया है;** कहिये आकाशकी न्यांई व्यापक है, **शुक्र,** नाम शुद्ध प्रकाशमान है, औ **अकाय** (लिंगशरीरसैंरहि है औ **अव्रण** ( चोटके लगनेसैं रहित) है औ **अस्नाविर** (ना रहित ) है । [ इहां अस्नाविर औ अव्रण इन दो पदनसैं स्थू हका निषेध किया ॥] औ सो आत्मा **शुद्ध** (निर्मल) है, औ अ **पविद्ध** ( धर्म अधर्म आदिरूप पापसैं वर्जित ) है, औ **कवि** ( कालदर्शी ) है, औ **मनीषी** (मनका नियामक सर्वज्ञ ईश्वर) औ **परिभू** ( सर्वके ऊपर ऊपर होनैंहारा ) है, औ **स्वयंभू** कहिये जिनके ऊपर होवैहै अरु जो ऊपर होवैहै, सो सर्व पहीं होवैहै । औ सो नित्यमुक्त ईश्वर, सर्वज्ञ होनेतैं जैसैं है, कर्मफलके साधनतैं करनेयोग्य **पदार्थनकूं बहुकालस्थायी संवत्सर** नामक प्रजापति है, **तिसके ताईं** यथायोग्य वि **करता भया** ॥ ८ ॥

**टीकाः**—अव ³⁰प्रकरणके विभागकूं दिखावते हुये आचार्य,

---

फेरि उत्पत्ति होवै नहीं, ऐसी जो कारणसहित कार्यकी निवृत्ति, सो त्यंतनिवृत्ति ( बाध औ आत्यंतिक प्रलय ) कहियेहै ॥

३० इहां प्रथम अष्टमंत्रनके औ आगिले नवमआदिक मंत्रनके प्रकर

अर्थका अनुवाद करैहैं:—इहां प्रथममंत्रकरि सर्व एषणाके त्यागसैं ज्ञाननिष्ठा कही। यह प्रथम वेदका अर्थ है। "ईश्वरसैं आच्छादन करनेयोग्य यह सर्व जगत् है, यातैं किसीके धनकी इच्छा मति कर" इस रीतिसैं; औ जीवनैकूं इच्छनेहारे अज्ञानिजननकूं ज्ञाननिष्ठाके असंभव हुये, "इहां कर्मकूं करता हुया जीवनेकूं इच्छे" इसरीतिसैं कर्मनिष्ठा कही। यह द्वितीय वेदका अर्थ है।[31]ये मंत्रविषै दिखाई जो ज्ञाननिष्ठा औ कर्मनिष्ठा, इन दोनूंका विभाग बृहदारण्यकउपनिषद्विषै बी दिखाया है:—"मेरेकूं जाया होवै" इत्यादि वचनसैं अज्ञानी कामीके कर्म कहेहैं। "[32]मैंनहीं याका आत्मा है

---

भेद है, ताकूं दिखावते हुये उक्तअर्थका अनुवाद करैहैं। औ इहां पूर्वमीमांसाके वार्तिककार भट्टके शिष्य भास्करनैं जो कहाहै:—सर्व उपनिषद् बी एक ब्रह्मविद्याका प्रकरण है, तातैं प्रकरणका भेद अनुचित है। सो बनै नहीं। काहेतैं प्राणआदिककी उपासनाका विधान बी उपनिषद्विषै देख्या है। औ सो उपासना बी ब्रह्मज्ञानका साधन है, ऐसा नहीं कहा चाहिये। काहेतैं, ताका फल न्यारा सुन्या है औ आप (भास्कर)कूं बी व्याकृत औ अव्याकृतकी उपासनाके समुच्चयका विधान, प्रकरणके भेदसैंहीं इच्छित है औ व्याकृत अरु अव्याकृतकी उपासनाका कर्मसैं अन्यहीं प्रकार है। ता उपासनातैं जैसैं कर्मकांडविषै अग्निहोत्रादिक कर्मका प्रकरण भिन्नही अंगीकार करियेहै, तिस तिस कर्मकूं भिन्न अधिकारवाला होनेतैं; तैसैं उपनिषद्विषै बी भिन्न अधिकारवाले कर्मके अविरोधतैं विरुद्ध विद्याके प्रकरणका भेद विरोधकूं पावता नहीं। यह तात्पर्य है।

३१ इन मंत्रनके अर्थके प्रति ब्राह्मणभागकी संमति दिखावनेकूं इहां कहनेका आरंभ करैहैं।

३२ तहां अज्ञानीपना कैसैं जानिये है? या आशंकाके निवारणअर्थ जैसैं बाह्य कामिनीके अभाव हुये, मनकल्पित कामिनीकूं भोगनेवाला सोया पुरुष प्रसिद्ध अज्ञानी है; तैसैं मुजकूं स्त्री होवै, प्रजा होवै, धन होवै, पीछे कर्म करूंगा, ऐसैं कामना करनेवालेकूं जब ता बाह्यसंपत्तिका अलाभ होवै, तब सो स्वसंघातगत अध्यात्मरूप मन आदिक संपत्तिकूं मानता है। या रीतिसैं

औ वाणी याकी जाया है" इत्यादि वचनसैं अज्ञानीपना औ का-मीपना निश्चित जानिये है। [33]तैसैं हुये सप्त जे अन्नकी सृष्टिय हैं, तिनविषै आत्मभावसैं जो आत्मस्वरूपकी स्थितिरूप संसार है सो तिन कर्मोंका फल है। "प्रजासैं हम क्या करेंगे, जिन हमनूं यह आत्माहीं यह लोक है" इत्यादि वचनसैं जायाआदिक तीन एषणाके त्यागसैं आत्मवेत्ता पुरुषनकूं कर्मनिष्ठासैं प्रतिकूल होनेसैं आत्मस्वरूपकी निष्ठा हीं दिखाई है। [34]जे ज्ञाननिष्ठ संन्यासी हैं

---

मन आदिकविषै आत्मापनै आदिकका अभिमान करनेवाला पुरुष बी अ-ज्ञानी है। ऐसैं अज्ञानीका चिन्ह इहां दिखाया है।

३३ तिन कर्मनका फल संसारकी प्राप्ति हीं है, यह बी बृहदारण्यक उपनिषद्रूप ब्राह्मणभागविषै दिखाया है। तहां श्रुतिः—" यह जीवरू पिता सप्तअन्ननकूं चिंतन औ कर्मसैं उपजावता भया " इत्यादिवाक्य शुभ औ अशुभरूप ज्ञान औ कर्मके अनुष्ठानतैं सर्व संसारका साक्षात् औ परंपरासैं जनक होनेतैं, पिता जो एक एक यजनकरनेवाला जीव, तानैं स-सअन्न रचे हैं। एक साधारणअन्न मनुष्यनका है, जो भक्षण करिये है औ औ हुत प्रहुतरूप, वा दर्शपौर्णमास यागरूप दोअन्न देवनके हैं, औ म वाणी अरु प्राणरूप तीन अन्न या जीवके भोगके साधन हैं औ दुग्ध रूप एक अन्न पशुनके अर्थ है। ऐसैं सप्तअन्नोंकी उत्पत्ति दिखाई है उत्पन्न भये इन सप्तअन्नोंविषै ता जीवरूपपिताकूं, " यह मै हूं, " ऐसैं मन आदिकविषै आत्मापनैके अध्याससैं औ " यह मेरा है " ऐसैं अन्य वस्तुनविषै संबंधके अध्याससैं, स्थितिरूप संसार प्रसिद्ध है। या अभिप्रायसैं इहां कहेहैं।

३४ ऐसैं मंत्रविषै दिखाई जो दो निष्ठा, तिनविषै ब्राह्मणभागका प्र-माण दिखायके, अब प्रकरणके विभागकूं दिखावैहैं। इहां यह भाव है:- " जाविषै सर्वभूत आत्मा हीं होता भया " या सप्तममंत्रके पूर्वार्द्धसैं नि-श्चयकरि फल औ साधनके बाधतैं जो आत्माकी एकताका विज्ञान कह्या है औ याही मंत्रके उत्तरार्द्धसैं सोई ज्ञान, संसारकी निवृत्तिरूप फलवाला कहा। ताकूं विवेकी पुरुष कोई अन्य साधनके साथि समुच्चय करता (मि-

तिनके अर्थ "असूर्य नाम वे लोक" इत्यादि वचनसैं अविद्वान्की निंदाद्वारा "सो चारि ओरतैं प्राप्त भया है" इन मंत्रनसैं आत्माका स्वभाव उपदेश किया है । वे संन्यासी हीं इहां अधिकारी हैं, कामनावाले नहीं । तैसैं श्वेताश्वतर उपनिषद्विषे "अतिआश्रमी जे संन्यासी हैं तिनके अर्थ ऋषिनके समूहसैं सेवन किया परमपवित्र तत्त्व उपदेश करता भया" इत्यादिवचनसैं विभाग करिके कहा है । जो कर्मनिष्ठ कर्मकूं करते हुये जीवनेकूं इच्छतेहैं, तिनके अर्थ "अंधतम" इनसैं आदिलेके, यह आगे कहनेका अर्थ कहियेहै ॥ शंकाः—तिन कर्मनिष्ठनके अर्थ कहियेहै, अन्योंके अर्थ नहीं; यह कैसैं जानियेहै ? तहां कहैहैंः—कामनारहित पुरुषकूं स्वर्गादिरूप साध्य औ कर्मादिरूप साधनकी निवृत्तितैं, सर्वके अर्थ यह कथन नहीं है, ऐसैं जानियेहै । "जा कालविषै वा जा आत्माविषै जाननेहारे पुरुषकूं सर्वभूतनके प्रति आत्माहीं आच्छादित भया है, ता कालविषै वा ता आत्माविषै एकताके देखनेहारेकूं कौन मोह है, कौन शोक है"? इस वचनसैं जो आत्माकी एकताका ज्ञान कहा है, ताकूं अमूढपुरुष जो है सो किसी कर्मसैं वा अन्यज्ञानसैं वा अन्य किसी साधनसैं समुच्चय करनेकूं इच्छता नहीं। या ग्रंथविषै तो समुच्चयकी इच्छासैं अविद्वान्आदिककी निंदा करियेहै । तहां जाका जासैं युक्तिकरि वा शास्त्रकरि समुच्चय संभवैहै, सोई इहां कहियेहै ॥ ॐजो देवनका धनरूप देवताआ-

---

लावता ) नहीं । औ " अंधतमके ताईं प्रवेश करतेहैं " या नवम आदिक मंत्रविषै तो समुच्चय करनेकी इच्छासैं अविद्वान्आदिककी निंदा देखियेहै । तातैं प्रकरणका विभाग बनैहै ।

२५ जब ब्रह्मज्ञानसैं कर्मका समुच्चय नहीं, तब कौनसे ज्ञानसैं कर्मका समुच्चय संभवैहै ? तहां देवताके उपासनरूप ज्ञानका कर्मसैं समुच्चय संभवैहै; ऐसैं कहैहैं । इहां यह भाव हैः—भट्टके शिष्य भास्करनैं जो कहा

दिकका उपासनरूप ज्ञान है, सो कर्मका संबंधी होनेकरि कहनेकूं आरंभ किया है; परमात्माका ज्ञान नहीं । काहेतैं, "विद्यासैं देवलोक होवैहै" ऐसैं देवताके उपासनरूप ज्ञानका कर्मके फलतैं भिन्न फल सुन्या है । यातैं उपासन औ कर्मका समुच्चय बनैहै । तिनै[३६]

हैः—" ईशावास्य " या प्रथम मंत्रविषै ब्रह्मविद्याकूं आरंभ करी है, यातैं ताहीके समुच्चयकी इच्छासैं या नवममंत्रविषै अविद्वान् आदिककी निंदा कहियेहै । सो बनै नहीं । काहेतैं, जो वस्तु प्रसंगविषै प्राप्त होवै सोई संबंधकूं पावै यह नियम नहीं, किंतु, संबंधयोग्य वस्तु हीं संबंधकूं पावता है । शुद्धब्रह्म औ आत्माके एकताकी विद्याकूं तो अध्यासकी नाशक होनेतैं, कर्मसैं संबंधकी योग्यता नहीं है । किंवा जा साधनके उत्पन्न हुये बी फलका अंतराय होवै, ताहीका अन्य व्रतादिक नियमकी अपेक्षावाले समुद्रसेतुके दर्शन आदिककी न्यांई दूसरे सहकारीके साथि समुच्चय अंगीकार करियेहै । इहां " एकताके देखनेवालेकूं कौन मोह है कौन शोक है ? " ऐसैं एकतादर्शनके समकाल, मोहआदिककी निवृत्तिके कथनतैं, एकताका दर्शनकाल अंतरायसहित फलवाला नहीं, तातैं याकूं अन्य सहकारीसैं समुच्चयकी अपेक्षा नहीं है । किंवा, या मंत्ररूप उपनिषद्‌कूं " ब्राह्मण, यज्ञ ( आदिक )सैं जाननेकूं इच्छतेहैं " इत्यादि श्रुतिसैं यज्ञादिककूं वांछितज्ञानका कारण होनेकरि, तासैं संबंध प्रतीत होवैहै । तातैं परतंत्र प्रकरणकरि ज्ञानका सहकारिके साथि संबंधकी कल्पना कैसैं बनै? सर्वथा बनै नहीं । यातैं कर्म औ विद्याके सहकारी संबंधके विधानकी इच्छासैं यह अविद्वान् आदिककी निंदा है, यह कथन बी अयुक्त है । काहेतैं, तैसैं हुये " याहीतैं अग्नि अरु इंधन आदिककी अपेक्षासैं रहित [ विद्या है ]" या सूत्रका विरोध होवैहै । औ समुच्चय ( दोनूंका एककालमैं अनुष्ठान ) बी मान्या नहीं; किंतु विरोधसैं त्याग किया है । तातैं कर्मसैं अविरुद्ध देवताके ज्ञानकाहीं कर्मसैं समुच्चय विधान करियेहै । जो कहै, देवताके ज्ञानका कर्मफलतैंभिन्न फलके अभावतैं समुच्चय संभवै नहीं यह कहना बनै नहीं । काहेतैं, " कर्मसैं पितृलोक औ विद्यासैं देवलोक " ऐसैं भिन्नफलके श्रवणतैं ।

३६ समुच्चयकी इच्छासैं निंदा करैहै, ऐसैं व्याख्यान क्या करतेहैं

कर्म औ देवताज्ञानके अनुष्ठानकी निंदा है, सो तिनके समुच्चयकी इच्छासैं है, निंदापर हीं नहीं। काहेतैं, एकएकके भिन्न फलके श्रवणतैं। "विद्यासैं ता पदके तांई पावतेहैं", "विद्यासैं देवलोक होवैहै," "नहीं तहां दक्षिणदिशाके प्रति जातेहैं" "कर्मसैं पितृलोक होवैहै;" ऐसैं भिन्न फल सुन्या है, यातैं दोनूंके समुच्चयकी इच्छा बनैहै। शास्त्रविहित कछु बी करनेकी अयोग्यताकूं पावता नहीं ॥ तहां [37]कर्मकूं विद्याका विरोधी होनेतैं विद्यातैं अन्य जो अग्निहोत्रादि कर्मरूप अविद्या है, जो केवल ता **अविद्याहींकूं** तत्पर हुये **अनुष्ठान करते हैं**, वे अदर्शनरूप **अंधतमके प्रति प्रवेश करते हैं;** यह अभिप्राय है। जो कर्मकूं छोडिके देवताके ज्ञानरूप **विद्याविषैहीं आसक्त हैं**, वे ता अंधरूपतम-तैं **अतिशय** (बहुतसे) हीं **तमके प्रति प्रवेश करते हैं**। तहां बीचके फलके भेदवाले विद्या औ कर्मके समुच्चयविषै कारण कहैहैं:—अन्यथा समीपवर्त्ती फलवान् औ अफलवान् दोनूंका अंगअंगीभावकरि [38]आलस्यहीं होवैगा। यह अर्थ है ॥ ९ ॥

---

अध्ययनकी विधिका मोक्षविषै तात्पर्य्यके असंभवतैं औ देवलोक आदिककी प्राप्तिकूं फलका आभासरूप होनेतैं, निषेध अर्थहीं यह निंदा अंगीकार क्यूं नहीं करियेहै? तहां कहैहैं:—फलशब्द जो है सो यद्यपि मोक्षविषै रूढ है, तथापि मोक्षकी इच्छासैं रहित पुरुषनकूं बी वांछित वस्तुविषै फलव्यवहारके देखनेतैं जो देवलोक आदिककूं इच्छता है ताकूं सो बी फलहीं होवैहै। यातैं, कर्म औ उपासनाकूं बी फलवान् होनेतैं, औ सफल वस्तुके निषेधकी अयोग्यतातैं, कर्म औ उपासनाके निषेधअर्थ यह निंदा नहीं; किंतु तिनके समुच्चय अर्थहीं है। यह अर्थ है।

३७ इहांसैं आचार्य या नवममंत्रका व्याख्यान करै हैं।

३८ इहां यह अर्थ है:—विद्या औ अविद्याके फलका भेद न होवै, किंतु दोनूंका एकहीं फल होवै तो दोनूंकी मुख्यताके असंभवतैं एककूं मुख्य दूसरेकूं अमुख्य माननेकरि एक जो अमुख्य है, ताका आलस्यसैं

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदेवाहुरविद्यया । इति
शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ स ह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११ ॥
अन्धं तमः प्रविशंति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याꣳ रताः॥१२

---

टीकाः—उपासनारूप विद्यासैं भिन्न फल होता है, ऐसैं क हते भये औ कर्मरूप अविद्यासैं भिन्न फल होता है, ऐसैं कहे भये । तैसैं श्रुतिविषै कहा हैः—"कर्मसैं पितृलोक होवैहै विद्यासैं देवलोक होवैहै" इति । ऐसैं हमने बुद्धिमानोंका व सुन्या है । वे बुद्धिमान् कैसैं हैं किः—जे आचार्य हमारे अ सो कर्म औ ज्ञान कहते भये । तिनका यह वेद, परंपरासैं प्र भया है; यह अर्थ है ॥ १० ॥

टीकाः—जातैं ऐसैं है, यातैं विद्या देवताका ज्ञान औ कर्म, ति दोनूंकूं जो एक पुरुषसैं अनुष्ठान करनेके योग्य जानता है ता समुच्चयकारीकूं एक पुरुषार्थसैं संबंध होवैहै; ऐसैं कहियेहै अग्निहोत्रादि कर्मरूप अविद्यासैं स्वाभाविक कर्म औ ज्ञान मृत्यु शब्दके वाच्य हैं, तिन दोनूं-कूं उल्लंघन करिके देवता ज्ञानसैं देवताके आत्मभावरूप अमृतकूं पावता है । जो देवता स्वरूपकी प्राप्ति है, सोई इहां अमृत कहिये है ॥ ११ ॥

टीकाः—अब व्याकृत जो हिरण्यगर्भ औ अव्याकृत जो प्रकृति, ति

---

त्यागहीं होवैगा । यातैं इहां भिन्नफलवाले कर्म औ उपासनाका स च्चय कहा है ।

**अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् ।**
**इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥**

---

दोनूंकी उपासनाके समुच्चयकी इच्छासैं एकएककी निंदा कहियेहैः—संभूति नाम संभवरूप जन्मका है। सो जाका होवैहै, ऐसा जो कार्यरूप हिरण्यगर्भ, सो संभूति कहियेहै। तासैं अन्य जो कारणरूप अव्याकृत इस नामवाली प्रकृति है, सो ३९असंभूति कहियेहै। ता अव्याकृत नामवाली प्रकृति, कारण, अविद्या, काम कर्मकी बीजभूत, अदर्शनरूप असंभूतिकूं जो उपासतेहैं, वे ताहीके अनुसार अदर्शनरूप अंधतमके प्रति प्रवेश करतेहैं। औ जे हिरण्यगर्भ नामवाले कार्यब्रह्मरूप संभूतिविषै आसक्त हैं; वे ता अंधतम-तैं बी बहुतसेहीं तमके प्रति प्रवेश करतेहैं ॥ १२ ॥

**टीकाः**—अब इन दोनूं उपासनके समुच्चयविषै कारण जो अवयव औ फलका भेद, ताकूं कहैहैंः—संभव जो कार्यब्रह्म, ताकी उपासना-तैं अणिमादिक ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप भिन्न फल-कूंहीं कहतेहैं औ तैसैं असंभव जो अव्याकृत, ताकी उपासना-तैं कथन किया जो अंधतमके प्रति प्रवेश करतेहैं, यह प्रकृतिविषै लयरूप अन्य फल है, सो पौराणिक कहतेहैं। ऐसैं हमनैं धीर जे बु-

---

३९ चेतनके अधीन मायारूप जो परमेश्वरकी उपाधि है, सो इहां असंभूतिशब्दसैं कहियेहै; ब्रह्म नहीं। काहेतैं, ता निर्विकारकूं साक्षात् प्रकृतिके अधीन होनेका असंभव है। इहां भास्करनैं जो परिणामवाद मान्या है, ताका तत्त्वालोक नाम ग्रंथविषै खंडन किया है। संसारसंबंधि दुःखके अनुभवके अभावरूप फलके सिद्ध भये सुषुप्तिकी न्यांई प्रकृतिविषै अपने लयकी इच्छा बी पुरुषकूं बनै है। औ ता प्रकृतिके उपासनाका फल, कर्म उपासनाकी न्यांई परमेश्वर हीं देवैगा; तातैं प्रकृतिकूं जड होनैतैं फल देनेके असंभवतैं ताकी उपासना करनेकी योग्यताका असंभव है; यह कथन बी बनै नहीं। यह भाव है।

**संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभय॑ँ सह ।**
**विनाशेन मृत्युं तीर्त्वाऽसंभूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४**

द्धिमान्, ति-नका वचन शुन्या है; जे धीर हमारेकूं सो व्या-
कृत औ अव्याकृतकी उपासनाका फल कहते भये ॥ १३ ॥

**टीकाः**—जातैं ऐसैं है, यातैं संभूति औ असंभूति इन दोनूं-
उपासनाका समुच्चय युक्त है; एकपुरुषार्थ (फल)के होनेतैं; ...
कहैहैंः—जे पुरुष [40]संभूति (असंभूतिरूप प्रकृति) औ विना-
(संभूतिरूप हिरण्यगर्भ) इन दोनूंकूं साथिहीं जानताहै, ...
ता व्याकृतरूप विनाश-की उपासना-सैं ऐश्वर्यके अभाव औ ...
धर्म कामआदिक दोषनके समूहरूप मृत्युकूं तरिके, कहिये ...
रण्यगर्भकी उपासनासैं जातैं अणिमादिक अष्टसिद्धिरूप ऐश्वर्य-
प्राप्तिरूप फल होवैहै, तासैं ऐश्वर्यके अभाव आदिक मृत्युकूं
लंघन करिके, असंभूति-रूप अव्याकृतकी उपासना-सैं अ...
(प्रकृतिविषै लय)रूप जो फल है ता-कूं पावताहै । मानुष-[41]
औ दैववित्तसैं साध्य जो फल है, सो शास्त्रविषै है लक्षण जा...
ऐसा जो प्रकृतिविषै लय ता पर्यंतहीं है, एतनीहीं संसारकी ...
है । याके पीछे तीन-एषणाके संन्यासका औ ज्ञाननिष्ठाका ...
जो पूर्वउक्त "जाननेहारेकूं आत्माहीं होता भया" यह सर्वा-
भाव, सो होवैहै । इस रीतिसैं इहां प्रवृत्ति औ निवृत्तिरूप ...
प्रकारका वेदका अर्थ प्रकाश किया है । प्रवृत्तिलक्षणवाला ...
विधिनिषेधरूप संपूर्णवेदका अर्थ है, ताके प्रकाश करनेविषै ...

---

४० इहां असंभूति शब्दकाहीं अकारका लोप करिके संभूति ऐसैं उ-
च्चार किया जानना । काहेतैं, प्रकृतिविषै लयरूप फलकी प्रतिपादक श्रुति-
अनुसार यहहीं अर्थ संभवैहै; अन्य नहीं ।

४१ शरीरकी सुंदरता आदिक औ गौ भूमि सुवर्ण आदिक साधनकी
प्राप्ति मानुषवित्त कहियेहै । देवताका ज्ञान (उपासन) दैववित्त कहिये...

**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।**
**तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥**

वर्ग्यांतब्राह्मण उपयोगी है, औ निवृत्तिलक्षणवाला जो वेदका अर्थ है, ताके प्रकाशनेविषै याके ऊपर बृहदारण्यकउपनिषद् उपयोगी है ॥ तहां[42] जो जीवनेकूं इच्छता है सो वीर्यसिंचनसैं आदिलेके स्मशानपर्यंत जो कर्म है, ताकूं अपरब्रह्मकी विद्याके साथि करता हुवा इच्छे । सो "विद्या औ अविद्या दोनूंकूं साथिहीं जानता है" ऐसैं कहाहै[43] ॥ १४ ॥

**टीकाः**—"अविद्यासैं मृत्युकूं उल्लंघन करिके विद्यासैं अमृतकूं पावता है" ऐसैं कहा, तहां किस मार्गसैं अमृतकूं पावता है, यह कहिये हैः—"सो जो सो सत्य है, यह सो आदित्य है । जो यह या मंडलविषै पुरुष है, औ जो यह दक्षिणनेत्रविषै पुरुष है, यह दोनूं सत्यब्रह्म हैं; ऐसैं जो उपासना करता है, औ यथोक्त कर्मकूं करता है, सो अंतकालके प्राप्त भये सत्यरूप आत्माके प्राप्तिके द्वाररूप आत्माकूं याचता है" । हिरण्मयपात्रसैं कहिये हिरण्मय (सुवर्णमय)की न्यांई प्रकाशमय औ पात्रकी न्यांई आच्छादन करनेरूप वस्तुसैं **सत्य**-रूप आदित्यमंडलविषै स्थित ब्रह्म-**का मुख** (द्वार) **ढांप्या है, ताकूं हे पूषन्** (सूर्य)! **तूं खोलदे ।** कौनके अर्थ किः—तुज सत्यरूपकी उपासनासैं सत्य है धर्म जा मुजका, सो मैं **सत्यधर्मा** हूं ता-**के अर्थ ।** अथवा यथार्थ धर्मके अनुष्ठान करनेहारे अर्थ । किसप्रयोजन वास्ते किः—सत्य आत्मा-रूप तेरे ज्ञानरूप **दर्शनके वास्ते** ॥ १५ ॥

४२ इहां उत्तर (आगिले)ग्रंथके संबंधकी इच्छासैं विशेषअर्थका अनुवाद करैहैं ।

४३ "इहां विद्या औ अविद्या दोनूंकूं साथिहीं जानता है" या ग्यारवें मंत्रके व्याख्यानसैं कर्मउपासनाके समुच्चयकारीकूं आपेक्षिक मोक्षरूप फल होवैहै, यह ऐसैं हमनैं कहाहै । ऐसैं पदनकी योजना है ।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत् ते रूपं कल्याणतमं तत् ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतꣳ शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर ॥

---

**टीकाः**—जगत्के पोषणतैं पूषा रवि है। हे पूषन्! तथा एक कहीं चलता है, सो कहिये एकर्षि। हे एकर्षे! तथा सर्वके संयमनतैं यम है। हे यम! तथा किरणोंके औ प्राणोके औ रसोंके स्वीकार करनेतैं सूर्य है। हे सूर्य! प्रजापतिका जो पुत्र सो प्राजापत्य कहियेहै। हे प्राजापत्य! अपने किरणोकूं विशेष लाव औ जो तेरा ताप करनेहारा ज्योतिरूप तेज है ताकूं एककी न्यांई कर, कहिये संकोचले। औ जो तेरा अत्यंत कल्याण (अत्यंत शोभन)रूप है, ताकूं तुज आत्माके प्रसादतैं देखता हूं। किंवा, मैं तुजकूं अनुचरकी न्यांई याचता नहीं हूं। काहेतैं किः—जो यह आदित्यमंडलविषै स्थित व्याहृतिरूप अवयववाला पुरुष है। जो पुरुषके तुल्य आकारवाला होनेतैं पुरुष कहियेहै। वा, प्राण औ बुद्धिरूप यासैं समस्त जगत् पूर्ण है, यातैं पुरुष कहियेहै। वा, देहरूप पुरीनविषै शयन करनेतैं पुरुष कहियेहै; सो यह मैं हूं ॥ १६ ॥

**टीकाः**—अनंतर अब मरनेहारे मुजका प्राणरूप वायु जो है सो अध्यात्मभावरूप परिच्छेदकूं छोडिके अधिदेवतारूप सर्वात्मक

---

४४ ता आदित्यमंडलविषै स्थित पुरुषका भूर्लोक शिर है, भुवर्लोक बाहु हैं, औ स्वर्लोक पाद हैं। ऐसैं भूर्लोकसैं आदिलेके जे व्याहृति कहियेहैं, तिसरूप अवयववाला यह पुरुष है।

**अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।**
**युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ १८ ॥**

॥ इति वाजसनेयसंहितोपनिषत्संपूर्णा ॥

---

अमृतमय वायुरूप ( सूत्रात्मा )कूं प्राप्त होहू । कहिये, ज्ञान औ कर्मके संस्कारकरि युक्त यह लिंगशरीर जो है, सो स्थूलशरीरतैं बाहिर गमन करहू । ऐसैं मार्ग याचनाके सामर्थ्यतैं देखना । अब यह स्थूल शरीर अग्निविषै होम किया हुया भस्म होहू । ॐ कहिये, ॐकारकी जैसी उपासना होवै तैसैं है संकल्परूप क्रतो ! जो मुजकूं स्मरण करनेयोग्य है; ताका समय यह प्राप्त भयाहै, यातैं स्मरण कर, जो मैंनैं बाल्यावस्थासैं लेके इतनें कालपर्यंत कर्म अनुष्ठान किया है, ताकूं स्मरण कर । हे क्रतो ! स्मरण कर, मैंनैं किया कर्म ताकूं स्मरण कर । इहां फेरि फेरि जो कथन है सो आदरके अर्थ है ॥ १७ ॥

टीकाः—फेर अन्यमंत्रसैं मार्गकी याचना करैहैः—हे अग्ने ! शोभनमार्गसैं मुजकूं ले जा, जातैं गत अगतरूप दक्षिणमार्गसैं मैं खेदकूं पाया हूं औ जाने अर्थ तुजकूं याचता हूं, यातैं फेरि फेरि गमन आगमन वर्जित शोभनमार्गसैं मुजकूं कर्मफलके भोग-अर्थ ले जा । क्या करता हुया ले जाऊं ? तहां कहैहैः—हे देव ! शास्त्रविषै जैसा पुण्यका फल कहा है, तासैं युक्त हमकूं औ ह-

---

४५ ब्रह्मलोककी प्राप्तिके, उत्तरायण ( देवयान ) औ दक्षिणायन ( पितृयाण ) ये दो मार्ग कहेहैं । तिनमैं द्वितीयमार्ग तो पुनरावृत्तिवाला है औ प्रथममार्ग पुनरावृत्तिसैं रहित है, यातैं इहां शोभनशब्दसैं प्रथममार्गका हीं ग्रहण है ।

मारे सर्व कर्म वा उपासनारूप ज्ञानोकूं जानता हुया ले जा किंवा, हमतैं जो कुटिल वचनरूप पाप भया है, ता-कूं नाश कर तातैं हम विशुद्ध हुये इष्टकू प्राप्त होवैं, यह अभिप्राय है। किं हम अब तेरी बहुतसी पूजा करनेकूं असमर्थ हैं, यातैं तुज अ बहुतसी नमस्कारकीउक्ति (वचन) करतेहैं। अर्थ यह जो, ते नमस्कारसैं पूजा करैहैं॥ "[४६]अविद्यासैं मृत्युकूं लंघिके विद्या अमृतकूं पावता है" औ "विनाशसैं मृत्युकूं लंघिके असंभूति अमृतकूं पावता है" ऐसैं सुनिके केईक वादी शंका करैहैं; य ताके निवारण अर्थ हम संक्षेपतैं विचार करैहैं। तहां प्रथम कि निमित्तवाला संशय है? यह कहियेहैः—विद्याशब्दसैं मुख्य पर त्मविद्या हीं काहेतैं नहीं ग्रहण करियेहै औ अमृतशब्दसैं मु अमृत हीं क्यौं नहीं ग्रहण करियेहै? तहां सिद्धांती जो श करैं किः—उक्त परमात्मविद्याका औ कर्मका विरोध है, यातैं नका समुच्चय बनै नहीं। सो सत्य है; दोनूंका विरोध होहू, सो विरोध जाननेमैं आवता नहीं, काहेतैं विरोध औ अवि दोनूंकूं शास्त्रप्रमाणसैं सिद्ध होनेतैं। जैसैं अविद्या (कर्म) का नुष्ठान, औ विद्याका अभ्यास शास्त्रप्रमाणसैं सिद्ध है; तैसैं परमात्मविद्या औ कर्मका विरोध औ अविरोध दोनूं बी शास्त्र माणसैं सिद्ध हैं। "सर्व भूतनकी हिंसा नहीं करना" यह स्त्रसैं जान्या जावैहै, फेर "यज्ञविषै बी हिंसा होवैहै" ऐसैं स्त्रसैं हीं अहिंसाका बाध होवैहै। ऐसैं विद्या औ अविद्याविषै होवैहै? तहां सुनोः—विद्या औ कर्मका समुच्चय नहीं है। क

४६ ऐसैं मंत्रनके पदपदका व्याख्यान करिके, अब संक्षेपसैं विचा आरंभ करैहैं।

४७ शास्त्रउक्त ज्ञान औ कर्मके विरोध औ अविरोध बी शास्त्रउ ग्रहण करने योग्य हैं, तर्कमात्रसैं नहीं। ऐसैं जब समुच्चयवादीनैं कहा; सिद्धांती, ज्ञान औ कर्मका विरोध शास्त्रसिद्धहीं है, ऐसैं कहैहैं। इहां

"ये विपरीत विषूची (नानागति) दूर हैं, जो अविद्या औ जो विद्या है" या श्रुतितैं औ "विद्या अरु अविद्याकूं जो साथिहीं जानता है" या वचनतैं अविरोध है? ऐसैं जो कहै, तो बनै नहीं:—काहेतैं विद्या औ कर्मके हेतु स्वरूप औ फलके विरोधतैं। जो कहै विद्या औ अविद्याके विरोध औ अविरोधविषै विकल्पका (दोनूंका) असंभव है यातैं तिनका अविरोध हीं है? सो बनै नहीं:—काहेतैं दोनूंकी साथिहीं उत्पत्तिके असंभवतैं। जो कहै, क्रमतैं विद्या औ अविद्या होवैहैं? सो बनै नहीं:—काहेतैं विद्याकी

---

अभिप्राय है:—ज्ञान औ कर्मका समुच्चय बनै नहीं। काहेतैं, दोनूंकी साथिहीं उत्पत्तिके असंभवतैं। जो कहै, कौन असंभव है? तहां सुनो:—"ये विपरीत (अतिशयविरुद्ध) नानागतिरूप विद्या औ अविद्या परस्पर दूर हैं" ऐसैं कठवल्लीविषै विरोधके श्रवणतैं। तब समुच्चयविधिके बलतैं अविरोधहीं होहू, ऐसैं जो कहै तो बनै नहीं। काहेतैं मुख्य जो ब्रह्मविद्या औ अविद्या, तिनका शुक्तिकी विद्या औ अविद्याकी न्यांई साथिहीं उत्पत्तिके असंभवतैं, समुच्चयका विधि असिद्ध है। ऐसैं मानैं नहीं तो समुच्चयविधिके सिद्ध भये, ताके बलतैं दोनूंके अविरोधकी सिद्धि होवैगी। औ अविरोधके ज्ञानतैं समुच्चयकी सिद्धि होवैगी। यातैं अन्योन्याश्रयदोष होवैगा।

४८ जो कहै, दोनूंकी साथिहीं उत्पत्तिके असंभवके हुये बी क्रमसैं एक आश्रय (पुरुष)विषै विद्या औ अविद्या होवैगी। तब हे वादी! प्रथम अविद्या (कर्म) औ पीछे विद्या ऐसा क्रम मानताहैं, किंवा पूर्व विद्या औ पीछे अविद्या, ऐसा क्रम मानताहैं? जो कहै प्रथमपक्ष मानता हूं। तो ताकूं हम बी अंगीकार करैहैं। औ जो कहै द्वितीयपक्ष मानता हूं। तो असंभव है। काहेतैं, पूर्वसिद्ध अविद्याके नाशतैं औ अन्य अविद्याकी उत्पत्तिविषै कारणके असंभवतैं औ मूलके अभावसैं, भ्रांति संशय अरु अग्रहणका बी विद्वान्कूं असंभव है। जो कहै, विद्याकी उत्पत्तिके भये अविद्या मति होहू, परंतु व्याख्यान औ भिक्षाअटन आदिक क्रियाके देखनेंतैं विद्वान्कूं बी काम (इच्छा)सैं कर्म तो होवैगा। तहां

उत्पत्तिके भये ताके आश्रयविषै अविद्याके असभवतें ॥ जैसें अग्नि, उष्ण औ प्रकाशरूप है; ऐसें ज्ञानकी उत्पत्तिके भये जा आश्रयविषै सो ज्ञान उत्पन्न भया है, ताही आश्रयविषै अग्नि शीतल वा अप्रकाशरूप है, यह विपरीतज्ञान होवै नहीं । ऐसें विद्याकी उत्पत्तिके भये ताके आश्रयविषै अविद्या कर्मकी उत्पत्ति वा संशय वा अज्ञान होवै नहीं । काहेतें "जहां जाननेहारेकूं सर्वभूतनके तांई आत्मा हीं व्याप्त होता भया, तहां एकताके देखनेहारेकूं कौनसा मोह है औ कौनसा शोक है" या शोक मोह आदिकके असंभवकी श्रुतितैं, अविद्याके असंभवतैं ता अविद्यारूप उपादानवाले कर्मके बी असंभवकूं हीं हम कहतेहैं । यातैं इहां अमृतशब्दसैं आपेक्षिक उपासनाका फलरूप अमृत, औ विद्याशब्दसैं उपासना ग्रहण करियेहै । अमृतशब्दसैं मुख्य मोक्षरूप अमृतके ग्रहण किये औ विद्याशब्दसैं परमात्मविद्याके ग्रहण किये "हिरण्मयपात्रसैं" इत्यादि वाक्यकरि मार्गकी याचना है, सो अ

---

श्रवण करः—शास्त्रकी प्रेरणा ( विधि )सैं अनुष्ठान किया जो कर्म, ताके तेरेकूं ज्ञानके साथि समुच्चय करनेकूं इच्छित है औ ब्रह्म औ आत्माका एकत्व जो है, सो विद्वान्‌कूं अनुभवतैं अपरोक्ष है । यातैं विद्वान्‌कूं कामनाके अभावतैं कर्मकी प्रेरणा संभवै नहीं । शास्त्रकी सर्वप्रेरणा कामनावाले पुरुषनके प्रतिहीं हैं । यह वार्त्ता "किसी बी पुरुषकूं कामना विना कोई बी क्रिया नहीं देखियेहै । तातैं जंतु जो जो करता है सो सो कामकी चेष्टा है" या स्मृतिवाक्यसैं जानियेहै । विद्वान्‌के शरीरकी स्थिति तो अविद्याके लेशके आश्रित है औ विद्वान्‌का प्रारब्धकर्मके शेषरूप निमित्तसैं जो भिक्षा अटन आदिक व्यवहार होवैहै, सो तो प्रेरणाके अभावतैं कर्म नहीं है किंतु प्राण औ शरीरके संयोगपर्यंत होनेवाला कर्माभास है । तिस कर्माभासकूं विद्वान् आपविषै स्थित मानता नहीं, किंतु मन वाणी औ शरीरविषै स्थित मानता है । काहेतैं कर्मके अध्यासकी उपादान अविद्याके असंभवतैं औ मैं कछु बी करता नहीं, इस प्रतीतितैं ।

४९ वादीनैं जो कहा, अमृतशब्दसैं मुख्य हीं अमृतपना औ विद्या

टित होवैगी; तातैं जैसैं हमनैं व्याख्यान किया, ऐसैहीं इन मंत्रनका अर्थ है। यातैं बहुत कथनसैं हम उपराम होतेहैं ॥ १८ ॥

इति श्रीमद्बापुसरस्वतिपूज्यपादशिष्यपीतांबरशर्मविदुषा श्रीमद्भगवत्पादकृतभाष्यानुसारेण विरचिता प्राकृता ईशावास्योपनिषद्दीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

---

शब्दसैं परमात्मविद्या, क्यूं ग्रहण करते नहीं ? तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—अमृतशब्दसैं मुख्य अमृतपनेके ग्रहण किये "हिरण्मय" आदिक मंत्रसैं द्वारके मार्गकी जो वाचना करी है, सो अघटित होवैगी। काहेतैं "तिस ज्ञानीके प्राण बाहिर जाते नहीं" औ "इहांहीं ब्रह्मकूं पावताहै" इत्यादि श्रुतितैं। तातैं मुख्य अमृतरूप अर्थके बाधतैं गौण (अमुख्य) अमृतरूप अर्थका ग्रहण युक्त है।

# ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

## अथ सामवेदीयतलवकारोपनिषत् ॥ २ ॥

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः । केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥

श्री

## अथ केनोपनिषद्भाष्यभाषादीपिका ॥ २ ॥

### अथ प्रथमखंडभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ १ ॥



टीकाः—केनेषित ( किसकरि वांछित ) इससैं आदिलेके यह तलवकार ( केन ) उपनिषद् है, सो परब्रह्मकूं विषय ( प्रतिपादन ) करनेवाली है; ऐसैं कहनेकूं योग्य है । या रीतिसैं केनउपनिषद्रूप नवमअध्यायका प्रारंभ बनैहै । यातैं नवमअध्यायतैं पूर्व अष्टअध्यायनसैं; संपूर्ण कर्म परिसमाप्त किये हैं औ कर्मनका आश्रयरूप जो प्राण है, ताकी उपासना कही है । कर्मका अंग ( साधन ) जो साम है, ताकूं विषय करनेवाली पासना कही है । पीछे गायत्र इस नामवाला जो साम है, ता प्राणदृष्टिसैं उपासना है । जो, शिष्य औ आचार्यके संतान अविच्छेदरूप जो वंश है; ताके प्रतिपादक ग्रंथके भागपर्यंत क

१ याके आरंभविषै केनपद है; यातैं यह केनउपनिषद् कहिये है ।

२ सामवेदके किसी एक भागके अष्टअध्याय पूर्वक यह केनउपनिषद् नवमअध्याय है ।

३ कर्मके साधन जे गायन करनै योग्य सामवेदके मंत्र, वे कहियेहैं । वे साम पांचअवयववाले औ सातअवयववाले हैं । तिनकी थिवी आदिककी दृष्टिसैं उपासना कही है ।

हैं, वे उपासना करनेकूं योग्य हैं। यहीं सर्व कर्म औ उपासना जैसें शास्त्रविषै कहैहैं तैसें अनुष्ठान किये हुये, निष्काम मुमुक्षुपुरुषकूं अंतःकरणकी शुद्धिअर्थ होवैहैं। उपासनासैं रहित सकामपुरुषकूं तो, केवल श्रौत (श्रुतिउक्त) औ स्मार्त्त (स्मृतिउक्त) कर्म, दक्षिणमार्गकी प्राप्तिअर्थ औ पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) अर्थ होवैहैं। स्वाभाविक शास्त्रनिषिद्ध जो प्रवृत्ति है, तासैं पशु आदिक स्थावरपर्यंत अधोगति होवैहै, तैसें हुये इन ज्ञान औ कर्मरूप दोनूं मार्गनमैंसैं, किसी एक मार्गकरि बी जो प्रवृत्त होते नहीं, वे निषिद्धकर्मके अनुष्ठान करनेहारे वारंवार जन्म मरणके धारनेवाले तुच्छ प्राणी होवैहैं। "फेरि फेरि जन्मतेहैं औ मरतेहैं, या प्रकारका यह तीसरा स्थान है" या श्रुतितैं औ स्वेदज अंडज उद्भिजरूप जे तीनंभांतिकी प्रजा हैं वे पितृयान औ देवयानरूप दोनूंमार्गनके गमनकूं छोडिके कष्टरूप गतिकूंहीं पाये हैं" या मंत्रके कथनतैं। शुद्ध चित्तवाला निष्काम औ या जन्मविषै किये वा पूर्वजन्मविषै किये किसी पुण्यरूप

---

४ पूर्वके अष्टअध्यायनविषै प्रतिपादन किया जो प्राण आदिककी उपासनासहित कर्म, ताका फल संसार है। यातैं ता कर्मका ब्रह्मज्ञानविषै उपयोग नहीं। तातैं तिन अष्टअध्यायनका औ नवमअध्यायरूप या केनउपनिषद्का हेतुहेतुमद्भावरूप संबंध बनै नहीं। या शंकाके निवारणअर्थ, इहां प्रथम नित्य कर्मनका ज्ञानविषै उपयोग दिखावैहैं।

५ इहां काम्य औ निषिद्ध कर्मका फल, ताकेविषै दोषदृष्टिसैं वैराग्य अर्थ कहैहैं।

६ इहां तीनभांतिकी जे प्रजा कही, वे चतुर्थ जरायुज जातिकी उपलक्षण हैं।

७ अब कर्मफलतैं विरक्त शुद्धचित्तवालेकूं ब्रह्मज्ञानविषै अधिकार है, ऐसें दिखावते हुये तिन अष्टअध्यायनका औ या नवम अध्यायका हेतुहेतुमद्भावरूप संबंध कहैहैं।

संस्कारके उद्भवतैं बाहिरके अनित्य साध्य ( स्वर्गआदिक फ
अरु साधन ( यज्ञआदिक )के संबंधतैं जो विरक्त है, ताकूं प्र
गात्मा ( अंतरात्मा )की जिज्ञासा ( जाननेकी इच्छा ) होवैहै।
यह वस्तु प्रश्नउत्तरमय "किसकरि वांछित" इत्यादिरूप
श्रुति ( केनउपनिषद् ), दिखावैहै । कर्मफलतैं विरक्तकूं ब्र
जाननेकी इच्छा होवैहै । याही अर्थविषै अन्य उपनिषदनके
वादकूं कहैहैं:—यजुर्वेदकी कठवल्लीउपनिषद्विषै कहाहै:—"
रमात्मा, इंद्रियनकूं बहिर्मुख हनता भया, तातैं पुरुष बाहिर
खता है, अंतरआत्माकूं नहीं । कोइक धीरपुरुष मोक्षकूं
च्छता हुया विषयनतैं रोक्या है इंद्रियनका समूह जिसनैं
हुया, अंतरआत्माकूं देखता है" इत्यादि । औ अथर्वणवेद
मुंडकउपनिषद्विषै बी कहा है:—"ब्राह्मण जो है सो लोक
कर्मरचित जानिके वैराग्यकूं पावै, जगत्विषै कोउ नित्यप
नहीं है । यातैं कर्मसैं क्या प्रयोजन है ! यह जानिके, सो
परब्रह्मके विज्ञानअर्थ समित् ( कछुक भेटा ) हाथमैं लेके,
त्रिय औ ब्रह्मनिष्ठ गुरुकेहीं समीप जावै" इत्यादि । ऐ
विरक्तकूं प्रत्यगात्माका विज्ञान औ श्रवण मनन निदिध्यास
करनेका सामर्थ्य संभवैहै, अन्यप्रकारसैं नहीं । या प्र
गात्मारूप ब्रह्मके ज्ञानतैं काम औ कर्मकी प्रवृत्तिका कारण
संसारका बीजरूप जो अज्ञान है, सो संपूर्ण निवृत्त होवैहै । "
कताके देखनेहारेकूं तहां कौन मोह है औ कौन शोक है"
वेदमंत्रके कथनतैं । औ "आत्मज्ञानी शोककूं तरता है" औ

८ इहां विरक्तकूंहीं ब्रह्मजिज्ञासा होवैहै, अविरक्तकूं नहीं; ऐसैं अ
औ व्यतिरेक कहैहैं ।

९ इहांपर्य्यंत या उपनिषद्का कर्मकांडसैं संबंध कहा, अब याके
भके संभवअर्थ या उपनिषदतैं जन्य ज्ञानका प्रयोजन कहैहैं ।

सर्वसैं श्रेष्ठ ब्रह्मके देखे हुये, या पुरुषकी हृदयग्रंथि भेदकूं पावती है औ सर्व संशय छेदकूं पावते हैं औ सर्व संचितकर्म नाशकूं पावते हैं" इत्यादि श्रुतितैं । तहां समुच्चयवादीके अभिप्रायकूं लेके शंका करे हैंः—कर्मसहित ज्ञानतैं बी स्वकारण अज्ञानसहित संसारकी निवृत्तिरूप फल सिद्ध होवैहै ? ऐसैं जो समुच्चयवादी कहै, सो बनै नहींः—काहेतैं, बृहदारण्यकउपनिषद्विषै ता कर्मकूं अन्यकी कारणताके कथनतैं "मेरेकूं जाया (स्त्री) होवै" ऐसैं प्रसंगविषै प्राप्त करिके "यह लोक पुत्रसैं सिद्ध होवैहै, अन्य कर्मसैं नहीं औ कर्मसैं पितृलोक (स्वर्गलोक) अरु विद्या (उपासना)सैं देवलोक (ब्रह्मलोक) सिद्ध होवैहै" ऐसैं कर्मकूं आत्मातैं अन्य तीनलोकनका कारणपना कहा है । बृहदारण्यकविषै तहांहीं "प्रजासैं हम क्या करेंगे, जिन हमकूं यह आत्मारूप लोक वांछित है, अन्यलोक नहीं" ऐसैं संन्यासके विधानविषै हेतु कहा है । तहां यह इस हेतुका अर्थ हैः—मनुष्यलोक, पितृलोक, अरु देवलोक; इन तीनलोकनके साधन औ याहीतैं अनात्मारूप लोककी प्राप्तिके कारण जे प्रजा औ तिसकरि उपलक्षित (लक्षणासैं ग्रहण किये) कर्म औ उपासना हैं, तिनकरि हम क्या प्रयोजन सिद्ध करेंगे, जातैं हमकूं साधनकरि साध्य औ याहीतैं अनित्य जे तीनलोक हैं, वे वांछित नहीं हैं; किंतु जिन हमकूं स्वभावसैं सिद्ध अजन्मा अजर अमर अभय औ जो कर्मसैं बढता नहीं अरु छोटा बी होवै नहीं औ याहीतैं नित्य है, ऐसा जो आत्मारूप लोक है, सो वांछित है, तातैं तिनसैं हमारा कछु बी प्रयोजन नहीं । किंवा, सो आत्मारूप लोक नित्य होनेतैं अविद्याकी निवृत्ति किये विना अन्यसाधनसैं प्राप्त होनेकूं योग्य नहीं; तातैं अंतरआत्मासैं अभिन्न ब्रह्मके परोक्षज्ञानपूर्वक सर्व एषणा (इच्छा)का संन्यास (त्याग) करनेकूं योग्य है । जातैं प्रत्यगात्मासैं अभिन्न ब्रह्मके ज्ञानकूं कर्मका सहभावी

( मोक्ष देनेविषै सहकारी ) होनेका विरोध है, यातैं सर्व भेदज्ञा-
नके नाश करनेहारे प्रत्यगात्मासैं अभिन्न ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानक्
कारक अरु फलके भेदके ग्राही ज्ञानवाले कर्मके साथि सहभा
( समुच्चय )पना बनै नहीं । किंवा, ब्रह्मज्ञानकूं मुख्यताकरि वस्तु
अधीन हुये पुरुषके अधीन होनेके अभावतैं बी ज्ञान अरु क
र्मका समुच्चय बनै नहीं । तातैं दृष्ट औ अदृष्टरूप जे बाहि
साधनसैं साधनेयोग्य भोग्यपदार्थ हैं, तिनतैं विरक्तकूं प्रत्यगात्म
विषय करनेहारी यह ब्रह्मजिज्ञासा है, ऐसैं "किसकरि
छित" इत्यादिरूप यह केनउपनिषद् दिखावै है । यामैं शि
औ आचार्यके प्रश्न औ उत्तररूपसैं जो कथन है, सो तो या उ
निषद्रूप ग्रंथकूं सूक्ष्मवस्तु ब्रह्मरूप विषयवाला होनेतैं सुख
जाननेका कारण होवैहै औ या ग्रंथके विषयकी केवल त
जाननैकी अयोग्यताकूं दिखावै है । "यह ब्रह्मविद्यारूप मति
कैसैं प्राप्त होनेकूं योग्य नहीं है" या श्रुतितैं, औ "आचार्य
पुरुष जानता है" औ "आचार्यतैंहीं प्राप्त भई जो विद्या
अतिशय श्रेष्ठ फलकूं प्राप्त करैहै" औ "सो ज्ञान, प्रणि
( साष्टांगनमस्कार )सैं जान" इत्यादि श्रुति औ स्मृतिनके
यम, या अर्थविषै प्रमाण हैं । यातैं कोउक शिष्य, ब्रह्मनि
गुरुके प्रति विधिपूर्वक समीप आयके प्रत्यगात्मातैं अन्यवि
शरण ( रक्षण )कूं न देखता हुया औ अभय नित्य शिव (
ल्याणरूप ) अचल वस्तुकूं इच्छता हुया "किसकरि वांछित
इत्यादिरूप अर्थकूं पूंछता भया; ऐसी कल्पना करैहै ॥ शि
उवाचः—किस कर्त्ता-करि [10]वांछित ( अभिप्रायका विष

१० इहां मूलश्रुतिविषै जो "ईषित" शब्द है, ताका व्याकरणकी
तिसैं और अनेकप्रकारके अर्थ होवैहैं, तौबी या प्रसंगविषै अन्यअर्थके
संभवतैं वांछित ( इच्छाका विषय भया ) यहहीं अर्थ बनैहै, यातैं
ग्रहण किया है । औ मूलश्रुतिविषै जो "प्रेषित" शब्द है, ताका

**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥**

---

भया औ किसी कार्यके अर्थ भेज्या हुया मन अपने विषयके प्रति जाता है ? औ किसकरि भेज्या हुया प्रथम[११] ( सर्व इंद्रियनविषै मुख्य ) प्राण अपने व्यापारके प्रति जाता है ? औ किसकरि वांछित या शब्दरूप वाचाकूं लौकिकजन कहते हैं ? तैसैं चक्षु औ श्रोत्रकूं अपने अपने विषयविषै कौंन देव ( प्रकाशवान् ) भेजता है ? ॥ १ ॥

टीकाः—ऐसैं पूंछनेहारे योग्य शिष्यके तांईहीं गुरु कहते हैं । गुरुरुवाचः—हे शिष्य ! तूं जो पूंछताहै, मन आदिक करणके समूहका कौंन देव अपने विषयके प्रति भेजनेहारा है, अथवा सो कैसैं भेजता है ? याका उत्तर श्रवण करः—जिसकरि पुरुष, शब्दकूं

---

( प्रेरणाकूं पाया ), यह अर्थ है । तिन दोनूंमैंसैं केवल प्रेषित शब्दके कहे हुये किस प्रेरणा करनेवालेनैं कैसी प्रेरणा करी, या अर्थके जाननेकी अपेक्षा होवैहै औ केवल ईषित शब्दके कहे हुये इच्छासैं किसनैं प्रेरणा करी; या अर्थके जाननेकी अपेक्षा होवैहै । यातैं एक एक शब्दके कहनैसैं प्रश्नकी व्यर्थता होवै है, तातैं ईषित औ प्रेषित ये मनके दो विशेषण घटित हैं । तहां शंका हैः—मन जो है सो स्वतंत्र अपने विषयविषै जाता है, यह प्रसिद्ध है; तामैं शिष्यका प्रश्न कैसै बनै ? समाधानः—मन, जब प्रवृत्ति औ निवृत्तिविषै स्वतंत्र होवै, तब सर्वकूं अनिष्टका चिंतन नहीं होवैगा । सर्वजन जानता हुया बी अनर्थविषै संकल्प करताहै, औ अतिउग्र दुःखरूप कार्यविषै निवारण किया बी मन प्रवृत्त होवैहै, तातैं "किसकरि वांछित भया" इत्यादिरूप शिष्यका प्रश्न बनैहै ।

११ जातैं प्राणवायुके पूर्वक सर्वइंद्रियनकी प्रवृत्ति होवैहै, यातैं यह प्राण प्रथम ऐसैं कहा ।

सुनता है, ऐसा शब्दके श्रवणका साधन ( शब्दका प्रकाशक जो श्रोत्रइंद्रिय है, ता श्रोत्रका श्रोत्र-रूप सो है, जो तैंनें "कं औ श्रोत्रकूं कौंन देव भेजता है" ऐसैं पूंछा है सो ॥ ॥ ननु शि "इस प्रकारका देव श्रोत्रादिक इंद्रियनकूं भेजता है" ऐसा उ दिया चाहिये । औ "सो देव श्रोत्रका श्रोत्र है" ऐसा जो तु उत्तर दिया, सो मेरे प्रश्नके अनुसार नहीं है? यह शिष्य शंका है । याका समाधान गुरु कहैहैं:—हे शिष्य ! यह दोष नहीं । काहेतैं, ता देवका और प्रकारका विशेष ( कोइ चिह्न जाननेकूं अशक्य है, यातैं याही प्रकारका उत्तर संभवैहै किंवा, जब यह देव, श्रोत्रादिकके व्यापारसैं विना अपने व्यापा युक्त हुया धान्यादिकके काटनेहारे शस्त्र (दात्र)के चलावने पुरुषकी न्यांई श्रोत्रादिकका अपने अपने कार्यविषै चलावनेवा देखनेमैं आवै, तब तेरे प्रश्नके अनुसार उत्तर होवै, परंतु श्रोत्रादिकनका प्रवर्त्तक जो देव है, सो धान्यादिकके काट साधन आदिकके चलावनेवालेकी न्यांई, अपने व्यापार युक्त नहीं देखिये है, किंतु मिले हुये श्रोत्रादिकनका जो वि भासरूप फलकी उत्पत्तिरूप लिंग ( चिह्न )वाला देखना सं औ निश्चयरूप व्यापार है, तासैं जानिये है कि, जिनके प्रयो अर्थ प्रेरणा किया हुया श्रोत्रादिकनका समूह वर्त्तता है, श्रोत्रादिकनसैं अमिलित देव अवश्य है ॥ किंवा मिले हुये दार्थनकूं ग्रहादिकनकी न्यांई परके उपयोगअर्थ होनेतैं अ नरूप श्रोत्रादिकनका प्रवर्त्तक चेतनरूप देव है; ऐसैं जानिये है

---

१२ जैसैं श्रोत्रआदिक मिलित होनेतैं ग्रहादिककी न्यांई आपतैं क्षण भोक्ताके शेष हैं, ऐसैं अनुमानसैं जानियेहैं; तैसैं जब आत्मा बी लित होवै, तब सो ग्रहआदिककी न्यांई अचेतन होवैगा । तातैं अन्यशेषी भोक्ता कल्पना किया होवैगा, ताका बी अन्य होवैगा; या

तातैं "श्रोत्रका श्रोत्र है," इत्यादिरूप उत्तर, तेरे प्रश्नके अनुसार नहीं है ॥ ॥ ननु, फेर इहां "श्रोत्रका श्रोत्र है" या वाक्यके पदनका अर्थ बनता नहीं । काहेतैं जैसैं प्रकाशका अन्यप्रकाशसैं प्रयोजन नहीं है, तैसैं इहां श्रोत्रका अन्य श्रोत्रसैं प्रयोजन नहीं है? ऐसी शिष्यकी शंका भई; तहां गुरु कहैहैंः—यह दोष बनै नहीं । काहेतैं, इहां यह पदनका अर्थ हैः—श्रोत्रइंद्रिय जो है, सो प्रथम अपने विषयके प्रकाशनेविषै समर्थ देख्या है । श्रोत्रकूं सो अपने विषयके प्रकाशनेका सामर्थ्य, नित्य अमिलित सर्वांतर औ चैतन्यरूप आत्मप्रकाशके होतेहीं होवैहै । ताके अविद्यमान हुये होवै नहीं । यातैं "श्रोत्रका श्रोत्र है" इत्यादि पदनका अर्थ बनै है ॥ तैसैंहीं अन्य श्रुतियां बी कहैहैंः—"आत्मासैंहीं यह लोक भासता है" औ "तेरे प्रकाशरूप ता आत्माके प्रकाशसैं यह सर्वजगत् भासता है" औ "या तेजसैं प्रकाशित भया सूर्य तपता है" इत्यादिक श्रुतियां हैं । औ "जो तेज सूर्यविषै स्थित हुया सारेजगत्कूं प्रकाशता है" औ "हे भारत (अर्जुन)! तैसैं क्षेत्री ( साक्षी ), सारेक्षेत्र ( समष्टि व्यष्टिरूप शरीर )कूं प्रकाशता है" इत्यादि गीताके वाक्यनविषै कहा है, औ कठवल्लीविषै बी कहा हैः—"परमात्मा नित्यनका नित्य है औ चेतनोंका बी चेतन है" [१३] औ तैं श्रोत्रादिकहीं सर्व जगत्का आत्मारूप चेतन है, ऐसैं जो लोकविषै प्रसिद्ध है । सोई इहां विद्वानोंकी बुद्धिसैं गम्य अतिशय सर्वांतर कूटस्थ ( अविकारी ) अजर अमृत ( अमर ) अभय अजन्मारूप कछुक वस्तु है, ऐसैं निर्वाह करियेहै । तातैं श्रोत्रादिकका बी श्रोत्रादिस्वरूप, तिनका सामर्थ्यरूप

---

वस्थादोषके निवारणअर्थ आत्मा अमिलित चेतन है ऐसैं जानियेहै । यातैं सर्व साक्षीके लखावनेकूं यह उत्तर युक्त है ।

१३ इहां सो देव श्रोत्रका श्रोत्र है, या उत्तरका संक्षेपसैं तात्पर्य कहैहैं ।

सो देव है, ऐसैं उत्तर औ इन शब्दनका अर्थ बनै है ॥ तैसैं सो देव, **मन** जो अंतःकरण ता-का **मन** है। मन जो है सो जां चैतन्यरूप प्रकाशसैं विना आपहीं प्रकाशमान हुया अपने विषयके संकल्प औ निश्चय आदिकविषै समर्थ नहीं होवैहै, ता "मनका बी मन है," ऐसैं कहा । सो देव जातैं श्रोत्रका श्रोत्र है औ जातैं मनका मन है, यातैं सो **वाक्** ( वाचा )-का **वाक्** है। औ जो तैनैं पूछा देव, सो प्राण या नामवाली को प्राणवृत्तिरूप **प्राण** है, ता-का **प्राण** है। प्राणका प्राणन ( जीवावने )विषै जो सामर्थ्य है, सो ताका कियाहीं है । काहे आत्मारूप अधिष्ठानसैं रहित प्राणकूं जीवावना [15]बनै नहीं; या युक्तितैं औ "जब यह [हृदय] आकाशविषै आनंद न होवै तब कौ चलावै औ कौंन जीवावै" औ "यह परमात्मा प्राणकूं बाहिर चलावता है औ अपानकूं भीतर चलावता है" इत्यादिक श्रुतितैं इहां बी आगे कहियेगाः—"जिसकरि प्राण चलताहै ताहींकूं ब्रह्म जान" ॥ ॥ ननु, इहां श्रोत्रादि इंद्रियनके प्रसंगविषै घ्राण ( नासिका )के प्राणका ग्रहण किया होवैगा। यह कहैं सो युक्त नहीं; तहां कहैहैं;—यह तेरा कथन सत्य है, तातैं इहां यह श्रुति, प्राणहीं ग्रहणसैं तो घ्राण इंद्रियके ग्रहणविषै तात्पर्यसैं वर्त्तती है, ऐसे मानिये है । जातैं सारे करणसमूहकी जाके अर्थ करी हुयी प्रवृत्ति है, सो ब्रह्म है, यह या प्रसंगका अर्थ कहनेकूं वांछित है; यातैं यह अर्थ बनै है ॥ तैसैं सो **चक्षुका चक्षु** है । जातैं रूपगु

---

१४ आत्मा, जातैं श्रोत्रआदिकनका बी श्रोत्रआदिरूप है; तातैं श्रोत्रादिकविषै आत्मबुद्धिका त्याग करना, यह अर्थ इहां ग्रहण करना।

१५ इहां यह अनुमान हैः—प्राणकी जो चेष्टा है सो चेतनरूप अधिष्ठानके आश्रयपूर्वक हैं, अचेतनकी प्रवृत्तिरूप होनेतैं, रथआदिक प्रवृत्तिकी न्याईं।

प्रकाशक चक्षुइंद्रियका जो रूपके ग्रहणविषै सामर्थ्य है, सो आत्मचैतन्यरूप अधिष्ठानका कियाहीं है, यातैं सो चक्षुका चक्षु बनैहै । इहां श्रोत्रादिक करणके समूहकी मुक्तिदशाविषै निवृत्ति होवैहै, यातैं श्रोत्रादिकविषै आत्मभाव करिके तिस उपाधिवाला हुया तिसरूपसैं जन्मताहै, मरताहै औ व्यवहारकूं करताहै । यातैं श्रोत्रादिकनका श्रोत्रादिरूप जो ब्रह्म है, सो आत्मा है (मैं हूं)। ऐसैं जानिके[16] औ श्रोत्रादिकविषै आत्मभावकूं **छोडिके** जो वर्त्ततेहैं वे पुरुष **धीर** (बुद्धिमान्) हैं। जातैं श्रेष्ठबुद्धिमान्पनै विना श्रोत्रादिकविषै आत्मभाव, त्याग करनेकूं अशक्य है; यातैं वे **धीर**-पुरुष, पुत्र मित्र कुल औ बंधुनविषै अहं ममभावके व्यवहाररूप **या लोकतैं सर्वएषणाकूं त्याग करिके, मरणधर्मसैं रहित होवैहै** । "न कर्मसैं न प्रजासैं न धनसैं मोक्षकूं पावतेहैं, किंतु केइक महात्मा एक त्यागसैंहीं मोक्षकूं पावतेभये" औ "परमात्मा इंद्रियनकूं हनता भया" औ "मोक्षकूं इच्छता हुया पुरुष सकलइंद्रियनके निरोधवाला हुया" औ "जब या पुरुषके हृदयगत सर्वकाम छूटतेहैं; तब यह मरणधर्मवाला पुरुष मरणधर्मतैं रहित हुया याहीदेहविषै ब्रह्मकूं पावता है" इत्यादिक श्रुतिनतैं, यह जीवन्मुक्तिरूप फल सिद्ध भया । अथवा श्रोत्रादिकविषै आत्मभावकूं छोडिके, या कहनेसैं,

---

१६ इहां "जानिके," यह पद बाहिरसैं ग्रहण किया है। ताका यह कारण है:—श्रोतानैं जो अर्थ पूंछ्या है सो ताकूं जाननेकूं इच्छित है, यातैं श्रोत्रादिकनका श्रोत्रादिरूप जो उक्तब्रह्म है, ताकूं जानिके ऐसैं कहा चाहिये। काहेतैं, "इहां अमृत होवैहै" या फलके श्रवणतैं, औ "ज्ञानसैं वा अमृतभावकूं इच्छता है औ जानिके मुक्त होवैहै" या श्रुतिके सामर्थ्यतैं, औ श्रोत्रादिकरणके समूहकी ज्ञानसैंहीं निवृत्तिके होनेतैं।

**न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥**

---

सर्वएषणाके त्यागकूं सिद्ध होनेतैं, या वर्त्तमानशरीररूप लोकमें मरणकूं पायके विदेहमुक्त होवैहैं, यह अर्थ सिद्ध भया ॥ २ ॥

**टीका:**—जौंतैं[17] श्रोत्रादिकनका श्रोत्रआदिकरूप ब्रह्म है, यातैं ता ब्रह्म-विषै चक्षु-इंद्रिय गमन ( प्रवृत्ति ) करता नहीं। काहेतैं अपने स्वरूपविषै गमनके असंभवतैं । तैसैं वाणी गमन करती नहीं, काहेतैं वाणीसैं उच्चारण किया जो शब्द सो वाच्यअर्थकूं जब जनावताहै, तब वाच्यअर्थके तांई वाणी जातीहै । ता शब्दका औ ताके साधन वाणीका स्वरूप ब्रह्म है, यातैं ता ब्रह्मकेविषै वाणी जाती नहीं । जैसैं दाहक औ प्रकाशक हुया बी अग्नि आपकूं जलावता नहीं, औ प्रकाशता नहीं, तैसैं ब्रह्मविषै मन जाता ( विषयकरता ) नहीं । काहेतैं, मन जो है सो अन्यवस्तुके संकल्पका कर्त्ता औ निश्चयका कर्त्ता हुया बी आपके संकल्पकूं औ निश्चयकूं करता नहीं । ता मनका बी स्वरूप ब्रह्म है । यातैं ब्रह्म

---

१७ सर्पादि अध्यासके अधिष्ठान रज्जुकी न्याईं, श्रोत्रादि अध्यासका अधिष्ठान जो चैतन्य, "सो श्रोत्रका श्रोत्र" इत्यादि पदनसैं जब लखाया, तब ताकूं रज्जुकी न्याईं अधिष्ठान होनेतैं विषयभावकी प्राप्ति होवैगी । इस शंकाका यह समाधान इहां कहैहैं कि:—अध्यस्तवस्तुका अधिष्ठानहीं स्वरूप है । काहेतैं, आदि अंत औ मध्यविषै ताके अव्यभिचारतैं । तातैं पदार्थका धर्म जो विषयभाव सो अधिष्ठानके स्वरूपकूं होवै नहीं । यातैं स्वरूपके विषयभावके साधनविषै "अधिष्ठान होनेतैं" जो हेतु कहा, सो निष्प्रयोजन है ।

विषै मन बी जाता नहीं । इंद्रियं[18] औ मनसैं वस्तुका ज्ञान होवैहै । जातैं ब्रह्म तिसका अविषय है, तातैं सो ब्रह्म ऐसा है, यह हम नहीं जानतेहैं । याहीतैं जा प्रकारसैं यह ब्रह्म शिष्यकेतांई उपदेश करिये सो हम नहीं जानतेहैं । जबै[19] सो करणका विषय होवै, तब जाति गुण औ क्रियारूप विशेषणसैं अन्यके तांई उपदेश करनेकूं शक्य होवै। जातैं सो ब्रह्म जातिआदिक विशेषणवाला नहीं, तातैं शिष्यनके ताई उपदेशसैं प्रतीति करावनेकूं दुर्घट है ॥ अब उपदेशविषै औ ताके अर्थके ग्रहणविषै गुरु औ शिष्यकूं अतिशय यत्न करनेकूं योग्य है, ऐसैं दिखावैहैं:—"हम नहीं जानते" इत्यादि पदनसैं उपदेशके प्रकारके अत्यंतहीं निषेधके प्राप्त भये, ताका समाधान यह कहियेहै कि:—परमात्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणनसैं प्रतीति करावनेकूं अशक्य है, यह वार्त्ता यद्यपि सत्य है; तथापि [20]श्रुतिसैं तो प्रतीति करावनेकूं शक्यहीं है, यातैं ताके उपदेशअर्थ श्रुतिकूं कहैहैं:—जो ब्रह्म, श्रोत्र आदिकनका श्रोत्र आदिरूप कहा है औ तिनका अविषय है, सो ब्रह्म विदित वस्तु-तैं अन्य हीं है । जो वस्तु ज्ञानरूप क्रियासैं अतिशय व्याप्त होयके ज्ञानरूप क्रिया-

---

१८ इहां ब्रह्मकूं अविषय होनेतैं, ब्रह्म वास्तव शास्त्र औ आचार्यकरि उपदेश करनेकूं अयोग्य है; ऐसैं कहैहैं ।

१९ जो वस्तु करणका विषय होवै, सो यह ब्राह्मण है; इत्यादि जातितैं औ यह श्याम है, इत्यादि गुणतैं औ यह पाचक ( रसोईया ) है, इत्यादि क्रियातैं औ यह राजाका पुरुष है, इत्यादिक संबंधरूप विशेषणतैं उपदेश करियेहै । ब्रह्म तो "केवल औ निर्गुण है" इत्यादि श्रुतितैं, जातिआदिकवाला नहीं, यातैं उपदेश करनेकूं अशक्य है । यह भाव है ।

२० जातैं ब्रह्म, वेदांतकरि प्राप्त होवैहै, यातैं ताके द्रष्टा आचार्यका बी अविद्यालेशके अनाशकी दृष्टिसैं व्यावहारिकउपदेश बनैहै । औ श्रुतितैं ताही अधिकारीका आत्मा, ब्रह्मरूपसैं लखावनेकूं योग्य है । यह अभिप्राय है ।

का विषय होवै, सो वस्तु कहींक कछुक किसीएक पुरुषकूं विदि (ज्ञात) होवैहै। तातैं या प्रकारका सर्वहीं व्याकृत (स्पष्टकार्य रूप जो वस्तु, सो विदितहीं है, तातैं ब्रह्म न्यारा है; यह अर्थ है॥ तब ब्रह्म अज्ञात होवैगा? या शंकाके प्राप्त भये कहैहैं: विदिततैं विपरीत अव्याकृत (अस्पष्ट) औ व्याकृत (पूर्वउक्त कार्य)के बीज (कारण) अविद्यारूप अविदित वस्तुतैं बी ब्रह्म उप (न्यारा) है। जो विदितवस्तु है, सो परिच्छिन्न औ अत्यंतदुः रूप है, यातैं त्याग करनेकूं योग्य है। इहां ता विदिततैं ब्र न्यारा है, ऐसैं कहे हुये ब्रह्मके त्यागकी अयोग्यता कही। अविदिततैं ब्रह्म न्यारा है, ऐसैं कहे हुये ब्रह्मके ग्रहणकी अ ग्यता कही। कार्यके अर्थ अन्य कारण, अन्य पुरुषकरि ग्रहण रियेहै, यातैं जाननेवालेकूं प्रयोजनअर्थ अन्यवस्तु ग्रहण क योग्य होवै नहीं ऐसैं नहीं, किंतु होवैहींहै। या रीतिसैं "वि औ अविदिततैं ब्रह्म न्यारा है," या कथनकरि त्याग औ ग्रहण योग्यताके निषेधसैं अपनेतैं न्यारा होनेतैं शिष्यकूं ब्रह्मकी जिज्ञा उत्पन्न करी। औ विचारदृष्टिसैं देखिये तो अपने आत्मातैं वस्तुका विदित औ अविदिततैं अन्यपना संभवै नहीं, यातैं त्मा ब्रह्म है, यह या वाक्यका अर्थ है। काहेतैं "यह आ ब्रह्म है" औ "जो आत्मा पापरहित है" औ "जो ब्रह्म क्षात् अपरोक्ष है" औ "जो आत्मा सर्वांतर है" इत्यादिक श्रुतिनतैं। ऐसैं सर्वका अपनाआप सर्वभेदसैं रहित केवलचे रूप प्रकाशके ब्रह्मभावके प्रतिपादक वाक्यकी आचार्यनके देशकी परंपरासैं प्राप्तिकूं कहैहैं:—ब्रह्मचैतन्य आचार्यनके उ शकी परंपरासैं हीं जाननेयोग्य है, अनुमानादि युक्तिरूप त

२१ जो वस्तु जातैं ऊपरि है, सो तातैं न्यारा है, यह प्रसिद्ध है। इहां अधि (उपरि)शब्दका लक्षणासैं, न्यारा यह अर्थ किया है।

**यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥**

---

औ पढनै पढावनैसैं औ बुद्धिसैं औ बहुतशास्त्रनके सुननेसैं अरु यज्ञादिक कर्मनतैं जाननेयोग्य नहीं; ऐसैं हम पूर्वके आचार्यनके वचनकूं सुनते भये । सो आचार्य कैसे हैं? जे आचार्य हमकूं सो ब्रह्म स्पष्ट कहते भये ॥ ३ ॥

**टीका:**—"सो ब्रह्म विदिततैं न्यारा है औ अविदिततैं बी न्यारा है" या वाक्यसैं "आत्मा ब्रह्म है" ऐसैं प्रतिपादन किये हुये श्रोताकूं आशंका भई कि:—आत्मा नाम कर्म औ उपासनाविषै अधिकारी औ संसारी जीव है, सो कर्म वा उपासनारूप साधनकूं अनुष्ठान करिके ब्रह्मादि देवनकूं वा स्वर्गकूं प्राप्त होनेकूं इच्छता है, तातैं न्यारा उपासना करने योग्य विष्णु वा शिव वा इंद्र वा प्राण जो है, सो ब्रह्म होनेकूं योग्य है, आत्मा नहीं, काहेतैं लोकनके अनुभवके विरोधतैं । जैसैं अन्य नैयायिक जे हैं, वे ईश्वरसैं अन्य आत्मा है ऐसैं कहते हैं, तैसैं मीमांसक जे हैं वे "कर्मतैं याकूं यजन कर" ऐसैं अपनेतैं अन्य देवताकूं उपासते हैं, तातैं जो वस्तु ज्ञान्या हुया उपासना करनैयोग्य है, सो ब्रह्म होवैहै, औ तातैं अन्य उपासक होवै है; यह कहना उचित है । तातैं "आत्मा ब्रह्म है" यह वाक्यका अर्थ कैसैं बनै? सो कहो । या शंकाकूं दूरी करते हुये गुरु कहैहैं:—हे शिष्य! ऐसैं शंका मति कर । काहेतैं, जो इंद्रिय केवल चैतन्यरूप सत्तावाला वाचा औ वाक् ऐसैं कहिये है; सो जिह्वाके मूलसैं आदिलेके [22]अष्टस्थानोंविषै स्थित है औ अग्निदेवतावाला है औ ककारादि वर्ण (अक्षर)नका प्रकाशक करण है । औ

---

२२ हृदय, कंठ, शिर, जिह्वाका मूल, दंत, नासिका, ओष्ठ औ तालु; ये आठ वर्णउच्चारके स्थान हैं ।

[२३]वर्ण जे हैं वे अर्थके संकेतसैं न्यारे न्यारे इतने औ ऐसैं क्रमवा हैं औ तिनकरि प्रकाशनेयोग्य जो शब्द, सो पद औ वाक् (वाणी ऐसैं कहिये है। "[२४]ॐकार जो है सो सर्व वाणीरूप है। सो या पु रुषकी वाणी [२५]स्पर्श [२६]अंतस्थ औ [२७]ऊष्मरूपसैं प्रकाशमान हुयी बहुत नानारूप होवैहै" या श्रुतितैं; सो वाक् [२८]मित [२९]अमित औ [३०]स्व ररूप होवैहै ॥ फेर सो वाचा कैसी है? सत्य औ जूठ ये दोनूं विकार जाके औ पदरूपसैं भिन्न भिन्न है औ वाक् ऐसै विशे णवाली है। ता वाचासैं जो (ब्रह्म) कथन किया जावै ना औ चैतन्य ज्योतिरूप जा (ब्रह्म)सैं वाचा प्रकाशित होवै औ जो वाक्का वाक् कहा है औ "जो कहता हुया वाक्रूप अरु वाचाकूं भीतर वर्त्तमान हुया नियममैं रखता है" इत्यादि वा क्यसैं बृहदारण्यकविषै कहा है। औ "जो वाचा पुरुषनविषैं सो वर्णोंविषै स्थित है, ताकूं कोइक ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) जान है" ऐसैं प्रश्न करिके उत्तर कहा है। "जासैं स्वप्नविषै बोल

---

२३ केवल वाक्इंद्रियहीं करण नहीं, किंतु वर्ण बी करण कहिये ऐसैं इहां दिखावैहैं।

२४ इहां अकारशब्दसैं अकार है प्रधान जिसविषै, ऐसै उट श उपलक्षित औ स्फकारसहित जो "स्फोट" या नामवाली चेतनकी शक्ति सो ग्रहण करिये है।

२५ ककारसैं आदिलेके मकारपर्य्यंत जे पचीस वर्ण हैं, "स्पर्श" कहियेहैं।

२६ य र ल व, ये च्यारी वर्ण "अंतस्थ" कहियेहैं।

२७ श ष स ह, ये च्यारी वर्ण "उष्म" कहियेहैं।

२८ पदके अंतविषै नियमित अक्षरवाला होनेतैं ऋग्वेद आदि मित कहिये है।

२९ पदके अंतविषै अक्षरनके अनियमवाला होनेतैं यजुर्वेद आदि अमित कहिये है।

३० गायनकी प्रधानतातैं सामवेद, स्वर कहिये है।

**यन्मनसा न मनुते येनाऽऽहुर्मनो मतम् ।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥**

है, ऐसी सो वाणी है," "सोई वक्ताकी वाणी नित्य चैतन्य ज्योतिस्वरूप वाचा है," "वक्ताकी वाणीका नाश नहीं है" या श्रुतितैं सोई आत्मस्वरूप सर्वसैं अधिक भूमा इस नामवाला व्यापक होनेतैं ब्रह्म है, ऐसैं तूं जान । जिन वाणी आदिक उपाधिनसैं "वाणीका वाणी, चक्षुका चक्षु, श्रोत्रका श्रोत्र, औ मनका मन है, अरु कर्त्ता भोक्ता विज्ञाता नियंता औ प्रशासिता (दंड देनेवाला) है औ विज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है" इत्यादिक कथनरूप व्यवहार, सम्यक् कहनेयोग्य भेदरहित परमशांत ब्रह्मविषै वर्ततेहैं । तिन व्यवहारनकूं निषेध करिके "आपकूंहीं भेदरहित ब्रह्म जान" यह मूलश्रुतिगत एव शब्दका अर्थ है । जा उपाधिनके भेदसहित अनात्मारूप औ ईश्वर आदिक-की लोक उपासना करैहैं, यह ब्रह्म नहीं है । इहां ताहीकूं तूं ब्रह्म जान, ऐसैं कहे हुये बी यह नहीं है । ऐसैं फेर अनात्माका अब्रह्मपना जो कहियेहै, सो नियमके अर्थ है, वा अन्य उपास्यवस्तुविषै ब्रह्मबुद्धिके निवारण अर्थ है ॥ ४ ॥

**टीकाः**—जा (ब्रह्म)कूं मनसैं मनन करता नहीं । इहां बुद्धि औ मनकी एकतासैं मन ऐसैं अंतःकरण ग्रहण करियेहै । जासैं पुरुष मनन (विचार) करताहै, सो मन कहियेहै । यह मन, सर्व इंद्रियनविषै साधारण है; सर्वके विषयनविषै व्यापक होनैतैं । "काम संकल्प संशय श्रद्धा धैर्य अधैर्य लज्जा बुद्धि औ भय, यह सर्व मनहीं हैं" या श्रुतितैं कामआदिक वृत्तिवाला मन है । ता मनसैं जा मनके प्रकाशक चैतन्य ज्योति-कूं लोक मनन करता नहीं; कहिये संकल्प औ निश्चयका विषय करता नहीं । काहेतैं सो मनका प्रकाशक होनेकरि नियामक है, यातैं सर्व विषयके प्रति

**यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुंषि पश्यति ।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६**
**यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७**
**यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते ।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ८**

इति श्रीकेनोपनिषदि प्रथमखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

---

अंतरहीं वर्त्तमान जो अंतःकरण, सो आत्माविषै वर्त्तता नहीं। अंतरविषै स्थित चैतन्यज्योतिसैं प्रकाशित भये मनकूं मनन क नेका सामर्थ्य है औ जा (ब्रह्म)नैं वृत्तिसहित मन, मनन (वि किया है; ऐसैं ब्रह्मवेत्ता कहतेहैं । तातैं तिसीहीं मनके आ रूप अंतर औ चेतन करनेवाले-कूं तूं ब्रह्म जान; औ जा लोक उपासना करैहैं यह ब्रह्म नहीं है, इत्यादि पदनका पूर्वकी न्याईं जानना ॥ ५ ॥

टीकाः—जा (ब्रह्म)कूं अंतःकरणकी वृत्तिसहित चक्षुसैं नहीं देखता (विषय करता) है औ जा चैतन्यज्योतिरूप ब्रह्म अंतःकरणके भेदसैं भिन्न चक्षुकी वृत्तिनकूं देखता (विषय कर है, ताहीकूं तूं ब्रह्म जान औ जाकूं लोक उपासतेहैं यह ब्र नहीं है ॥ ६ ॥

टीकाः—जा (ब्रह्म)कूं दिशारूप देवताके आश्रित आका कार्य्य मनकी वृत्तिसहित श्रोत्रसैं लोक नहीं सुनता (विषय रता है औ जा चैतन्यज्योतिरूप (ब्रह्म) नैं यह प्रसिद्ध श्रो सुन्या ( विषय किया ) है ताहीकूं तूं ब्रह्म जान औ जा लोक उपासतेहैं यह ब्रह्म नहीं है ॥ ७॥

टीकाः—जा(ब्रह्म)कूं नासिकापुटके भीतर स्थित औ अं

## अथ द्वितीयखण्डः ।

**यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् । यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ १ ॥**

---

करण अरु प्राणवृत्तिकरिसहित प्राण[३१] (घ्राणइंद्रिय)सैं लोक गंधकी न्याईं विषय नहीं करता है औ जा चैतन्यज्योति सैं प्रकाशने-योग्य होनेकरि प्राण ( घ्राण ) अपने विषयके ताईं जाता है, ताहीकूं तूं ब्रह्म जान औ जाकूं लोक उपासतेहैं, यह ब्रह्म नहीं है ॥ ८ ॥

इति श्रीतलवकारोपनिषद्गत प्रथमखण्ड भाष्यभाषादी-पिका समाप्ता ॥ १ ॥

---

## अथ तलवकारोपनिषद्गतद्वितीयखंडभाष्यभाषा-दीपिका प्रारभ्यते ॥ २ ॥

**टीकाः**—इसरीतिसैं "त्याग औ ग्रहण करनेयोग्य वस्तुतैं वि-परीत आत्मारूप तूं ब्रह्म हैं," ऐसैं प्रतीतिकूं प्राप्त किया जो शिष्य, सो मैंहीं ब्रह्म हूं, ऐसै मैं सम्यक् जानता हूं; या प्रकारसैं ग्रहण नहीं करै, या अभिप्रायसैं शिष्यकी बुद्धिके हिलावने अर्थ आचार्य कहैहैं:–[इहां यह वादीकी शंका है] ननु, "मैं सम्यक् जानता हूं" ऐसैं निश्चित जानना इष्ट ( वांछित ) है ? [समाधान] यद्यपि निश्चित जानना इष्ट है यह कहना सत्य है; तथापि मैं सम्यक् जानता हूं, ऐसैं जानना इष्ट नहीं । काहेतैं, जैसैं जलावनेयोग्य जो काष्ठ आदि वस्तु है, सो अग्नितैं जलावनेकूं शक्य है, जलावनेवाले अग्निका स्वरूप नहीं; तैसैं जो जानने योग्य वस्तु काहूका विषय

---

३१ इहां प्राणशब्दसैं प्राणके संबंधि घ्राणइंद्रियका ग्रहण है । याका अभिप्राय प्रथमखंडगत द्वितीयमंत्रके व्याख्यानविषै स्पष्ट है ।

होवै, सो सम्यक् जाननेकूं शक्य है, जाननेवालेका स्वरूप नहीं
[32]ब्रह्म जातैं सर्व जाननेवालेका स्वरूप है, यह सर्व वेदांतका निश्चि
अर्थ है । औ इहां "श्रोत्रका श्रोत्र है" इत्यादिरूप प्रश्न उत्त
सोई ब्रह्म प्रतिपादन किया है औ जो वाणीसैं कथन किया न
नहीं, ऐसैं विशेषकरि निश्चित किया है औ सो ब्रह्म "विदि
अन्य हीं है अरु अविदिततैं बी अन्य है" ऐसैं ब्रह्मविदन
संप्रदाय कहिके, कहनेकूं आरंभ किया है औ "जो ज्ञाननेहा
अज्ञात है औ न जाननेहारेकूं ज्ञात है" ऐसैं आगे समाप्त का
येगा । यातैं ब्रह्म सम्यक् जाननेकूं शक्य नहीं । जातैं जाननेवाले
स्वरूप ब्रह्म, सम्यक् जाननेकूं शक्य नहीं है, तातैं मैं सम्यक् ज
नता हूं या शिष्यकी बुद्धिका निषेध करना उचित है। जैसैं अग्नि
है, सो जलावनेवाले आप अग्नितैं जलावनेकूं शक्य नहीं है,
जाननेवाला जो है, सो जाननेवाले आपहींतैं जाननेकूं शक्य न
है । जातैं जाके ज्ञानका विषय आपतैं न्यारा ब्रह्म होवै, ऐसा ब्रह्म
अन्य जाननेवाला नहीं है "यातैं अन्य विज्ञाता नहीं है" ऐसैं अ
ज्ञाताका निषेध किया है । तातैं मैं ब्रह्मकूं सम्यक् जानता हूं,
जानना मिथ्याहीं है । तातैं आचार्य योग्यहीं कहैहैं:—

हे शिष्य! [33]जब (कदाचित्) तूं मैं ब्रह्मकूं सम्यक् जान

---

३२ ब्रह्म, जातैं जाननेवालेका स्वरूप है, यातैं काहूका विषय नहीं
परंतु ब्रह्म, जाननेवालेका स्वरूप है; याविषै प्रमाणका अभाव है, यातैं
न्यका विषय माने हुये क्या अघटित है ? या आशंकाकूं निवारण क
हुये, "ब्रह्म, ज्ञाताका स्वरूप है" यह अब निरूपण करैहैं ।

३३ यह मूल श्रुतिविषै जो "जब (यदि)" शब्द है, ताके उ
विषै कारण कहैहैं:—जब (कदाचित्) दुःखसैं जाननेंयोग्य ब्रह्मकूं बी
श्रवण किया है, तैसा कोईक दोषरहित बुद्धिमान् पुरुष जानता है
कोइक नहीं जानता है; ऐसी आशंकासहित इहां यदिशब्दका उ
रण है । याही अर्थविषै विरोचन औ इंद्रका उदाहरण कहैहैं:—

**हूं, ऐसैं मानता हैं, तब तूं निश्चयकरि अल्प ( छोटा ) हीं ब्रह्मका रूप जानता हैं ॥ ॥ ननु, ब्रह्मके रूप, क्या मोटे औ छोटे अनेक हैं, जासैं आचार्य्य अल्पहीं ब्रह्मका रूप तूं जानताहैं, ऐसैं कहते हैं? यह वादीकूं शंका भई, तहां सिद्धांती कहैहैं:—**

---

प्रजापतिके वंशविषै प्रल्हादतैं उत्पन्न भया पंडित ऐसा असुरनका राजा जो विरोचन, सो बी "जो यह दक्षिणनेत्रविषै पुरुष देखिये है, यह आत्मा है; यह अमृत अभय है, यह ब्रह्म है; ऐसैं ब्रह्मदेव कहते भये।" ऐसैं कहे हुये, स्वभावदोषके वशतैं जान्या वी नहीं । औ "नेत्रविषै शरीरका प्रतिबिंब देखिये है, ऐसी प्रसिद्धिवाले उपदेशतैं शरीरके प्रतिबिंबकूं व्यभिचारी जानिके शरीर आत्मा है, ऐसैं विपरीत अर्थकूं जानता भया। तैसैं देवनका राजा इंद्र जो है, सो "जो यह दक्षिणनेत्रविषै पुरुष देखिये है, सो आत्मा है" ऐसैं एकवार कहा औ 'जो यह स्वप्नविषै महिमाकूं पाया हुया विचरता है,' ऐसैं दूसरीवार कहा औ "जहां सुषुप्तिकूं पाया हुया सर्व प्राणी जाकूं पावता है सो ब्रह्म है।" ऐसैं तीसरीवार कहा, तौ वी आत्माकूं न जानता भया। औ ब्रह्मचर्यसैं अधर्मादि दोषके क्षयकी अपेक्षा करिके चतुर्थ वार "जो यह सुषुप्तिविषै संप्रसाद ( प्रसन्न ) नामवाला जीव है, सो या तीनशरीरतैं ऊठिके ( आपकूं न्यारा जानिके ) परम ज्योतिरूप ब्रह्मकूं पायके" ऐसैं कहे हुये प्रथम उक्त ब्रह्मकूंहीं जानता भया। यह छांदोग्यके सप्तमअध्यायविषै प्रसिद्ध है। जब लोकविषै वी एक गुरुतैं इंद्रियगोचर अर्थकूं सुननेवाले पुरुषनके मध्य कोइक यथार्थ जानता है औ कोइक अयथार्थ (अपूर्ण) जानता है औ कोइक विपरीत जानता है औ कोइक नहीं जानता है। तब इंद्रिय अगोचर आत्मतत्त्वकूं सुनिके कोइक जाने औ कोइक न जाने, यामैं क्या कहना है! कछुवी नहीं। जातैं या आत्मतत्त्वविषै सर्व तर्कशास्त्रके जाननेवाले पंडित, है वा नहीं है, ऐसैं वाद करते हैं, तातैं "ब्रह्म अज्ञात है" ऐसैं निश्चित कहा है। तौ वी ताकूं विवादका विषय होनैतैं "मैं सम्यक् जानता हूं, ऐसैं जब मानता हैं" इत्यादिरूप यह आशंकासहित आचार्यका वचन युक्तहीं हैं।

यह तेरा कथन सत्य है, काहेतैं नामरूप उपाधिके कि
अनेकहीं ब्रह्मके रूप हैं; परंतु वे वास्तव नहीं हैं। वास्तव तो "
ब्रह्म अशब्द अस्पर्श अरूप अव्यय अरस नित्य औ गंधरहित है
ऐसैं इस श्रुतिकरि शब्दादिकसहित ब्रह्मके रूपनका निषेध
रियेहै ॥ ॥ ननु, जा धर्मसैं जो निरूपण करिये है, सोई ता
स्वरूप है; या रीतिसैं ब्रह्मका बी जा विशेषणसैं निरूपण करिये
सोई ताका रूप होवैगा ? यह आशंका भई, तहां कहिये है:-
तन्य जो है सो पृथिवी आदिक पांचभूतनमैंसैं कोई एकका, वा
हाकारसैं परिणामकूं प्राप्त भये सर्व भूतनका [34]धर्म नहीं है; तैसैं श्र
त्रादिक इंद्रियनका औ अंतःकरणका धर्म नहीं है । ता चैतन्य
विशेषणसैं ब्रह्मका निरूपण करिये है, यातैं सो स्वतंत्र चैतन्य,
ह्मका रूप है । तैसैं श्रुतिनविषै कहा है:—"विज्ञान आनंदरूप ब्र
है" औ "विज्ञानघन हीं है" औ "सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म है"
रीतिसैं ॥ ॥ ननु, जब ऐसैं श्रुतिनविषै ब्रह्मका रूप कहा है
तुम "ब्रह्मका रूप नहीं है" ऐसैं क्यूं कहते हो ? यह शंका
तहां कहैहैं:-सो यद्यपि सत्य है, तथापि सो ब्रह्मका रूप अंतः
रण देह औ इंद्रिय उपाधिद्वाराहीं विज्ञान आदिक शब्दनसैं
हिये है । काहेतैं, देहादिकके वृद्धि संकोच औ छेद आदि
विषै औ नाशविषै तिनका [35]अनुसारी होनेतैं, स्वरूपसैं नहीं

३४ भूत औ तिनके कार्य देहादिकविषै बाहिर चेतनपना नहीं दे
है, ताकूं तिनका धर्म मानिये तौ रूपादिक धर्मकी न्यांई ताके साथ
अभावका प्रसंग होवैगा, यातैं सो चेतनपना तिनका धर्म नहीं है ।

३५ उपहितसैं संबंधका नाम उपाधि है । चैतन्य जातैं असंग है,
ताका देहादिक उपाधि कैसै बनै ? या आशंकाके निवारण अर्थ
हैहैं:—जैसैं जलके कंपमान भये, सूर्य, कंपमान हुयेकी न्यांई भासता
औ जलके नाश भये सूर्य, नाश हुयेकी न्यांई भासता है । जातैं कि

[३६]स्वरूपसैं तो "जाननेवालेकूं अज्ञात है, अरु न जाननेवालेकूं ज्ञात है" ऐसैं आगे जो या ब्रह्म-का रूप है सो निश्चित होवैगा, ऐसैं पूर्वउक्तसैं संबंध है ॥ हे शिष्य! केवल देह इंद्रियादिरूप अध्यात्म उपाधिसैं परिच्छिन्न या ब्रह्मका रूप तूं अल्प जानता हैं, ऐसैं नहीं; किंतु जो अधिदैवत उपाधिसैं बी परिच्छिन्न या ब्रह्म-का रूप देवनविषै तूं जानताहैं, सो बी निश्चयकरि अल्पहीं जानता हैं, ऐसैं मैं मानता हूं। इहां जो हृदयाकाशादि अध्यात्म-रूप ब्रह्म हैं, सो बी 'उपाधिकरि परिच्छिन्न होनेतैं औ अल्प हो-नेतैं निवर्त्त होवैहै। जो सर्व उपाधिभेदसैं रहित शांत अनंत एक अद्वैत भूमा नामक नित्य ब्रह्म है, सो सम्यक् जानने योग्य नहीं ( स्वयंप्रकाशरूप होनेतैं बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञानका विषय नहीं ) यह अभिप्राय है। जातैं ऐसैं है, तातैं मैं मानताहूं कि:—अब बी ते-रेकूं ब्रह्म विचारनें योग्य है। ऐसैं जब आचार्यनैं कहा, तब शिष्य एकांतविषै बैठ्या हुया आचार्यनैं जैसैं श्रुतिवाक्यका उप-देश किया ताकूं अर्थतैं विचारिके औ [३७]तर्कतैं निर्धारिके अपना अ-

---

धर्मका भागी होनेतैं सूर्यका जल उपाधि कहिये है, संबंधतैं नहीं; दूर स्थित दोनूं वस्तुनके संयोगादिकके असंभवतैं। तैसैं देहादिकके वृद्धि सं-कोच छेदन आदिकविषै औ दाहादिकविषै औ नाशविषै चैतन्यकूं मिथ्या देहधर्मका भागी होनेतैं, ताका देहादिक उपाधि कहिये है।

३६ जब ब्रह्म, स्वरूपसैं चैतन्यपनैकरि निरूपण नहीं करिये है, तब ताका अनुभव कैसैं होवैहै? या आशंकाके निवारण अर्थ कहैहैं:—आप अविषय होनेकरि हीं अन्य विषयके संबंधतैं रहित चेतनका जो स्फुरण, सो ब्रह्मका अनुभव है। यह या प्रसंगका अर्थ है।

३७ ब्रह्मकूं वेद्यता ( ज्ञानकी विषयता )के हुये, घटादिककी न्यांई अनात्मपनै आदिककी प्राप्ति होवैगी। इत्यादि तर्कतैं आत्माका वेद्य ब्रह्म नहीं है, ऐसैं निर्द्धारिके, अज्ञान औ संशय आदिकके अभावतैं अपना अनुभव करिके आचार्यके वचनतैं अन्यहीं वचन शिष्य कहता भया।

**नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।**
**यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥ २**

---

नुभव करिके आचार्यके पास जायके कहता भया. शिष्य
वाचः–अब मैं ब्रह्म जान्या, ऐसैं मानता हूं ॥ १ ॥

**टीका**:–गुरुरुवाचः–कैसैं तैनैं ब्रह्मकूं जान्या ? शिष्य उवा
हे गुरो ! आप श्रवण करोः–"मैं सम्यक् जानता हूं," ऐसैं ब्र
ज्ञानका विषय नहीं मानता हूं ॥ गुरुरुवाच ॥ हे शिष्य ! तैं
ब्रह्म जान्या नहीं। ऐसैं जब गुरुनैं कहा, तब शिष्य कहैहै:–शि
उवाचः–मैं नहीं जानता हूं, ऐसैं हमारे संप्रदायके बोध करं
रीतिसैं जानता हूं औ (जाननेवालेपना नहीं है)। गुरुरुवा
हे शिष्य! "मैं सम्यक् जानता हूं, ऐसैं नहीं मानता हूं औ नहीं
नताहूं, ऐसैं हमारे संप्रदायकी रीतिसैं जानताहूं औ (जाननेवाले
नहीं है)" ऐसैं जो तैनैं निषेध किया, सो बनै नहीं। काहेतैं
सम्यक् जानता हूं ऐसैं तूं मानता नहीं, तब "मैं जानता हूं"
कैसैं मानता हैं ? औ जब जानताहीं हूं, ऐसैं मानता हैं, तब मैं
नहीं जानता हूं यह कैसैं मानता है ? एकहीं वस्तु, जिसकरि
नियें है, तिसीहीं करि सोई वस्तु सम्यक् नहीं जानिये है, ऐ
निषेध किया; सो निषेध, संशय औ विपर्ययकूं छोडिके (
देके) किया है। जातैं संशय औ विपर्यय सर्व ठिकानैं अ
करनेहारे होनेकरिहीं प्रसिद्ध है, यातैं ब्रह्म जो है सो संशय
तपनैंकरि वा विपरीतपनैंकरि जाननेयोग्य है, ऐसैं नियम क
शक्य नहीं। ऐसैं आचार्यनैं शिष्यकूं डिगाया, तौबी सो
नहीं औ "सो ब्रह्म विदिततैं अन्यहीं है औ अविदिततैं बी अ
ऐसैं आचार्यनैं उपदेश किये श्रुतिसंप्रदायके बलतैं औ युक्ति
अनुभवके बलतैं अपनी ब्रह्मविद्याविषै दृढनिश्चयवान्ताकूं दि

**यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।**
**अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥**

---

हुया शिष्य गर्जता भया ॥ ॥ कैसैं गर्जता भया ? यह कहियेहैः–शिष्य उवाचः–हे गुरो ! हम ब्रह्मचारीनकरि सहित आश्रमवाले हैं, तिन-के मध्य जो कोई ता मेरे कहे वचन-कूं यथार्थ जानताहै सो ता ब्रह्म-कूं जानताहै ॥ ॥ फेर सो वचन क्या है ? तहां शिष्य कहैहैः–“ मैं नहीं जानता हूं, ऐसैं हमारे संप्रदायकी रीतिसैं जानता हूं [३८]औ (जाननैवालेपना नहीं है)” ऐसा यह वचन है । इहां “ सो ब्रह्म विदिततैं अन्यहीं है औ अविदिततैं बी अन्य है ” ऐसैं कहा जो वस्तु, सोई अनुमान औ अनुभवसैं योजना करिके निश्चय किया; ताकूं “ मैं नहीं जानता हूं, ऐसैं हमारे संप्रदायकी रीतिसैं जानताहूं औ जाननेवालेपना नहींहै ” या अन्य वाक्यसैं जो शिष्य कहता भया; सो आचार्यकी बुद्धिके संवाद (तुल्यपनै) अर्थ है औ मंदबुद्धिवाले पुरुषनसैं ग्रहणके निषेध अर्थ है । तैसैं हुये ( अन्य अर्थके कथन किये हुये ) “हमारे मध्य जो ता वचनकूं जानता है, सो ता ब्रह्मकूं जानता है ” यह शिष्यकी गर्जना घटित भई ॥ २ ॥

**टीकाः**–अब श्रुति, गुरुशिष्यके संवादतैं निवर्त्त होयके अपने रूपसैं सर्व संवादसैं रहित अर्थकूंहीं बोधन करैहैः–जा ब्रह्मवेत्ता-का ब्रह्म अमत ( अज्ञात ) है, ऐसा निश्चय है, ताकूं ब्रह्म मत ( सम्यक् ज्ञात ) है; यह अभिप्राय है । औ जाका फेर मत ( मैंनैं ब्रह्म जान्याहै ऐसा निश्चय )है सो ब्रह्मकूं नहीं जानताहै ॥ इहां विद्वान् औ अविद्वान्, इन दोनूंके कथन किये जे दो पक्ष, तिन-

---

३८ मूलश्रुतिविषै च ( औ ) शब्द है, ताका जाननैवालेपना नहीं है, यह अर्थ है ।

**प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते । आत्मना विन्दते वीर्य्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्**

---

कूं अब निर्धार करैहैं:-सम्यक् जाननैंवाले पुरुषनकूं ब्रह्म
ज्ञात है औ इंद्रिय मन औ बुद्धिविषैहीं आत्मदर्शी जे असम्
क् जाननेवाले हैं, तिन-कूं यह ब्रह्म ज्ञात है । औ अलं
समजरहित बुद्धिवाले पुरुषनकूं ज्ञात नहीं । काहेतैं तिनकूं ह
ब्रह्म जान्या, ऐसी बुद्धि जातैं नहीं होवैहै, यातैं तिनकूं तौ
ज्ञात नहीं । किंतु श्रेष्ठ इंद्रिय मन औ बुद्धिरूप उपाधिनं
आत्मदर्शी पुरुषनकूं तो, ब्रह्मके उपाधिसैं विवेककी अप्रती
औ बुद्धि आदिक उपाधिके ज्ञात होनेतैं तिनकूं ब्रह्म हमनैं
न्या है, ऐसी भ्रांति वनै है । यातैं असम्यक् दर्शनरूप द्वितीय
प्रथम पक्षपनैकरि "न जाननेवालेकूं ब्रह्म ज्ञात है" ऐसैं
रार्द्धविषै कहा है । अथवा श्रुतिके उत्तरार्द्धविषै जो "न
नैंवालेकूं ज्ञात है" इत्यादि वाक्य है, सो पूर्वार्द्धके अर्थ
हेतुके[३९] अर्थ है ॥ ३ ॥

**टीका:**—उक्त ( ११ वीं ) श्रुतिविषै जाननेवालेकूं अज्ञात (
काश ) ब्रह्म है, यह निश्चय किया । अब इहां जब ब्रह्म
हीं अज्ञात है, तब लोकनका औ ब्रह्मविदनका अविशेष प्राप्त
या औ जाननेवालेकूं ब्रह्म अज्ञात है, यह कहना परस्पर

---

३९ लोकविषै सीपी आदिकके स्वरूपकूं जाननेवाले पुरुषनकूं अ
ध्यस्त रूप्य आदिक अज्ञात संभवैहै औ न जाननेवालेकूं तो अ
ज्ञान संभवैहै । यह प्रसिद्ध है । तैसैं ब्रह्मविषै ज्ञेयता ( ज्ञानकी विष
रूप धर्मकूं अध्यस्त होनेतैंहीं तत्त्ववेत्ता जे हैं, वे ब्रह्मकूं ज्ञात नहीं
तेहैं, किंतु स्वप्रकाश होनेतैं अज्ञात ( ज्ञानका अविषय ) देखतैहैं
पूर्वार्द्धके अर्थविषै हेतुके दिखावनेअर्थ यह उत्तरार्द्ध है । यह अभिप्रा

है, यातैं सो ब्रह्म सम्यक् ज्ञात कैसैं होवै ? या प्रकारके अर्थकूं कहैहैः– अनेक जे बुद्धिकी वृत्तियां हैं, वे बोधशब्दसैं कहियेहैं। तिन बोधं बोधके प्रति जो जान्या जावै, सो **प्रतिबोधविदित** कहियेहै। सर्व बोध, जाके विषय होवैहैं, ऐसा जो आत्मा, सो सर्व बोधनके प्रति जानियेहै औ सर्व बोधनका जाननेहारा केवल चेतनशक्ति स्वरूप है। ता बोधरूप बुद्धिवृत्तिनविषै न्यारा होनेकरि लक्षणासैं जानियेहै, अन्यसाधनसैं नहीं । यातैं अंतरात्माके विज्ञानअर्थ, बुद्धिवृत्तिनका अंतरात्मा होनैंकरि जब ब्रह्म **मत** ( जान्या )हैः तब सो सम्यक् ज्ञान है औ ब्रह्मका, जो सर्व वृत्तिनका जाननेवालेपना है, ताके सिद्ध भये जन्ममरणरहित द्रष्टारूपता नित्यता शुद्धरूपता भेदरहितता औ सर्वभूतनविषै एकता सिद्ध होवैहै; काहेतैं, घट औ पर्वतकी गुहा आदिकनविषै आकाशकी न्यांई लक्षणके भेदके अभावतैं ॥ ईसरीतिसैं "**विदित औ**

---

४० अब नील पीत आदिक आकारवाले जड वस्तुनकी जा चैतन्यसैं अध्यास होनेकरि चेतनकी न्यांई प्रतीति होवैहै, ता साक्षीकूं जानिके, "सोई आत्मा मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं महावाक्यतैं अविषयपनै करिहीं जो जानता है, सो ब्रह्मवित् कहियेहै। तातैं लोकनके औ ब्रह्मविदनके अविशेष (तुल्यपनै)की प्रासिकी शंकाका अवकाश नहीं है, ऐसैं कहैहैं।

४१ अब जा चेतनस्वरूपसैं मैं या देहविषै साक्षी हूं, ता चेतनस्वरूपकूं सर्वत्र समान होनेतैं एकहीं देहविषै मैं साक्षी नहीं हूं, किंतु सर्व देहनविषै साक्षी हूं औ देह आदिकके भेद अरु उत्पत्ति आदिक जे धर्म हैं; वे साक्षीगत नहीं, किंतु देहादिगत हैं । यातैं साक्षीके एकता औ नित्यता आदिक विशेषण बी सिद्ध होवैहैं ऐसैं कहैहैं।

४२ ज्ञातपना औ अज्ञातपना जे हैं, वे साक्षीगत नहीं; किंतु कार्यकारणरूप वस्तुगत हैं। यातैं प्रतिबोधविदित शब्दके उक्तअर्थरूप याविषै साक्षीका ज्ञात औ अज्ञात वस्तुतैं भिन्नपना संभवैहै। ऐसैं इहां कहैहैं।

अविदित वस्तुतैं न्यारा ब्रह्म है," यह या श्रुतिवाक्यका
है, ऐसैं शुद्धहीं आत्मा समाप्त किया है । इहां "आत्मा, दृष्टि
द्रष्टा है, औ श्रुति (श्रोत्र)का श्रोता है, औ मति (मन
मंता (मननकर्त्ता)है औ विज्ञाति (बुद्धि)का विज्ञाता है"
अन्य श्रुतिका प्रमाण है ॥ [43]जब फेर बोधरूप क्रियाका कर्त्ता
आत्मा है, सो बोधक्रियारूप लक्षणसैं ता बोधक्रियाके कर्त्ता
जानता है । यातैं बोधरूप लक्षणसैं जान्या जो ब्रह्म, सो प्रति
विदित है । जैसैं जो वृक्षकी शाखाकूं चलावता है, सो वायु
ताकी न्यांई । इस प्रकारसैं प्रतिबोधविदितपदका व्याख्यान
रिये ॥ तब बोधक्रियारूप शक्तिवाला आत्मा द्रव्यरूप है,
धस्वरूपहीं नहीं । बोध तो उपजता है औ नाश होता है।
आत्माविषै बोध उपजे तब बोधक्रियाके साथि मिलिके अन्य
वस्तुतैं विशेष होवैहै, औ जब बोध नाश होवै, तब बोधरहित
वल द्रव्यरूप औ अन्य जड वस्तुनतैं भेदरहित आत्मा होवै
तहां ऐसैं हुये विकाररूप सावयव अनित्य औ अशुद्ध आत्मा
इत्यादिक दोष निवारण करनेकूं अशक्य होवैंगे ॥ यद्यपि वैशे
नके मतविषै आत्माके संयोगसैं जन्य बोध, आत्माविषै स
संबंधकूं पावताहै, यातैं आत्माविषै बोधका कर्त्तापना है
काररूप आत्मा नहीं । किंतु, नील पीत आदिक रंगरूप
समवाय संबंधवाले घटकी न्यांई केवल द्रव्यरूप आत्मा है,
क्षविषै बी अचेतन केवल द्रव्यरूप ब्रह्म है, ऐसैं सिद्ध हो
यातैं "विज्ञान आनंदरूप है" औ "प्रज्ञान ब्रह्म है" इत्यादि
तियां बाधकूं प्राप्त होवैगी औ आत्माकूं निरवयव होनेकरि
वरूप प्रदेशके अभावतैं, अरु मनके साथि नित्य संयोगवाला

४३ इहांसैं एकदेशीके व्याख्यानकूं अनुवाद करिके दूषण देते

स्मृतिकी उत्पत्तिके नियमका भंग निवारण करनेकूं अशक्य होवैगा; औ आत्माकूं संबंधरूप धर्मवालेपना श्रुति स्मृति अरु युक्तितैं विरुद्ध कल्पित होवैगा । इहां "असंग जो है सो संगवान् होवै नहीं" औ "संगरहित है अरु सर्वका धारनेवाला है" ये दो श्रुति औ स्मृति प्रमाण हैं । यामैं युक्ति वी हैः—गुणवाला जो वस्तु है, सो गुणवालेके साथि संबंधकूं पावता है, अपने असमान जातिवालेसैं नहीं । यातैं निर्गुण भेदरहित सर्वतैं विलक्षण जो ब्रह्म है, सो किसीवी अपने असमान जातिवालेके साथि संबंधकूं पावता है, यह कथन युक्तिसैं विरुद्ध होवैहै । तातैं नित्य अविनाशी ज्ञानस्वरूप प्रकाशरूप आत्मा ब्रह्म है; यह प्रतिबोधविदित शब्दका अर्थ, आत्माकूं सर्व बोधनका जाननेंवाला हुये सिद्ध होवैहै, और प्रकारसैं नहीं । तातैं "प्रतिबोधविदित मत" या वाक्यका अर्थ, हमनैं यथार्थहीं व्याख्यान किया है ॥ ॥ जो फेरि प्रतिबोधविदित या वाक्यका अर्थ स्वसंवेद्यपना वर्णन करिये है? सो बनै नहींः—काहेतैं, तैसैं हुये आत्माकूं उपाधिसहितपना होवैगा । जातैं जो जानने योग्य वस्तु है, सो जाननेवालेतैं औ ज्ञानतैं घटादिककी न्यांई भिन्न है, या व्याप्तिके विरोधतैं निरुपाधिक आत्माकूं तो वास्तव स्वसंवेद्यता बनै नहीं; किंतु बुद्धि उपाधियुक्त स्वरूपसैं आत्माके भेदकूं क-

४४ वैशेषिकके मतविषै ग्रहणकालतैं अन्यकालविषैहीं क्रमसे स्मृतिज्ञानोंकी उत्पत्ति होवैहै, यह नियम है । सो बनै नहीं । काहेतैं, संस्कारकी न्यांई आत्मा औ मनके संयोगकूं दोनूं कालविषै समान होनेकरि ग्रहण (अनुभव) कालविषै वी स्मृतिकी उत्पत्तिके प्रसंगतैं, यह अर्थ है ।

४५ आत्माका जो सर्वगतपना है, सो सर्व वस्तुनसैं अंतरायरहिततामात्र है । ताकूं वैशेषिकमतवाले सर्व वस्तुनसैं संयोगीपना कल्पते हैं, सो असंगत है । या अभिप्रायसैं इहां कहेहैं ।

४६ इहांसैं एकदेशीके अन्य प्रकारके व्याख्यानकूं अनुवाद करिके दूषण देते हैं ।

लिपके आत्मा आत्माकूं जानता है; ऐसैं मानिके, आत्मा आत्माकूं देखता है । औ "हे पुरुषोत्तम ! तूं आपहीं आप आपकूं जानता है" इत्यादि व्यवहार होवैहै । यातैं निरुपाधि आत्माकी एकताके हुये ताकूं स्वसंवेद्यता संभवै नहीं । जैसैं प्रकाशकूं अन्य प्रकाशकी अपेक्षाका असंभव है, तैसैं स्वसंवेद्यपनैके अनंगीकारके बलतैं परसंवेद्य माननेवाले वैशेषिककी न्यांई आत्मा संवेदन (ज्ञान)स्वरूप होनेतैं अन्य संवेदनकी अपेक्षा संभवै नहीं। बौद्धंके पक्षविषै स्वसंवेद्यताके माने हुये तो, विज्ञानकूं क्षणभंगुरता औ निरात्मता (शून्यता) होवैहै । तैसैं अंगीकार किये "विज्ञाताके विज्ञानका विनाश नहीं होवैहै, अविनाशी होनेतैं" औ "नित्य विभु अरु सर्वगत है" औ "सो यह आत्मा महान् अजन्मा अजर अमर अमृत अभय है" इत्यादि श्रुतियां बाधकूं पावैगी ॥ जो फेर केईक आचार्य्य; जैसैं सोये हुये पुरुषके सुखसिके आनंदका निमित्तसैं रहित बोध होवैहै, तैसैं निर्विकल्प समाधिरूप जो निमित्तसैं रहित परमानंदका बोध है, सो प्रतिबोधशब्दसैं कल्पते हैं ॥ अन्य आचार्य तो अक्रिय ब्रह्म औ आत्माके अनुभवके भये, जीव भावके असंभव हुये पीछे ज्ञानके असंभवतैं, तत्काल मुक्तिका कारण जो एकवार विज्ञान भया, ताकूं प्रतिबोध कहते हैं । इन दोनूं पक्षनविषै बी अरुचिकूं कहै हैंः—जो निमित्तसैं रहित बोध कहा सो निमित्तसहितहीं

---

४७ क्षणिकविज्ञानवादीके मतविषै; आपविषै आपहीं विज्ञान जब प्रत्यक्ष है, तब वर्त्तमान क्षणमात्र ताका सद्भाव होवैगा । यातैं ज्ञानकी क्षणभंगुरता भई औ ज्ञानकूं स्वसंवेद्य होनेकरि ताके साक्षीके अनंगीकारतैं निरात्मता बी सिद्ध भई ।

४८ इहां यह आशय है:—अविद्याका निवर्त्तक जो आगंतुक (उत्पत्ति-नाशवान्) निर्विकल्पसमाधिरूप बोध है, ताकूं निमित्तसैं रहितपना

औ जो एकवार विज्ञान भया है सो अनेकवार बी होवैहै । यातैं इन दोनूं पक्षनविषै अनादर है । सर्व प्रकारसैं बोध बोधके प्रतिसाक्षी होनेकरि भासमान जो परमात्मा है, सोई प्रतिबोध है । जातैं उक्त प्रतिबोध विदितरूप प्रतिबोधतैं मरणभावरहित स्वस्व-

---

नहीं । काहेतैं, कार्यकूं निमित्त (कारण)की प्राप्तिसहित होनेतैं औ या प्रथमपक्षविषै दृष्टांतरूप जो सुषुप्तिके आनंदका बोध है ताकूं बी निमित्तसैं रहितपना बनै नहीं । काहेतैं, अविद्याके पूर्वपूर्व निरोधकी अवस्थाके संस्कारतैं उद्भूत, तैसी वृत्तिरूप निमित्तसैं स्पष्ट भये चेतनकूं सुषुप्तिविषै सुखके साक्षात्कारकी प्राप्ति होवैहै । याहीतैं ता वृत्तिविशिष्ट चेतनके विनाश हुये सुषुप्तिविषै अनुभव किये आनंदका स्मरण होवैहै । यातैं ताकूं निमित्तसैं रहितपना नहीं है । औ निर्विकल्पसमाधिरूप बोधविषै, या सुषुप्तिके सुखके बोधके दृष्टांतके बलसैं या पक्षकी सिद्धि बनै नहीं । काहेतैं या पक्षविषै बी जब आवरणसंस्कारके समूहतैं निवृत्त भये चित्तविषै बी ब्रह्मका आविर्भाव होवैहै; ऐसैं कहैं तो ब्रह्मके आविर्भावतैं पूर्व विषयरहित औ महावाक्यसैं अजन्य ता अपरोक्षज्ञानकूं अप्रमारूप होनैंकरि, नाश भये पुत्रके [मनोगत] अपरोक्षज्ञानतैं जैसैं अविद्याकी निवृत्ति नहीं होवैहै; तैसैं ता ज्ञानतैं अविद्याकी निवृत्ति नहीं होवैगी । यातैं निर्विकल्प समाधिरूप ब्रह्मका बोध निमित्तरहित नहीं; किंतु निमित्तसहितहीं है । सो प्रतिबोधशब्दका अर्थ बनै नहीं ।

४९ इहां यह आशय है:—सकृद्बोध (एकवार बोध) जो है, सो बी निमित्तसैं रहित बनै नहीं । काहेतैं, ताकूं महावाक्यरूप शब्दसैं अजन्य माने हुये, अप्रमापना होवैगा । यातैं महावाक्यसैं जन्यहीं कहा चाहिये । तैसैं हुये शब्दरूप कारणवाला होनेतैं प्रमारूप हुये बी, ताकूं परतंत्रताकी प्राप्ति भई । तातैं सो निमित्तरहित नहीं; किंतु निमित्तसहितहीं है । औ प्रवृत्त भये कर्म फलरूप प्रतिबंधतैं वर्त्तमान प्रमाता (प्रमाज्ञानके आश्रय जीव) पनैके आभासकी अनिवृत्तितैं, प्रारब्धके क्षयपर्यंत अविद्याकी निवृत्तिरूप प्रयोजनविना बी यह बोध वारंवार उदय होवैहै । यातैं यह सकृत्बोध (एकवार भया बोध) बी असकृत्बोध (वारंवार बोध)रूप है । सो प्रतिबोध शब्दका अर्थ बनै नहीं ।

**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदी-न्महती विनष्टिः । भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ ५ ॥**

**इति केनोपनिषदि द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥ २ ॥**

रूपविषै स्थितिरूप **मोक्षकूं पावता है,** तातैं प्रतिबोधविदि-
ब्रह्म जान्या है, यह अभिप्राय है। इहां जातैं बोधका प्रत्यगात्म-
रूप आपका विषय मान्या है, सो मरणभावरहित मोक्षविषै हेतु
यातैं ब्रह्मकूं अनात्मा होनेतैं आत्माका अमरभाव निमित्तरहित
नहीं, किंतु ब्रह्म औ आत्मरूप होनेरूप निमित्तसहितहीं है ॥
ननु, जब ऐसैं आत्माकूं अविद्यासैं अनात्मभावकी प्राप्तिरूप म-
णभाव है, तब फेर उक्त आत्मा विद्यासैं अमरभावकूं कैसैं
वता है? तहां कहैहैंः—**स्वस्वरूपसैं वीर्य्य ( सामर्थ्य )कूं** पाव-
है। धन सहाय मंत्र औषधि तप औ योगका किया जो
मर्थ्य ( बल ) है, सो मृत्युके पराभव करनेकूं समर्थ नहीं
काहेतैं, अनित्यवस्तुका किया होनेतैं औ आत्मविद्याके
सामर्थ्यकूं जातैं स्वस्वरूपसैंहीं पावताहै, अन्य साधनसैं नहीं
यातैं आत्मविद्याके सामर्थ्यकूं अन्यसाधनसैं रहित होनेतैं,
सामर्थ्य मृत्युका पराभव करनेकूं समर्थ है, जातैं या रीतिसैं
त्मविद्याके किये सामर्थ्यकूं स्वस्वरूपसैंहीं पावताहै, यातैं
त्माकी **विद्यासैं अमृत** ( अमरभावरूप मोक्ष )**कूं पावता**
" यह आत्मा बल ( सामर्थ्य )हीन पुरुषसैं पावने योग्य नहीं
ऐसैं अथर्वणवेदकी मुंडकउपनिषद्विषै कहा है। यातैं
भावकूं पावता है। यह हेतु समर्थ है ॥ ४ ॥

**टीकाः**—जातैं बहुत संसारके दुःखकरि युक्त देव मनुष्य पशु पक्षी
प्रेत आदिक प्राणियोंके समूहनविषै जन्म जरा मरण औ

## अथ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

**ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त । त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १ ॥**

---

आदिककी प्राप्ति अज्ञानतैं होवैहै, सो प्रसिद्ध कष्टरूप है; यातैं याही जन्मविषै अधिकारी मनुष्य समर्थ हुया जब उक्तलक्षणवाले आत्माकूं उक्त प्रकारसैं जानता है, तब या मनुष्यजन्मविषै अविनाश वा अर्थवानूता वा सद्भाव वा परमार्थतारूप सत्य विद्यमान है, औ या जन्मविषै जीवता हुया अधिकारी होयके जब आत्माकूं नहीं जानता है, तब जन्म जरा औ मरण आदिक बंधनके न छेदने स्वरूप संसारकी गतिरूप बडी लंबी अनंत हानि होवैहै । तातैं ऐसैं गुणदोषकूं जाननेवाले जे धीर (बुद्धिमान्) पुरुष हैं, वे भूतभूतविषै (स्थावरजंगमरूप सर्व भूतनविषै) ब्रह्मके एक आत्मतत्त्वकूं चिंतन करिके (जानिके), अहं ममभावमय अविद्यारूप या लोकतैं उपराम होयके, सर्वके आत्माकी एकताभावरूप अद्वैतकूं प्राप्त हुये अमृत (मरणरहित) होवैहैं, यंह अर्थ है । "जो प्रसिद्ध या परमब्रह्मकूं जानता है सो ब्रह्महीं होवैहै" या श्रुतितैं ॥ ५ ॥

**इति श्रीतलवकारोपनिषद्गतद्वितीयखंडभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ २ ॥**

---

**अथ तलवकारोपनिषद्गततृतीयखंडभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ३ ॥**

**टीकाः**—"ब्रह्म, निश्चयकरि देवनके तांई विजय देता भया" इहांसैं लेके तृतीयखंडका आरंभ है; ताका प्रयोजन दिखावै हैं:— "सम्यक् जाननेवालेकूं अज्ञात है औ न जाननेवालेकूं ज्ञात है"

इत्यादि वाक्यके श्रवणतैं जो वस्तु विद्यमान है, सो प्रत्यक्षा प्रमाणोंसैं ज्ञात होवैहै । जो वस्तु नहीं है, सो अज्ञात अरु शश गकी न्यांई अत्यंतहीं असत् देख्या है । तैसैं यह ब्रह्म अज्ञ होनेतैं असत्हीं होवैगा । ऐसा विपरीतज्ञान मंदबुद्धिवाले पु षनकूं होवै नहीं; या प्रयोजनके अर्थ यह आख्यायिका आ करिये हैः—सोई ब्रह्म जातैं सर्वप्रकारसैं सर्वकूं दंड देनेवाला अरु देवनका बी परमदेव है, अरु ब्रह्मादिक ईश्वरनका बी ई है, अरु श्रवणादिरूप दुःखसैं जानने योग्य है, अरु देवनके यका हेतु है, अरु असुरनके पराजयका हेतु है, "सो नहीं है" कथन कैसैं बनै ! सर्वथा बनै नहीं ॥ उक्त प्रकारका ब्रह्म है अर्थके अनुकूल आगे कहनेके श्रुतिवचन देखिये हैं; यातें ब्रह्म असत् बनै नहीं ॥ अथवा अग्निआदिक जे देव हैं, वे ब्र ज्ञानतैं अन्य देवनके मध्य श्रेष्ठताकूं कैसैं प्राप्त भये ? औ इंद्र है सो तिनतैं बी अतिशय श्रेष्ठताकूं कैसैं प्राप्त भया ? या रीति ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ, यह आख्यायिका कहिये है ॥ अथवा कारणसैं अतितेजस्वी ऐसै अग्नि आदिक देव बी ब्रह्मकूं क्ले रिहीं जानते भये, तैसैं इंद्र जो है सो देवनका ईश्वर हुया बी ह्मकूं क्लेशकरिहीं जानता भया; या कारणसैं ब्रह्म दुःखसैं जा योग्य है, या अर्थके दिखावने वास्ते यह आख्यायिका क है ॥ अथवा इहां पूर्व उत्तम अधिकारीके अर्थ मन आदि अविषय ब्रह्म आत्माका ज्ञान कहा । अब आगे सगुणब्रह्मकी पासना कहिये है । जातैं आगे कहियेगा जो वाक्यका समूह आगे कहनेकी उपनिषद् ( उपासना )की विधिके पैंरायण है

५० या तृतीयखंडगत सर्व वाक्यनके समूहका स्पष्ट या उपास विधिके देखनेतैं, सगुणब्रह्मकी उपासनाविषैहीं तात्पर्य है, अन्य अ नहीं । अन्य अर्थनविषै जो तात्पर्य दिखाया है, सो संभावनामात्रतैं ऐसैं जानना ।

**तद्धैषां विजज्ञौ। तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव। तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥ २ ॥**

यह अर्थ बने है ॥ अथवा ब्रह्मविद्यासैं विना जो प्राणिनकूं कर्त्तापनैं आदिकका अभिमान है, जैसैं देवनकूं जय आदिकका अभिमान है; तैसैं, सो मिथ्या है। या अर्थके दिखावनेवास्ते यह आख्यायिका कहिये है:—उक्त लक्षणवाला **परब्रह्म देवनके तांई जय देता भया,** कहिये देवनके औ असुरनके संग्रामविषै जगत्के शत्रु औ ईश्वरकृत वर्णआश्रम आदिककी मर्यादाके भेदक असुरनकूं जीतिके, जगत्की स्थिति अर्थ मायाशक्तिके माहात्म्यसैं देवनके तांई जय औ ताका फल देता भया। **ता ब्रह्मके विजयके भये अग्नि आदिक देव, महिमाकूं पावते भये।** तब सर्वज्ञ औ प्राणिनकूं सर्व क्रियाके फलसैं जोडनेवाले औ सर्वशक्तिमान्, औ जगत्की स्थितिके करनेकी इच्छावाले, औ अपनेविषै स्थित अंतर आत्मारूप ईश्वरका यह जय औ महिमा है; ऐसैं न जाननेवाले **वे देव बुद्धिवृत्तिरूप दृष्टिसैं देखते भये,** । क्या देखते भये? तहां कहैहैं:—**हमारा** अग्नि आदिकरूप परिच्छिन्न आत्माका किया हीं **यह विजय है, औ हमाराहीं यह** विजयका फलरूप अग्नि वायु अरु इंद्रभाव आदिस्वरूप **महिमा है, सो हमोंकरिहीं** अनुभव करिये है। हमारे अंतर आत्मारूप ईश्वरका किया नहीं है; ऐसैं देखते भये ॥ १ ॥

**टीका:**—या रीतिसैं मिथ्या अभिमानकरि देखनेवाले **तिन देवनके तिस** मिथ्या देखने-कूं ब्रह्म **निश्चयकरि जानता भया** औ सर्वका देखनेवाला सो ब्रह्म, सर्व भूतनके इंद्रियनका प्रेरक होनेतैं, देवनके प्रतीयमान मिथ्या ज्ञानकूं जानिके, ये देव असुरनकी न्यांई मिथ्या अभिमानतैं पराभवकूं पावैंगे। तातैं कृपाकरि मिथ्या अभिमानके नाशसैं देवनका उद्धार करूं; यह विचारिके **तिन देवनके तांई** प्रयोजन अर्थ अपने योगके महिमासैं रचित अति

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किं
तद्यक्षमिति । तथेति ॥ ३ ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति अग्निर्वा
हमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ ४

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदꣳ सर्व्वं
हेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ५ ॥

---

अद्भुत औ आश्चर्यकारक रूपसैं देवनके इंद्रियके आगे प्र
होता भया। ता प्रकट भये ब्रह्म-कूं, देव, "यह यक्ष (पू
योग्य बडा अति उत्तमरूप वस्तु) क्या है" ऐसैं नहीं
नते भये ॥ २ ॥

टीकाः—ताकूं न जाननेवाले वे देव अंतरविषै भयसहित
ताके जाननेकी इच्छावाले हुए, जातवेदा या नामवाले अपने
गामी सर्वज्ञ अग्निकूं कहते भयेः—हे जातवेद। तूं जातैं
मारे मध्य तेजस्वी हैं तातैं अपने इंद्रियके आगे स्थित भये
यक्ष-कूं यह यक्ष क्या है, ऐसैं विशेषकरि जान । तब अ
तथाऽस्तु, ऐसैं कहता भया ॥ ३ ॥

टीकाः—पीछे सो अग्नि, ता यक्ष-के पास जाता भया।
तहां गये औ पूछनेकी इच्छावाले औ शूरताके अभावतैं तूष्णी
ता अग्नि-कूं, सो यक्ष, तूं कौन है? ऐसैं पूंछता भया।
जब ब्रह्मनैं पूंच्छा, तब अग्नि, मैं अग्निनामवाला प्रसिद्ध हूं
जातवेदा हूं। ऐसैं दोनूं नामसैं प्रसिद्ध होनेकरि आपकी
करता हुया कहता भया ॥ ४ ॥

टीकाः—ऐसैं कहनेवाले अग्निकूं, ब्रह्म कहता भयाः—हे
ता ऐसैं प्रसिद्ध गुणवाले तुजविषै क्या सामर्थ्य है? तब
अग्नि कहता भयाः—हे यक्ष! पृथ्वीविषै [ औ अंतरिक्षविषै

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति । तदुपप्रेयाय सर्व्वजवेन। तन्न शशाक दग्धुं। स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ ६ ॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति। तथेति ॥ ७ ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ ८ ॥

---

जो यह स्थावरादिरूप जगत् है, या सर्वकूं बी मैं भस्म करूं, ऐसा मुजविषै सामर्थ्य है ॥ ५ ॥

टीकाः—ता ऐसे अभिमानवाले अग्नि-के आगे, ब्रह्म, तृणकूं रखता भया औ कहता भया कि, हे अग्ने ! या तृणमात्र-कूं मेरे आगे जलाव। अरु तूं जब या तृणके जलावनेकूं समर्थ नहीं होवै, तब सर्व ठिकाने मैं जलावनेवाला हूं, ऐसे अभिमानकूं छोड। ऐसैं जब ब्रह्मनैं कहा, तब सो अग्नि ता तृण-के समीप सर्व उत्साहके किये सर्व वेगसैं जायके ताके जलावनेकूं समर्थ न भया ! । पीछे सो अग्नि, तृणके जलावनेकूं अशक्त होनेतैं लज्जावान् औ हतप्रतिज्ञावाला हुया, ता यक्ष-तैंहीं तूष्णी होयके पीछे देवनके पास जाता भया औ तहां कहता भया किः—हे देव ! जो यह यक्ष है याकूं मैं विशेषकरि जाननेकूं असमर्थ हूं ॥ ६ ॥

टीकाः—पीछे वे देव वायुकूं कहते भयेः—हे वायो ! अपने इंद्रियके आगे स्थित भये या यक्ष-कूं यह यक्ष क्या है, ऐसैं विशेषकरि जान। तब सो वायु तथाऽस्तु ऐसैं कहता भया ॥ ७ ॥

टीकाः—पीछे सो वायु ता यक्ष-के पास जाता भया ॥ तब तहां गये औ पूंछनेकी इच्छावाले औ शूरताके अभावतैं तूष्णीं भये ता वायु-कूं, सो यक्ष। तूं कौंन हैं ? ऐसैं पूंछता भया ॥ ऐसैं जब ब्रह्म-

**तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीद२ सर्व्वमा-दंदीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ९ ॥**

**तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति । तदुपप्रेयाय स-र्व्वजवेन । तन्न शशाकादातुं।स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १० ॥**

**अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमि-ति। तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे॥ ११ ॥**

---

नैं पूंछा तब वायु कहता भयाः—मैं गमनतैं औ गंधवान् हो नेतैं वायु नामवाला हूं औ मातरि नाम आकाशविषै चलता हूं यातैं मातरिश्वा हूं ॥ ८ ॥

टीकाः—ऐसैं कहनेवाले वायुकूं, ब्रह्म कहता भयाः—हे वायो! ता ऐसैं प्रसिद्ध गुणवाले तुजविषै क्या सामर्थ्य है? तब सो वायु कह ता भयाः—हे यक्ष, पृथ्वीविषै जो यह स्थावरादिरूप जगत् है या सर्वकूं बी मैं ग्रहण करुं(धरुं) ऐसा मुजविषै सामर्थ्य है ॥ ९ ॥

टीकाः—ता ऐसैं अभिमानवाले वायु-के आगे, ब्रह्म, तृणकूं र खता भया औ कहता भया किः—हे वायो! या तृणमात्र-कूं मेरे आगे ग्रहण कर। अरु तूं जब या तृणके ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं होवै, तब सर्व ठिकाने मैं ग्रहण करनेवाला हूं, ऐसे अभिमानकूं छोड। ऐसै जब ब्रह्मनैं कहा तब सो वायु ता तृण-के समीप स उत्साहके किये सर्व वेगसैं जायके ग्रहण करनेकूं समर्थ न भया। पीछे सो वायु तृणके पकडनेकूं अशक्त होनेतैं लज्जावा औ हतप्रतिज्ञावाला हुया, ता यक्ष-तैंहीं तूष्णी होयके देवनके पा जाता भया औ तहां कहता भया किः—हे देव! जो यह य है, याकूं मैं विशेषकरि जाननेकूं असमर्थ हूं ॥ १० ॥

टीकाः—पीछे वे देव इंद्रकूं कहते भयेः—हे इन्द्र! अपने इंद्रिय

**स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं। ताᳬं होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥ १२ ॥**

इति श्रीकेनोपनिषदि तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥ ३ ॥

आगे स्थित भये या यक्षकूं; यह यक्ष क्या है, ऐसैं विशेषकरि जान। तब परमेश्वर ऐश्वर्यवान् इंद्र, बलवान्पनैतें तथास्तु, ऐसैं कहिके ता यक्ष-के पास गया। ता आपके समीप आये इंद्र-तैं सो ब्रह्म तिरोधानकूं प्राप्त भया। जातैं इंद्रका अभिमान अतिशय दूरी करनेकूं योग्य है, यातैं ब्रह्म इंद्रकेतांई संवादमात्र बी न देता भया, यह अभिप्राय है ॥ ११ ॥

सो यक्ष, जा आकाशके प्रदेशविषै आपकूं दिखायके तिरोधानकूं पाया औ सो इंद्र ब्रह्मके तिरोधानकालविषै जा आकाशविषै था, ताही आकाशविषै, सो यक्ष कौंन था, ऐसैं ध्यान करता हुया स्थित भया। अग्नि आदिककी न्यांई पीछे गया नहीं। ता इंद्रकी यक्षविषै भक्तिकूं जानिके उमारूपिणी स्त्रीरूप ब्रह्मविद्या प्रकट होती भई। सो उमा कैसी है? बहुशोभामान है कहिये सर्व शोभावानोंविषै अतिशय शोभावाली है औ हैमवती है, कहिये सुवर्णके किये आभरणवाली स्त्रीकी न्यांई बहुत शोभावाली है। अथवा, उमाहीं हिमवान् नाम पर्वतकी पुत्री है, यातैं हैमवती कहिये है। फेर सो नित्य हीं सर्वज्ञ ईश्वरके साथि वर्त्तती है, यातैं जाननेकूं समर्थ है,। यह जानिके सो इंद्र, ता उमारूप स्त्रीके पास गया औ उमा-कूं निश्चयकरि पूंछता भयाः—हे मातः! यह दर्शन देके तिरोधानकूं पाया जो यक्ष, सो कौंन था? यह कहो ॥ १२ ॥

इति श्रीतलवकारोपनिषद्गततृतीयखंडभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ३ ॥

## अथ चतुर्थखण्डः ॥ ४ ॥

**सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये मही-यध्वमिति । ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥**

**तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवा-यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येन-प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २ ॥**

अथ सामवेदीय तलवकारोपनिषद्गतचतुर्थखंड-भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

**टीकाः**—तब सो उमा ( पार्वती ), इंद्रके तांई वह यक्ष ब्र-था, ऐसैं निश्चय करि कहती भई।औ ब्रह्म जो ईश्वर है,तां-हीं विजयके भये तुम महिमाकूं प्राप्त भये हो । कहिये, ईश्व-नैंहीं असुरनकूं जीत्या है; तुम तहां निमित्तमात्र हो । यातैं ताहीं-विजय भये तुम महिमाकूं प्राप्त भये हो । औ जो मिथ्या अ-मान है, यह तो तुमाराहीं महिमा है; ऐसैं कहती भई ॥ तब इं-ता उमाके वाक्य-तैंहीं वह यक्ष ब्रह्म था, ऐसैं जानता भय-स्वतंत्र नहीं ॥ १ ॥

**टीकाः**—जातैं अग्नि वायु औ इंद्र ये तीन देव ब्रह्मके सं-औ दर्शन आदिकसैं समीप गये, तातैं शक्ति औ गुण आदि-वडे भाग्यनसैं अन्य देवनके तांई (मध्य) अतिशय करिहीं श्रे-होते भये । जातैं अग्नि वायु औ इंद्र ये तीन देव ता ब्रह्म-समीप जायके ब्रह्मके उक्त संवाद आदिक प्रकारनसैं स्पर्श क-भये औ वे देव प्रथम ( प्रधान ) हुये या ब्रह्म-कूं यह ब्रह्म-ऐसैं जानते भये । अग्नि औ वायु बी इंद्रके वाक्यसैंहीं जा-नते भये । औ इंद्रनैं उमाके वाक्यतैंहीं प्रथम यह ब्रह्म सुन्या-[तातैं वे अन्य देवनके मध्य श्रेष्ठ होते भये]॥ २ ॥

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ ३ ॥

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा ३ इ-तीति न्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ॥ ४ ॥

---

टीकाः—जातैं सो इंद्र या ब्रह्मकूं समीप जायके स्पर्श करता भया औ जातैं सो प्रथम (मुख्य) हुया, या, ब्रह्मकूं "यह ब्रह्म था" ऐसैं जानता भया; तातैं निश्चयकरि इंद्र अन्य देवनके ताईं अतिशयकरिहीं श्रेष्ठ होता भया ॥ ३ ॥

टीकाः—ता ब्रह्म-का यह आदेश ( उपमाका उपदेश ) है. उपमारहित ब्रह्मका जा उपमासैं उपदेश है, सो यह उपमा, आदेश ऐसैं कहियेहै ॥ सो ब्रह्मकी उपमा क्या है? तहां कहैहैं:—जो यह लोकविषै प्रसिद्ध बीजलीतैं प्रकाशकूं करता भया वा बीजलीके प्रकाशकूं करता भया। [51]अथवा, "जैसैं एक क्षणविषै बीजली प्रकाशती है [ तैसैं ब्रह्म प्रकाश करता भया ]" ऐसैं अन्य श्रुतिविषै देखनेतैं, बीजलीकीन्याईहीं ब्रह्म, देवनकेताईं एकवार आपकूं दिखायके तिरोधानकूं पाया । अथवा, बीजलीके तेजकी न्याईं ब्रह्म जो एकवार प्रकाश करता भया यह ब्रह्मका आदेश है। इहां तेजशब्द बाहिरसैं मिलाया है ॥ औ यह दूसरा आदेश है ॥ सो दूसरा आदेश कौंन है? तहां कहैहैं:—जैसैं चक्षु-

---

५१ इहां बीजलीतैं प्रकाशकूं करता भया। यह अर्थ बनै नहीं। काहेतैं, ब्रह्मकूं स्वयंज्योति होनेकरि पराधीन प्रकाशके असंभवतैं। औ बीजलीके प्रकाशकूं करता भया। यह अर्थ बी बनै नहीं। काहेतैं, अन्य आश्रयवाले प्रकाशके अन्य कर्त्ताका असंभव है। यातैं यह आगे कहनेका अर्थहीं बनै है।

**अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥ ५ ॥**

---

इंद्रिय निमेष[५२] ( पलकाकें मींचने )कूं करता है, तैसैं ब्रह्म जो नि-मेषकूं करता भया, यह [५३]अधिदैवतरूप ( देवताकूं विषय करने-वाली ) ब्रह्मकी दूसरी उपमा दिखाई है ॥ ४ ॥

**टीकाः**—अँब याके पीछे अंतरआत्माकूं विषय करनेवाला अ[ध्यात्मरूप] आदेश है, सो कहियेहैः—जो या ब्रह्म-के ताईं मु[मुक्षु] उपासकका मन गमन (विषय) करते हुयेकी न्याईं वर्त्त[ता] है; ऐसैं जो चिंतन करना सो अध्यात्म उपदेश है। औ [जै] साधक पुरुष या मन-सैं इस ब्रह्म-कूं समीप स्मरण करता [है] औ जातैं ब्रह्म मनउपाधिवाला है, तातैं ब्रह्मकूं विषय करनेवाल[ा] जो फेरि फेरि मेरे मनका संकल्प है, सो मनकी संकल्प [औ] स्मृति आदिक वृत्तिनसैं ब्रह्मकूं विषय करनेवाला होनेकी न्या[ईं] होवैगा, ऐसैं साधक पुरुष चितवता है यातैं सो यह ब्रह्मका [अ]ध्यात्मरूप आदेश है ॥ जो अधिदैवतरूप आदेश है, सो बीज[ली] औ निमेषकी न्याईं तत्काल प्रकाश करनेरूप धर्मवाला है औ [...]

---

५२ चक्षुका अपने विषयके प्रति जो प्रकाशका तिरोधान है, सो [नि]मेष कहियेहै। जैसैं चक्षुका निमेषका करना तत्काल होवै है, यह प्रति[बंधके अभावका] धर्म है; ऐसैं ब्रह्मविषै प्रतिबंधके अभावसैं वा जगत्की स्थितिके अभा[वसैं] सृष्टि आदिक कर्मविषै तत्काल करनेपनारूप धर्म है, सो याकी उपमा है।

५३ जैसैं बीजलीका प्रकाश तत्काल विश्वविषै व्यापक होवैहै, तैसैं [ही] वैसैं अधिक प्रकाशरूप औ तत्काल सकलसृष्टिआदिकका कर्त्ता, सर्व ऐश्व-र्यसंपन्न, ध्यान करने योग्य जो ब्रह्मका रूप है, सो अधिदैवत कहियेहै।

५४ अब ब्रह्मका प्रत्यगात्मारूपसैं जैसैं साक्षात्कार होवै, तैसैं उप[देश] करियेहै। ऐसैं कहैहैं।

**तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं । स य एतदेवं वेदाऽभि हैनं सर्व्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ६ ॥**

**उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ७ ॥**

---

यह अध्यात्मरूप उपदेश है सो मनकी वृत्तिनके समानकालविषै प्रकट होनेरूप धर्मवाला है । जातैं ऐसैं उपदेश किया ब्रह्म, मंदबुद्धिवाले पुरुषनकूं जाननेमैं आवता है, यातैं तिनके अर्थ यह सोपाधिक ब्रह्मका उपदेश कहा । निरुपाधिक जो ब्रह्म है सो मंदबुद्धिवाले पुरुषनसैं जाननेकूं शक्य नहीं; यातैं ताका उपदेश इहां नहीं कहा ॥ ५ ॥

टीकाः–किंवा, सो ब्रह्म निश्चयकरि "तद्वन" ऐसै नामवाला है । जातैं ब्रह्म, ता प्राणियोंके समूहका प्रत्यगात्मा होनेतैं वननीय (सम्यक् भजने योग्य) है; यातैं ब्रह्मका "तद्वन" यह नाम प्रख्यात है । जातैं ब्रह्म तद्वन है, तातैं तद्वन या प्रकार-केहीं गुणके कथन-सैं उपासना (चिंतन) करने योग्य है ॥ या तद्वन, ऐसै नामसैं उपासना करनेवालेकूं फल कहैहैंः–सो जो कोइक पुरुष या उक्त ब्रह्म-कूं ऐसा उक्त गुणवाला उपासताहै ऐसैं ता उपासककूं सर्वभूत चारि औरतैं प्रार्थना करैहैं । जैसैं ब्रह्मकूं प्रार्थना करैहैं । तैसैं ॥ ६ ॥

टीकाः–ऐसैं उपदेशकूं पाया हुया शिष्य, आचार्यकूं कहता भया । शिष्य उवाचः–भो भगवन्! चिंतवने योग्य परम रहस्यरूप जो उपनिषद् है ता-कूं कहो. ऐसैं शिष्यके कहे हुये, आचार्य कहै हैं. गुरुरुवाच—हे शिष्य! सो उपनिषद् तेरेकूं मैनैं पूर्व कही है । सो उपनिषद् कौनसी है? तहां कहैहैंः–सो उप-

निषद् ब्राह्मी है। कहिये, पूर्व कहे ज्ञानकूं परमात्माका विषय करनेवाला होनेतैं ब्रह्म जो परमात्मा, ताकी परिमाण करनेवाली है। याही ब्राह्मी उपनिषद्कूं तेरे ताईं हम कहते भये। इहां परमात्माके विषय करनेवाली उपनिषद्कूं हम कहते भये। ऐसैं कहिके आचार्य पूर्व उक्त उत्तरके अर्थकूंहीं निश्चय करावैहैं ॥ इहां वादी शंका करैहैः—परमात्माकूं विषय करनेवाली उपनिषद्कूं पूर्व सुननेवाले, औ "फेर उपनिषद् मेरेकूं कहो" ऐसैं पूंछनेवाले शिष्यका कौंन अभिप्राय है? जो कहो शिष्यनैं जातैं सुने अर्थका प्रश्न किया है, तो ताहीतैं पीसे हुये तंदुलादिकके फेर पीसनेकी न्याईं पुनरुक्ति दोषवाला होनेतैं यह प्रश्न व्यर्थ होवैगा ॥ जो कहो यह उपनिषद् पूर्व संपूर्ण नहीं कही, किंतु ताका शेषअर्थ कहनेका रहा है, यातैं यह प्रश्न बनै है? सो कथन असंगत हैः—काहेतैं, जो ऐसैं होवै तो, "धीर पुरुष जे हैं वे या लोकतैं निवर्त्त होयके अमृत होवैहैं" या फलवाक्यतैं ता उपनिषद्की जो समाप्ति कही है, सो अयुक्त होवैगी। तातैं या उपनिषद्के शेष अर्थके अभावतैं उपनिषद्के शेष अर्थका बी प्रश्न बनै नहीं ॥ तब प्रश्न करनेवालेका कौंन अभिप्राय है? सो कहो ॥ तहां सिद्धांती विकल्पपूर्वक उत्तर कहैहैंः—हे वादिन्! पूर्व कही जो उपनिषद्, सो क्या शेष ( उपयोगी ) होनेकरि अपने फलके सहकारी अन्य साधनकी अपेक्षावाली है यातैं अपेक्षित विषयसहित उपनिषद्कूं कहो; या अभिप्रायसैं शिष्यका प्रश्न है? अथवा सो उपनिषद् निरपेक्षहीं है? ये दोनूं विकल्प हैं। तिनमैं प्रथम पक्ष जो कहै तो तेरेहीं मुखसैं पूर्व ताका निषेध किया है, फेर ताके अंगीकारतैं व्याघातदोष होवैगा। सो उपनिषद् निरपेक्ष है, यह दूसरा पक्ष जो कहै, तो "यातैं अन्य श्रेष्ठ नहीं है" या वाक्यसैं पिप्पलाद

---

५५ प्रश्नउपनिषद्के अंतमैं पिप्पलादऋषिनैं सर्वशिष्यनके ताईं "इत नाहीं जाननैं योग्य परब्रह्म है, याकूं मैं जानता हूं, यातैं श्रेष्ठ और जाननैं योग्य

ऋषिकी न्यांई, हे शिष्य ! मैंनैं कही जो उपनिषद् ताकूं निश्चय कर। यह आचार्यका वचन है । यह अभिप्राय है । यातैं "हे शिष्य ! तेरेकूं सो उपनिषद् मैंनैं पूर्व कही, यह आचार्यका निश्चयरूप वचन बनै है॥ ॥ननु, जातैं आचार्यकूं आगे अन्य अर्थ कहनेका है, तातैं यह आचार्यका वचन निश्चयरूप नहीं है ? तहां कहैहैं: हे वादिन् ! यद्यपि "ता उपनिषद्के वास्ते तप औ दम" इत्यादि अन्य अर्थ आचार्यकूं आगे कहनेका है, यह तेरा कथन सत्य है, तथापि सो अर्थ, आचार्यनैं उपनिषद्का शेष होनेकरि ताके फलके सहकारी अन्य साधनके अभिप्रायसैं नहीं कहा है, किंतु ब्रह्मविद्याके प्राप्तिका उपाय है, या अभिप्रायसैं कहा है । काहेतैं, चारि वेद औ तिनके अंगोनैं अपने साथि पठनसैं तप आदिक साधनोकी तुल्यता करी है औ च्यारी वेद अरु शिक्षा आदिक तिनके षट् अंगनकूं ब्रह्मविद्याका साक्षात् साधनपना, वा ताके फलविषै सहकारी साधनपना नहीं है, यातैं तप आदिक ब्रह्मविद्याका उपाय है॥ ॥ननु साथि पठन किये बी साधनोंका यथायोग्य विभाग करिके ब्रह्मविद्यासैं संबंध होवैहै । [५६]जैसैं सूक्तवाक अरु अनुमं-

---

नहीं है" ऐसैं अज्ञात और अवशेष रखनेयोग्य वस्तु होवैगा । या आशंकाकी निवृत्ति अर्थ औ हम कृतार्थ भये या बुद्धिकी उत्पत्ति अर्थ कहाहै । तैसैं इहां आचार्यनैं "मैंनैं कही जो उपनिषद्, ताकूं हे शिष्य ! तूं निश्चय कर"। या अर्थके जनावने वास्ते "तिस या उपनिषद्कूं हम तेरे तांई कहते भये" ऐसैं आचार्यनैं उत्तर कहा है । या आचार्यके अभिप्रायकूं न जानिके या कथन किये अर्थतैं और अज्ञात अवशेष रखनेयोग्य वस्तु होवैगा, यह जानिके शिष्यनैं प्रश्न किया है । यह शिष्यके प्रश्नका और आचार्यके उत्तरका अभिप्राय है ।

५६ यज्ञके प्रकरणविषै सूक्तवाकसैंहीं सर्व त्याग (हविके होम)की समाप्तिके भये, देवता तो मंत्रसैं करियेहैं । तहां यद्यपि सूक्तवाकविषै बहुत देवता पठन करियेहैं, तथापि जा त्यागविषै जा देवताका त्याग किया है,

त्रणरूप वेदके मंत्रनका देवताके अनुसार विभाग है; तैसें तप दम कर्म औ सत्य आदिकनकूं ब्रह्मविद्याका साधनपना, वा ताके फलविषै सहकारी साधनपना है, ऐसें कल्पना करिये। वेद औ तिनके अंगनकूं अर्थके प्रकाशक होनेकरि कर्म औ आत्मज्ञानका उपायपना है। ऐसें अर्थसें संबंधके बलसें यह विभाग घटे है? सो कथन बनै नहीं:—काहेतें अयुक्त होनेतें। जातें सर्व क्रिया कारक औ फलके भेदकी बुद्धिकूं तिरस्कार करनेवाली ब्रह्मविद्याकूं साधनकी अपेक्षा, वा सहकारी साधनसें संबंध घटे नहीं, तातें यह विभाग घटे नहीं। ब्रह्मविद्याकूं सर्व कर्मके विषयनतें विवेचन किये प्रत्यगात्मारूप विषयविषै स्थित होनैतें औ ताके फल मोक्षकूं कर्मके फलतें विलक्षण होनेतें "जातें त्याग करनेवालेपुरुषकरिहीं सो ब्रह्म जाननेयोग्य है, यातें त्यागनैंवालेकूं प्रत्यगात्मरूप परम पद प्राप्त होवैहै" या शास्त्रके वाक्यतें, मोक्षकूं इच्छनेवाला पुरुष सदा साधनसहित कर्मका त्यागहीं करै। तातें कर्मनकूं ज्ञानकी सहकारिता वा ज्ञानकूं कर्मरूप साधनकी अपेक्षा बनै नहीं। तातें सूक्तवाक औ अनुमंत्रणकी न्यांई तप आदिकनका यथायोग्य विभाग असंगत है। तातें शिष्यके प्रश्नका जो आचार्यनैं उत्तर कह्या ताकूं निश्चयरूप अर्थवानूपना बनै है। या प्रकारकी यह कही उपनिषद् (ब्रह्मविद्या) सो अन्य साधनकी अपेक्षासें रहित हुई

---

वाही देवताके विसर्जनविषै योग्यताके वशतें, सूक्तवाकका जैसें संबंध होवैहै, तैसें तप आदिकनकाहीं ब्रह्मविद्याके साधन होनेकरि संबंध होवै, वेद औ तिनके अंगनका नहीं। यह वादीकी शंकाका अभिप्राय है। याका समाधान, "अयुक्त होनैतें" इहांसें आगे कहा है। ताका अभिप्राय है:—सूक्तवाकका यद्यपि योग्यताके वशतें संबंध होवैहै, तथापि कर्मनकूं विद्यासें विरुद्ध होनेकरि, ताकी विद्यासें संबंधकी योग्यता नहीं है दोनूंके विषय औ फलके भेदतें।

**तस्यै तपो दमः कर्म्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्व्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ८ ॥**

---

मोक्षके अर्थ होवैहै । [ सो उपनिषद् कैसी है ? ] जिस या ब्राह्मी उपनिषद्कूं हम तेरे आगे कहते भये ॥ ७ ॥

**टीकाः—ता** उक्त उपनिषद् (ब्रह्मविद्या)के प्राप्तिके उपायरूप तप आदिक हैं । **तप** कहिये काय इंद्रिय औ मनका समाधान । **दम** कहिये उपशम । **कर्म** कहिये अग्निहोत्रादि, ये तीन ताके प्राप्तिके उपाय हैं । यातैं इन साधनोंसैं संस्कारवाले पुरुषकूं चित्तकी शुद्धिद्वारा तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति देखी है । जाके पापरूप चित्तके मल नाश नहीं भये, ताकूं उपदेश किये बी ब्रह्मविषै अनिश्चय औ विपरीतनिश्चय होवैहै । जैसैं इंद्र औ विरोचन आदिककूं भया है तैसैं । तातैं या जन्मविषै वा पूर्व भये बहुत जन्मांतरोंविषै तप आदिकसैं जानैं चित्तशुद्धि करी है, ताकूं जैसा शास्त्रविषै सुन्या है तैसा ज्ञान उपजेहै । “ जाकूं देवविषै परम भक्ति है औ जैसी देवविषै है तैसी गुरुविषै बी परम भक्ति है ता महात्माकूं ये कथन किये अर्थ प्रकाशतेहैं ” या मंत्रके उच्चारतैं । औ “ पुरुषनकूं पापकर्मके क्षयतैं ज्ञान उपजेहै ” या स्मृतितैं । इनसैं आदि लेके अन्य बी अमानीपना औ अदंभीपना इत्यादिक, ज्ञानकी उत्पत्तिका उपकारक साधनका समूह है, सो मूलश्रुतिगत “इति” शब्दसैं दिखाया है । औ चारी **वेद** अरु वेदके **सर्व अंग** या उपनिषद्-की **प्रतिष्ठा** (पादकी न्यांई पाद)हैं । जातैं तिन वेद आदिकनके होते दोनूं पादनसैं पुरुषकी न्यांई ब्रह्मविद्या प्रवर्त्त होवैहै, तातैं चारी वेद औ शिक्षा आदिक सर्व मिलिके षट् अंग याके पाद हैं । वेदनकूं कर्म औ ज्ञानके प्रकाशक होनेतैं, पादपना है औ अंगनकूं तिनके रक्षणअर्थ होनेतैं पादपना है । अथवा

**यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥९॥**

इति चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति सामवेदीयतलवकारोपनिषत्समाप्ता ॥ २ ॥

---

प्रतिष्ठाशब्दकूं पादरूप अर्थकी कल्पनावाला होनेतैं या उपनिष दकूं अन्य अंगनसैं युक्त होना चाहिये । यातैं उक्त तप आदि या विद्याके **पाद** हैं । औ वेद याके शिर आदिक और स अंग हैं । या पक्षविषै शिक्षा आदिकनका वेदके ग्रहणसैंहीं ग्रह किया जानना । काहेतैं, अंगीके ग्रहण किये अंगनकाहीं ग्रहण हो वैहै, अगनकूं ताके आश्रित होनेतैं । औ जाविषै उपनिषद् स्थि होवैहै, सो ताका आयतन कहियेहै ऐसा याका आयतन (स्थान) **सत्य** है । जातैं वाणी मन औ शरीरकी अकुटिलता जो अमायीपना (निष्कपटपना) सो सत्यशब्दका अर्थ है तासैं युक्त ये अमायावी साधुजन हैं । तिनविषै ब्रह्मविद्या आश्र करैहै औ आसुरस्वभाववाले मायावी जनोविषै नहीं । "ति नविषै कपट औ जूठ नहीं औ माया नहीं (तिनविषै विद्या रह है ।)" या श्रुतितैं । तातैं सत्य या विद्याका आयतन (स्थान है, ऐसैं कल्पना करियेहै । तप आदिकविषैहीं प्रति (पाद) होनेकरि प्राप्त सैंत्यका जो इहां फेर आयतनपनैं ग्रहण है, सो ता सत्यका अन्य साधनोतैं अतिशय साधन जनावने अर्थ है "सहस्र अश्वमेध औ सत्य ये दोनूं तु (त्राजु) विषै धरे, तब सहस्र यज्ञोतैं एकहीं सत्य विशेष भया या स्मृतितैं ॥ ८ ॥

**टीकाः**–जो पुरुष निश्चयकरि "किसकरि वांच्छित" इत्य

---

५७ या श्रुतिवाक्यविषै, तप दम औ कर्म इन तीनसाधनोंके

वाक्यसैं उक्त, औ ऐसी महान् ऐश्वर्यवाली औ " ब्रह्म निश्चयकरि देवनके तांई विजय देता भया " इत्यादि वाक्यसैं स्तुतिकूं प्राप्त भई औ सर्व विद्याकी प्रतिष्ठा (आश्रय)रूप या ब्रह्मविद्याकूं जानता है, सो " अमरभावकूंहीं पावता है " ऐसैं पूर्वउक्त ब्रह्मविद्याका फल बी अंतविषै सूचना करियेहै ॥ औ अविद्या काम कर्मस्वरूप संसारके बीजरूप पापकूं धोयके अँनंत (अवधिरहित) औ सर्वसैं अतिशय बडे स्वर्ग (सुखरूप)—लोक (ब्रह्म)—विषै स्थितिकूं पावता है, स्थितिकूं पावता है, फेर संसारकूं पावता नहीं ॥ ९ ॥

इति श्रीतलवकारोपनिषद्गत चतुर्थखंड भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ४ ॥

इति श्रीमद् बापुसरस्वति पूज्यपाद शिष्य पितांवराव्ह-विदुषा श्रीमद्भगवत्पादकृतभाष्यानुसारेण विरचिता सामवेदीय तलवकारोपनिषद् भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ २ ॥

---

यद्यपि सत्यशब्द नहीं कहा है, तथापि तिनके अंतमैं जो इति शब्द है, सो उपलक्षण (अन्य नहीं कहे साधनोके ग्रहण)रूप अर्थवाला है, तातैं सत्य बी तहां ग्रहण करनैं योग्य है। ताका फेर जो कथन है सो श्रेष्ठताके अर्थ है।

५८ इहां जो " अनंत " पद है, सो इंद्रके स्वर्गविषै गौणवृत्तिसैं बी वर्त्तता नहीं। काहेतैं, सर्वसैं अतिशय महान् या अर्थवाले " ज्येय " या विशेषणके होनेतैं। तातैं सर्वसैं अतिशयमहान् स्वस्वरूपविषै मुख्यावृत्तिसैंहीं अनंतपद प्रतीत होता है, ताके बलतैं स्वर्गपदका बी सुखरूप ब्रह्म, यह अर्थ बनै है। यह अभिप्राय है।

## ॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

### ॥ ॐ ॥ यजुर्वेदीय कठोपनिषद् ॥ ३ ॥

**उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्व्ववेदसन्ददौ ।**
**तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥**

### श्री
### कठोपनिषद् भाष्यभाषादीपिका ॥ ३ ॥
### अथ कठोपनिषद्गत प्रथमाध्यायभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ १ ॥
### प्रथमाध्यायगत प्रथमवल्ली भाष्यभाषादीपिका ॥ १ ॥

**टीकाः**—ब्रह्मविद्याके आचार्य सूर्यके पुत्र, भगवान् यमकेतांई तथा उद्दालक ऋषिके पुत्र नचिकेताके तांई [2]नमस्कार होहु। अब हम कठउपनिषदकी षट् वल्लीनके अर्थका सुखसैं बोध करै अर्थ संक्षेपसैं व्याख्या करनेका आरंभ करैहैं:—

[3]ईहां उपनिषद्शब्दसैं, व्याख्यान करनेकूं वांच्छित औ ग्रंथविषै प्रतिपादन करने योग्य औ जानने योग्य जो ब्रह्म

१ यह उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्या कठनामक मुनीश्वरनैं ऋषिनकूं पढाय प्रवर्त्त करी है, यातैं याका नाम कठोपनिषद् है ।

२ जो साक्षात् किये परमानंदवाला औ अपनें अधिकारपर्य्यंत यम पदविषै वर्त्तमान औ अकर्त्तारूप ब्रह्म औ आत्माके अनुभवके बलतैं प्राणिनकूं दंड देनेरूप निमित्तसैं भये दोषनसैं निर्लेपस्वभाववाला यमराज आचार्य्य, वरदानसैं परब्रह्म औ आत्माके एकताकी विद्याकूं उपदेश करता भया औ जिस नचिकेता नाम अधिकारीके तांई उपदेश करता भया तिन दोनूंके तांई नमस्कार करते हुये भगवान् भाष्यकार (श्रीशंकराचार्य) आचार्यकी भक्तिकूं ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिका साधनपना दिखावै हैं ।

३ ननु, उपनिषद्की व्याख्या आरंभ करनेंकूं योग्य नहीं; काहेतें

आत्माकी एकतारूप वस्तु, ताकूं विषय करनेवाली विद्या कहिये है॥ ॥ किस अर्थके योगकरि उपनिषद्शब्दसैं विद्या कहियेहै? इहां उत्तर कहिये हैः—जे मुमुक्षुजन देखे औ सुने विषयनकी तृष्णासैं रहित हुये, उपनिषद्शब्दके वाच्य औ आगे कहनेके लक्षणवाली ब्रह्मविद्याकूं आचार्यसैं पायके, तिसीविषै निष्ठावान् होनैंकरि निश्चयसैं धारण करैहैं; तिनके अविद्याआदिक संसारके बीजका विनाश करती है। या अर्थके योगसै ब्रह्मविद्या, उपनिषद् ऐसैं कहिये है । तैसैं याही उपनिषद्विषै आगे कहेंगेः—"ता परमात्माकूं देखिके मृत्युके मुखतैं छूटता है।" या वाक्यतैं। अथवा, पूर्वउक्त विशेषणवाले मुमुक्षुनकूं परब्रह्मके तांई प्राप्त करती है। ऐसैं ब्रह्मकी प्राप्ति करनेरूप अर्थके योगतैं, ब्रह्मविद्या, उपनिषद् कहिये है । तैसैं इहांहीं आगे कहेंगेः—"ब्रह्मकूं प्राप्त भया पुरुष निर्मल औ मृत्युरहित होता भया।" या वाक्यतैं। अथवा भूमिआदिक लोकनके प्रथम ब्रह्म (हिरण्यगर्भ)तैं उपज्या औ ज्ञाता, ऐसा जो अग्नि है, ताकूं विषय करनेवाली औ नचिकेतानैं यमके तांई दूसरे वरदानरूपसैं मांगी जो अग्निविद्या; ताकूं स्वर्गलोकरूप फलके प्राप्तिकी कारण होनेकरि अन्य लोकविषै वारंवार प्रवृत्त भये गर्भवास जन्म जरा आदिक उपद्रवके समूहकी शिथिलता करनेरूप अर्थके योगतैं, अग्निविद्या बी, उपनिषद् ऐसैं क-

---

कामनाकरि मलिन चित्तवाले प्राणिनकूं उपनिषद्के श्रवणतैं विमुख होनेंतैं, औ श्रेष्ठ अधिकारीकूं दुःखसैं निरूपण करनेकूं अशक्य होनेंतैं, औ सत्यरूप धर्मकी कर्मनतैंहीं समाप्तितैं, उपनिषद्सैं जन्य विद्याकूं निष्प्रयोजन होनेंतैं, औ जीवके असंसारी ब्रह्मात्मभावकूं प्रतिपादन करनेंकूं अशक्य होनेंकरि निर्विषय होनेंतैं? यह आशंकाकरि, उपनिषद्शब्दके उच्चारसैं विद्याके श्रेष्ठ अधिकारीं आदिककरि युक्तताके दिखावनेसैं ताके जनक या ग्रंथकूं बी श्रेष्ठ अधिकारी आदिकवाला होनेंकरि व्याख्या करनेकी योग्यताकूं दिखावते हुये प्रथम उपनिषद्शब्दके अर्थकूं कहैहैं।

हिये है ॥ तैसैं इहांहीं आगे कहेंगेः—"स्वर्गके लोक अमरभाव भजते हैं" इत्यादि वाक्यतैं ॥ ॥ ननु, उपनिषद्शब्दसैं पढनेवाले जे विद्यार्थी हैं, वे उपनिषद्कूं हम पढेंगे औ पढावेंगे, या प्रकारतैं उपनिषद्शब्दकरि ग्रंथकूं बी कहते हैं। ऐसैं जो कहै, तो यह दोष नहीं हैः—काहेतैं, अविद्या आदिक संसारके हेतुके नाश आदिकरूप "सदि" धातुके अर्थका केवल ग्रंथविषै असंभव है औ विद्याविषै तो संभव है। परंतु "आयुरूप घृत है" याकी न्यांई ग्रंथकूं बी तिसीके जननरूप अर्थवाला होनेकरि ता शब्दका संभव है। तातैं ब्रह्मविद्याविषै मुख्यावृत्तिसैं उपनिषद्शब्द वर्त्तता है औ ग्रंथविषै तो गौणीवृत्तिसैं वर्त्तता है ॥ ऐसैं उपनिषद्के कथनसैंहीं ब्रह्मविद्याका श्रेष्ठ अधिकारी कहा । औ ब्रह्मविद्याका प्रत्यगात्मस्वरूप परब्रह्मरूप श्रेष्ठ विषय कहा । औ या उपनिषद्का संसारकी अत्यंत निवृत्ति अरु ब्रह्मकी प्राप्तिरूप प्रयोजन कहा औ ऐसैं प्रयोजनसैं याका संबंध कहा । यातैं शास्त्रउक्त अधिकारी विषय संबंध औ प्रयोजनवाली विद्याकूं, करतलविषै धरे आमलक नाम फलकी न्यांई प्रकाशक होनेकरि, श्रेष्ठ अधिकारी विषय प्रयोजन औ संबंधवाली ये याकी प्रकरणरूप षट् वल्ली होवैहैं। यातैं तिनका जैसैं अर्थ है, तैसैं हम व्याख्यान करैहैंः—तहां ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ यह आख्यायिका हैः—

वाज जो अन्न, ताके दान आदिक निमित्तसैं भया है श्रव (यश) जिसका ऐसा जो अरुणऋषि, सो वाजश्रवा कहिये है। अथवा रूढि (संकेत)सैं सो वाजश्रवा कहिये है। ताका पुत्र जो उद्दालक ऋषि सो वाजश्रवस कहिये है। सो वाजश्रवसऋषि, निश्चयकरि अ

४ जैसैं आयुके वर्धक घृतकूं शास्त्रविषै आयु कहैहैं; तैसैं ब्रह्मविद्या उपनिषद्के जनक ग्रंथकूं उपनिषद् कहैहैं ।

५ यह वाजश्रवस नाम मुनिहीं अरुणका पुत्र होनेतैं; आरुणि, उद्दालक, औ गौतम इत्यादि नामसैं प्रसिद्ध है । सो या प्रथमवल्ली

**तꣳ ह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥**

---

विषे सर्वस्वकी दक्षिणा होवैहै ऐसे सर्वमेध नामक यागसैं यजन करता भया। सो ता यागके फलकूं इच्छता हुया या यज्ञविषै अपने ग्रहमैं स्थित गौआंरूप धनका दान देता भया। ता यजमान-का प्रसिद्ध नचिकेता नाम पुत्र होता भया ॥ १ ॥

**टीका:**—प्रथमवयवाले बुद्धिके उत्पत्तिकी शक्तिसैं रहित बालक हुयेहीं नचिकेताके तांईं पिताके हितकीं कामनासैं उत्पन्न भई आस्तिकबुद्धिरूप श्रद्धा प्रवेश करती भई ॥ किसकालविषै ताकूं श्रद्धा भई? तहां कहैहैं—जब पितानैं [ पुत्रकी पालना अर्थ सुंदर गौआं निकासिके ग्रहमैं धरी औ ] यज्ञक्रियाके करनेवाले ऋत्विक्‌रूप ब्राह्मणनके तांईं औ यज्ञसभाविषै इकठ्ठे भये अन्य ब्राह्मणनके तांईं दक्षिणा देने अर्थ [ तिनतैं ] विभाग करिके निकासी हुई [वृद्ध] गौआंकूं समीप ल्यायके देदई। तब ता कुमार हुयेहीं नचिकेताके तांईं श्रद्धा प्रवेश करती भई। ऐसा श्रद्धावान् सो नचिकेता, अपनें चित्तमैं विचार करता भया ॥ २ ॥

---

ग्यारवीं कंडिकाविषै सूचन कियाहै। छांदोग्यउपनिषद्‌विषै जिसनैं अपने पुत्रकूं नववार " तत्त्वमसि " महावाक्यका उपदेश किया है, ऐसा श्वेतकेतुका पिता जो उद्दालकमुनि कहा है सो बी यहहीं है ऐसैं जानियेहै।

६ जिसविषै अपनी सत्ता होवै ऐसा जो अपना सारभूत धन सो सर्वस्व कहियेहै।

७ इहां यह रहस्य है:—यद्यपि ब्रह्मनिष्ठ जो उद्दालकमुनि ताकूं परलोकविषै वा मोक्षविषै उपयोगी फलकी इच्छा संभवै नहीं, तथापि श्रवणतैं लोकनके कल्याणकी कारक कीर्तिरूप वा लोकनकूं कुमार्गतैं निवारण करिके सत्‌मार्गविषै प्रवृत्त करनेरूप लोकसंग्रहरूप वा भक्तनकी कामनाके पूरण करने आदिकरूप फल बनैहै। यातैं तैसै ता यज्ञके फलकूं इच्छता हुया ता यज्ञविषै सर्व धनके दानकूं देता भया।

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता
ददत् ॥ ३ ॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मान्दास्यसीति
द्वितीयं तृतीयन्तꣳ होवाच मृत्यवे त्वा दद
मीति ॥ ४ ॥

---

टीकाः—कैसैं सो विचार करता भया? तहां कहैहैंः—दक्षि णाके अर्थ गौआं श्रेष्ठ हैं, परंतु मेरा पिता जलपान करनेकी शक्तिसैं रहित औ तृणके भक्षणकी शक्तिसैं रहित औ दुग्ध देनेकी शक्तिसैं रहित औ गर्भ धारणविषै असमर्थ एसी वृद्ध औ निष्फल जो गौआं हैं तिनकूं ब्राह्मणनकेताईं देता भया। जो यजमान तैसी गौआंकूं देताहै, सो आनंदसैं रहित जे श स्त्रविषै प्रसिद्ध लोक हैं, तिनके ताईं जाता है ॥ ३ ॥

टीकाः—तातैं यह यज्ञकी श्रेष्ठदानरूप सामग्रीके अभावतैं, जो ताकूं अनिष्ट फल होवैहै; सो मुज विद्यमान पुत्रकरि अपने शरीर दानसैं बी यज्ञकी सामग्री संपादन करिके निवारण करने योग्य है ऐसैं विचार करिके पिताके समीप जायके, सो नचिकेता पिता स्पष्ट कहता भया ॥ नचिकेता उवाचः—हे तात! किस ऋ त्विक्-के ताईं दक्षिणाके अर्थ मेरेकूं देतेहो? ऐसैं पुत्रनैं कह्या तब पितानैं ताकी उपेक्षा (विस्मृति) करी। तौबी दूसरी वार कहता भयाः—किस ऋत्विक्के ताईं मेरेकूं देतेहो? तब बी पिता उपेक्षा करी। तौबी तृतीय वार कहता भयाः—किस ऋत्विक्के ताईं मेरेकूं देतेहो? तब पिता, यह बालकका स्वभाव योग्य नहीं

**बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।**
**किꣳस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥ ५**

---

है, ऐसैं जानिके क्रोधवान् हुया ता पुत्र-कूं स्पष्ट कहता भया ॥ वाजश्रवस उवाचः—हे पुत्र, विवस्वत् नामक सूर्यके पुत्र यमके तांई तेरेकूं देता हूं ॥ ४ ॥

**टीकाः**—ऐसैं जब पितानैं कहा, तब सो पुत्र एकांतदेशविषै जायके चिंता करता भया ॥ कैसैं चिंता करता भया? तहां कहैहैंः— [ जातैं मेरे पिताके ] बहुत शिष्यनके वा पुत्र-नके मध्य, मैं शिष्यादिकनकी मुख्यवृत्तिसैं प्रथम हुया जाता हूं ( उत्तमताकूं पावता हूं ) औ [ किसीकालविषै ] बहुत मध्यमशिष्य वा पुत्र-नके मध्य शिष्यादिकनकी मध्यमवृत्तिसैं मध्यम हुया तहां जाता हूं ( मध्यमताकूं पावता हूं ), परंतु कदाचित् बी अधमवृत्तिसैं जाता ( अधमताकूं पावता ) नहीं वा ऐसैं श्रेष्ठ गुणवाले बी मुज पुत्रके तांई, पिता, " तेरेकूं यमके तांई देता हूं " ऐसैं कहते भये [ यह बडा कष्ट भया ] औ सो पिता अब मेरे सैं जो यमका प्रयोजन करेंगे, सो प्रयोजन क्या होवैगा? कछु बी नहीं। यातैं [ मैं ऐसैं जानता हूं किः—] प्रयोजनकी इच्छासैं विनाहीं क्रोधके वशतैं पिता कहते भये। तथापि, सो पिताका वचन जूठा मति होहु। ऐसैं मानिके "मैंनैं पुत्रकूं क्या कहा" या रीतिके शोकसंयुक्त पिताकूं, शोकपूर्वक कहता भयाः— ॥ ९ ॥

---

८ शिष्य वा पुत्र आदिक अधिकारीकी जो समयके अनुसार गुरु आदिकके अभिप्रायकूं जानिके सेवाविषै प्रवृत्तिं सो मुख्य ( उत्तम ) है औ गुरु आदिककी आज्ञासैं जो सेवाविषै प्रवृत्ति सो मध्यम है औ तिस गुरु आदिककी आज्ञाकूं अपालनकरिके जो प्रवृत्ति है सो अधम (कनिष्ठ) है।

अनुपश्य यथा पूर्व्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते
पुनः ॥ ६ ॥
वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैताꣳ शान्तिं कुर्व्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥

---

टीकाः—नचिकेता उवाचः—हे तात ! पीछले क्रमसैं देखो जा प्रकारसैं आपके पूर्वके पिता औ पितामह आदिक प्रवृत्त भ हैं । तिनकूं देखिके तिनके आचरणके ताईं आप आस्था करने योग्य हो । तैसें वर्त्तमान कालके अन्य साधुजन जैसें वर्त्तते हैं ति-नकूं देखो । तिनविषै । वचनका मिथ्या करना पूर्वबी भया नहीं वा अब बी वर्त्तमान नहीं । तातैं विपरीत जो वचनका मिथ्या क रना है, सो असाधुपुरुषनका आचरण है । कोइ बी पुरुष मिथ्य वचनरूप आचरणकूं करिके अजर अमर होता नहीं। जातैं मनुष्य धान्यके वृक्षकी न्याईं जीर्ण हुया मरताहै, मरणकूं पायके धान्यके वृक्षकी न्याईं प्रकट होता है ( जन्मता है ); यातैं अनित्य जीवलोकविषै वचनके मिथ्या करनेसैं क्या प्रयोजन है कछु बी नहीं । तातैं आपके सत्यकूं पालन करो ॥ याका अभि यह है किः—मेरेकूं यमके ताईं भेजो ॥ ६ ॥

टीकाः—ऐसैं जब पुत्रनैं कहा, तब सो पिता, आपकी सत्य अर्थ, पुत्रकूं यमकेताईं भेजता भया।पीछे सो नचिकेता यमरा भवनके ताईं जायके तीन रात्रिपर्य्यंत निवास करता भया । ता यमैं यमराजा [ अपने गृहमैं नहीं थे, किंतु किसी कार्यके लि अन्यदेशविषै गये थे । पीछे अन्यदेशतैं लौटिके अपने गृहमैं तब यमराजाके प्रति अपने मंत्री वा स्त्रीजन, समुजावते हुये

आशाप्रतीक्षे सङ्गतᳪ सूनृताञ्चेष्टापूर्ते पुत्रपशूᳪश्च सर्व्वान् । एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥

---

भयेः—साक्षात् अग्निहीं अतिथि ब्राह्मण भया तुह्मारे गृहनकेताईं दाह करते हुयेकी न्याईं आया है । ता अग्निके दाह-की निवृत्ति करते हुयेकी न्याईं सत्पुरुष इस पाद्य औ आसन आदिकके देनेरूप शांतिकूं करतेहैं । यातैं हे वैवस्वत ( यम ) । नचिकेता अतिथिके ताईं पाद्य (पादप्रक्षालन)के अर्थ जलकूं ल्याओ, जातैं जाके न करनेविषै पाप सुनियेहै ॥ ७ ॥

टीकाः—औ जा अल्पबुद्धिवाले पुरुषके गृहविषै भोजनकूं न करता हुया ब्राह्मण बैठता है, ताके वांछित अर्थकी प्रार्थनारूप आशा औ ज्ञातअर्थकी प्राप्तिके अर्थ राह देखनेरूप प्रतीक्षा औ सत्पुरुषनके संयोगसैं जन्य फलरूप सङ्गत औ प्रियनिमित्तवाली वाणीरूप सूनृत औ यज्ञसैं जन्य फलरूप इष्ट औ ईश्वरनिमित्त वगीचे करने आदिक क्रियासैं जन्य फलरूप पूर्त औ पुत्र अरु पशु इन सर्वकूं सो ब्राह्मण नाश करता है । तातैं सर्व अवस्थाविषै वी गृहकूं आया अतिथि उपेक्षा ( तिरस्कार ) करनेकूं योग्य नहीं । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

टीकाः—ऐसैं जब कहा, तब यमराजा नचिकेताके समीप जा-

---

१ भोजनसमयमैं अपने ग्रहविषै आया जो बटाउ, सो अतिथि कहियेहै । ताहींकूं अभ्यागत बी कहैहैं ।

**शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौ-तमो माऽभि मृत्यो ! त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्र-तीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥**

---

यके पूजा (सन्मान) पूर्वक कहते भये ॥ क्या कहते भये? त कहैहैं:—मृत्युरुवाच:—हे ब्रह्मन् ! जातैं तूं नमस्कार करनेयोग्य अतिथि भया भोजनकूं न करता हुया मेरे गृहविषै तीन रा त्रिपर्य्यंत वास करता भया, तातैं तेरे ताईं नमस्कार होहू। ब्रह्मन् ! ता तेरे भोजनके न करनेसैं मेरे गृहमैं वास करने निमित्तवाले दोष-तैं मेरा कल्याण होहू । यद्यपि ता दोषके प्रा प्तिकी शांति करनेवाले तेरे अनुग्रहसैं मेरा सर्व कल्याण होवैगा तथापि तेरी अधिक प्रसन्नताके करने अर्थ भोजनके न करनें उपोषण ( उपवास )कूं प्राप्त भई एक एक रात्रिके प्रति [तु मेरे करि एक एक वर दिया चाहिये, यातैं] वांच्छित भिन्न प्र जनवाले तीन वर मेरेतैं मांग ॥ ९ ॥

**टीका:**—तब नचिकेता कहता भया। नचिकेताउवाच:—हे मृ जब आप मेरेकूं वर देनेकी इच्छावाले भये हो, तब गौतम (उ लक) नामवाला जो मेरा पिता है, सो, "मेरा पुत्र यमकूं होयके क्या करेगा" इस प्रकारका जो मेरेप्रति संकल्प है, ता शांतिकूं प्राप्त होहू । औ मेरे प्रति प्रसन्न मनवाला था तैसा होहू औ क्रोधसैं रहित होहू । किंवा तेरेकरि होयके गृहके ताईं भेजे हुये मेरे प्रति स्मृतिकूं प्राप्त हुया षण करै। कहिये "सोई यह मेरा पुत्र आया है" ऐसा ज्ञान पिताकूं होवै । ऐसैं जो पिताकूं संतोष होवै या प्रयोजनवाला तीन वरदानोके मध्य प्रथम वर मैं मांगताहूं ॥ १० ॥

**यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः । सुखꣳ रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥**

**स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति । उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥**

---

**टीकाः**—तब यमराजा कहथे भये । मृत्युरुवाचः—हे नचिकेता ! तेरे पिताकी बुद्धि तेरेविषै जैसैं पूर्व स्नेह सहित थी, तैसैंहीं आरुणि ( अरुणऋषिका पुत्र ) औ उद्दालक या नामवाला तेरा पिता, मृत्युके मुखतैं ( मुज यमके देशतैं ) मुक्त होयके प्राप्त भये तुज पुत्र-कूं देखता हुया ( देखिके ) प्रतीतिकूं प्राप्त भया प्रीति सहित होवैगा ॥ औ अब बी सो मेरी आज्ञाकूं पाया हुया निरंतर बी रात्रिकूं पूर्वकी न्यांई प्रसन्न मनवाला हुया सुख जैसैं होवै तैसैं सोवता है । औ क्रोधरहित है [अथवा तेरे पिताकूं जैसैं पूर्व तूं प्रीति सहित हुया प्रतीत होताथा, तैसैंहीं अब बी संभाषण आदिकसैं दोनूं पिताका संबंधी जो कोई दूसरेका पुत्र सो मेरी आज्ञाकूं पाया हुया प्रीति सहित भया अरुणका पौत्र औ उद्दालकका पुत्र है, ऐसी प्रतीतिका विषय हुया वर्त्तता है । यातैं सो तेरा पिता, निरंतर बी रात्रिकूं प्रसन्न मनवाला हुया सुखसैं सोवता है, औ तेरेप्रति क्रोधरहित है, औ मृत्युके मुखतैं मुक्त भये तुज पुत्रकूं देखता है ] ॥ ११ ॥

**टीकाः**—अब नचिकेता, स्वर्गके साधन अग्निके ज्ञानकूं पूंछनेकूं प्रथम स्वर्गका स्वरूप कहैहै । नचिकेता उवाचः—हे मृत्यो ! स्वर्गलोकविषै रोगादि निमित्तका किया भय कछु बी नहीं है । औ तहां तुम ( मृत्यु ), तत्काल पराभव करते नहीं । जातैं पुरुष, या

स त्वमग्निꣳ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो ! प्रब्रूहि तꣳ श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतन्निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥

---

लोककी न्यांई जरासैं युक्त हुया तुमतैं किसी वी निमित्तसैं भयकूं पावता नहीं । किंवा क्षुधा औ तृषा इन दोनूंकूं लंघिके (शोककूं लंघिके) तहां जाता है । औ मानसदुःखरूप शोकसैं रहित हुया दिव्य स्वर्गलोकविषै हर्षकूं पावता है ॥ १२ ॥

टीकाः—ता ऐसै गुणवाले स्वर्गलोककी प्राप्तिके साधन स्वर्गसंबंधी अग्निकूं जातैं सो तुम (मृत्यु) जानते हो, तातैं हे मृत्यो! श्रद्धावान् स्वर्गके अर्थी मुजकूं सो अग्नि आप कहो ॥ चित (समाप्त) किये जा अग्निसैं स्वर्गलोककूं प्राप्त भये यजमान अमरभाव(देवभाव)कूं पावतेहैं, तिस ऐसै अग्निकेज्ञान-कूं मैं दूसरेवरसैं मांगता हूं ॥ १३ ॥

टीकाः—[यह मृत्युकी प्रतिज्ञा हैः—] मृत्युरुवाचः—हे नचिकेता ! तैंनैं मांग्या जो अग्निका ज्ञान, ता स्वर्गके साधन अग्निकूं मैं जानता हुया तेरे ताईं कहता हूं । ता मेरे वचन-कूं तूं एकाग्र मनवाला हुया श्रवण कर ॥ [अब अग्निकी स्तुति करैहैंः—]हे नचिकेता ! स्वर्गलोकरूप फलकी प्राप्तिके साधन औ विराट्रूपसैं

---

१० इहां यह आगे ( चतुर्थवल्लीकी सप्तम औ अष्टम कंडिकाविषै औ पंचमवल्लीकी द्वितीय कंडिकाविषै ) कहनेकी मृत्युकी प्रतिज्ञा जाननी:— " सो परमात्मा आपकूं तीन भांति करताभया " या श्रुतितैं; अग्नि वायु औ सूर्यरूपसैं समष्टिरूप विराट्हीं बन्या है; यह व्यवस्था है ।

**लोकादिमग्निन्तमुवाच तस्मै या इष्टका याव-तीर्वा यथा वा । स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तम-थास्य मृत्युः पुनरेवाऽऽह तुष्टः ॥ १५ ॥**

**तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरन्तवेहाद्य द-दामि भूयः । तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः सृङ्का-ञ्चेमामनेकरूपाङ्गृहाण ॥ १६ ॥**

---

जगत्के बी आश्रयरूप औ विद्वानोकी बुद्धिरूप गुहाविषै स्थित, ता इस अग्नि-कूं मैं कहता हूं, तूं जान ॥ १४ ॥

**टीकाः**—यह श्रुतिकी वचन हैः—पीछे प्रथम शरीरधारी होनेतैं भूमि आदिक लोकनके आदि तिस प्रसंगविषै प्राप्त नचिकेतानैं प्रार्थना किये अग्निकूं यमराजा ता नचिकेता-के ताँई कहते भये ॥ किंवाः—[ इस चयन नामक यागविषै ] स्वरूपसैं इकट्ठी रखनेयोग्य जो इष्टका [ मृत्तिकारचित ईंटा ] हैं वा संख्यासैं जितनीयां हैं, वा जा प्रकारसैं तिनविषै अग्नि धरियेहै, यह सर्व कहते भये ॥ औ पीछे सो नचिकेता बी जैसैं याकूं जो मृत्युनैं कहा था ताकूं फेर मृत्युके प्रति कहता भया ॥ ताके तिस प्रतिउच्चारण ( अनुवाद )सैं संतोषकूं प्राप्त भये यमराजा, पूर्वउक्त तीनवरदानोंतैं भिन्न अन्यवरके देनेकी इच्छावाले हुये फेरि हीं कहते भये ॥ १५ ॥

**टीकाः**—कैसै ता नचिकेताकूं कहते भये ? तहां कहैहैंः—शिष्यकी योग्यताकूं देखते हुये ( प्रीतिकूं अनुभव करते हुये ) वे महात्मा ( अतुच्छबुद्धिवाले ), हे नचिकेता ! इहां तेरी प्रीतिके निमित्त अब मैं फेर चतुर्थ वरकूं देताहूं, ऐसैं कहते भये ॥ मैनैं कहा जो

---

११ ता विराट्रूपसैं अग्नि, जगत्का आधार कहियेहै । यह विस्तारसहित अग्निके ज्ञान औ चयन नाम यागके प्रकरणतैं जानना, ऐसैं हमकूं श्रुति बोध करैहै; यह कहैहैं ।

**त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्म्मकृत्तरति जन्ममृत्यू । ब्रह्मजज्ञन्देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमाᳲशान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥**

---

अग्नि, सो तुज नचिकेता-के नामसैं प्रसिद्ध होवैगा ॥ औ या शब्दवाली रत्नमय विचित्र मालाकूं ग्रहण कर। यद्वा या चारि औरतैं तुच्छ कर्ममय गतिकूं ग्रहण कर । अर्थ यह जो, और बी कर्मका ज्ञान, अनेक फलका कारण होनेतैं ग्रहण कर ॥ १६॥

टीका:—फेर बी यमराजा कर्मकी स्तुतिकूंहीं कहैहैं:—जिसनैं तीनवार "नाचिकेत" या नामसैं प्रसिद्ध अग्नि चित (समाप्त) किया है, ऐसा जो ताका ज्ञाता वा ताके अध्ययनवाला पुरुष, वा ताके अनुष्ठानवाला पुरुष, सो त्रिणाचिकेत कहियेहै। सो माता पिता औ आचार्य, इन तीनसैं संबंधकूं पायके (माता आदिक तीनकी यथार्थ आज्ञाकूं पायके)। [सो मातादिककी आज्ञा अन्यश्रुतितैं प्रमाणपनैका कारण जानियेहै । जैसैं "मातावाला पितावाला औ आचार्यवाला जानता है" इत्यादि वाक्य है।] वा वेद स्मृति औ शिष्टपुरुष, इन तीनसैं संबंधकूं पायके वा प्रत्यक्ष अनुमान औ आगम (शास्त्र), इन तीन प्रमाणोसैं संबंधकूं पायके [तिनतैं शुद्धताके प्रत्यक्ष होनेतैं] यज्ञ अध्ययन औ दानरूप तीन कर्मनका कर्त्ता जो पुरुष है, सो जन्ममृत्युकूं लंघता है ॥ किंवा, यह अग्नि हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मतैं जन्म्या है औ ज्ञाता (सर्वज्ञ) है, यातैं "ब्रह्मजज्ञ" कहियेहै। औ यह स्तुति करने योग्य है औ प्रकाश करनेतैं ज्ञानादिगुणवाला देव कहियेहै । ता-कूं शास्त्रसैं जानिके औ आत्मभावसैं देखिके या अपनी बुद्धिके प्रत्यक्ष अतिशयकरि शांतिकूं पावता है। अर्थ यह जो, ज्ञान (उपासना वा शास्त्रजन्य परोक्षज्ञान) औ कर्मके समुच्चयकरि (मिलायके) अनुष्ठानसैं विराट्के पदकूं पावता है ॥ १७ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वाꣳश्चिनुते नाचिकेतम्। स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १८ ॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण। एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरन्नचिकेतो ! वृणीष्व ॥ १९ ॥

---

टीकाः—अब अग्निके ज्ञान औ चयन (याग)के फलकूं औ या प्रसंगकूं समाप्त करैहैंः—जो पूर्व उक्त "त्रिणाचिकेत" पुरुष है, सो "जो ईष्टका वा जितनी वा जिस प्रकारसैं स्थापन करियेहैं" ऐसैं पूर्वउक्त इष्ठकाका स्वरूप संख्या औ प्रकार, इन तीनकूं जानिके औ ऐसैं आत्मस्वरूपसैं अग्निकूं जानता हुया नाचिकेत (अग्नियज्ञ)कूं समाप्त करताहै। सो अधर्म अज्ञान राग औ द्वेष आदिरूप मृत्युके पाशनकूं शरीरके पातसैं पूर्वहीं दूर करिके मानसदुःखनतैं रहित हुया विराट्के आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसैं विराट्पदरूप स्वर्गलोकविषै सुखकूं पावताहै ॥ १८ ॥

टीकाः—हे नचिकेता! तूं द्वितीय वरसैं जा अग्निरूप वर-कूं मांगता भया, सो यह स्वर्गका साधन अग्नि-रूप वर मैंनैं तुजकूं दिया है [इहां उक्त अर्थकी समाप्ति भई]। किंवा, या अग्निकूं तेराहीं (तेरे नामसैं) जन कहेंगे। यह द्वितीय वर मैंनैं दिया। अब हे नचिकेता! तुष्ट भये मुजतैं, तृतीयवर मांग ॥ ता तृतीयवरके नहीं दिये हुये मैं ऋणवान् हूं। यह अभिप्राय है ॥१९॥

---

१२ सातसैं वीस [ ७२० ] ईटां, या चयन नामक यागविषै स्थापित होवैहैं। तितनेंहीं संवत्सरके दिन औ रात्रियां हैं। संख्याकी समानतातैं। इष्ठका स्थानी तिन संवत्सरके दिन औ रात्रिनसैं संपूर्ण किया जो "अग्नि सो मैं हूं" ऐसैं आत्मभावसैं ध्यान करिके पापादिरूप मृत्युसैं छूटिके विराट्भावकूं पावता है; यह भाव है।

**येयम्प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥**

टीकाः—[१३]इहांपर्य्यंत कथन किये विधिनिषेधरूप अर्थवाले मंत्र ब्राह्मणरूप ग्रंथसैं जाननेयोग्य जो दोनूं वरदानोंसैं सूचन किया वस्तु, सो आत्मतत्त्वरूप विषयके स्वभावका ज्ञान नहीं है । यातैं स्वाभाविक अज्ञानमय संसारका वीज औ आत्माविषै क्रिया कारक अरु फलके अध्यारोपस्वरूप जो विधिनिषेध अर्थरूप विषय है, ताकी निवृत्ति अर्थ, क्रिया कारक अरु फलके अध्यारोपस्वरूपसैं रहित औ आत्यंतिकमोक्षरूप प्रयोजनवाला तिस विधिनिषेधरूप अर्थतैं विपरीत जो ब्रह्म औ आत्माकी एकताका विज्ञान है, सो कहनेकूं योग्य है; या रीतिसैं अव उत्तर ( आगिले ) ग्रंथका आरंभ करियेहै ॥ [१४]तृतीय वरदानके विषय आत्मज्ञान विना द्वितीय वरकी प्राप्तिसैं वी अकृतार्थपना है । तिस या अर्थकूं प्रथम वल्लीकी समाप्तिपर्य्यंत आख्यायिकासैं विस्तारकरि वर्णन करैहैं । जातैं साध्य औ साधनस्वरूप अनित्यकर्मरूप विषयतैं विरक्त पुरुषकूं आत्मज्ञानविषै अधिकार है, यातैं ताकी निंदा ( अपवाद ) अर्थ पुत्रादिकके देनेसैं यमराजाकरि नचिकेताके तांई प्रलोभन करिये ( आगे लोभ दिखावैंगे ):—“ हे नचिकेता ! तृतीय वरकूं मांग” ऐसैं जव यमराजानैं कहा, तव नचिकेता कहैहैः—नचिकेता ऐं

१३ अव पिता पुत्रके स्नेहसैं आदिलेके स्वर्गलोकपर्यंत जो दोनूं वरदानोंसैं सूचन किया संसारका रूप है, सोई कर्मकांडसैं प्रतिपादन करनैं योग्य आत्माविषै आरोपित है, औ ताका निवर्त्तक आत्मज्ञान है । ऐसैं अध्यारोप औ अपवादके भावसैं पूर्व औ उत्तरग्रंथके संबंधकूं कहैहैं ।

१४ अव प्रथमवल्लीकी समाप्तिपर्यंत जो कथा है, ताके बीचके संबंधकूं कहैहैं ।

**देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म्मः । अन्यं वरं नचिकेतो ! वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ २१ ॥**

---

वाचः—हे मृत्यो ! मरे मनुष्यविषै जो यह संशय हैः—तहां केइक वादी आत्मा है ऐसैं कहतेहैं औ केइक शरीर इंद्रिय मन औ बुद्धितैं भिन्न अन्यदेहका संबंधी आत्मा है, ऐसैं कहते हैं । औ केइक यह आत्मा नहीं है ऐसैं कहतेहैं । औ केइक यह आत्मा या प्रकारका नहीं है ऐसैं कहतेहैं [ यह संशय है ] ॥ [15]यातैं हमारेकूं आत्माके निर्णयका ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणसैं नहीं होवैहै । अनुमानसैं बी नहीं होवैहै । औ परम पुरुषार्थ जो है, सो या विज्ञानके अधीन हीं है । तातैं आपकरि शिक्षाकूं पाया हुया मैं या विज्ञान-कूं जानूं, यह वरदानोंके मध्य अवशेष रहा तीसरा वर है ॥ २० ॥

**टीकाः**—ऐसैं जब नचिकेतानैं कहा, तब यह (नचिकेता), क्या नियमतैं मोक्षके साधन आत्मज्ञानके योग्य है वा नहीं, या परीक्षाके अर्थ यमराजा कहैहैं । मृत्युरुवाचः—हे नचिकेता ! जातैं या आत्मवस्तु-विषै देवताओंनैं बी पूर्व संशय किया है, औ प्राकृत-

---

१५ जब देहतैं भिन्न आत्माके सद्भावविषै वादीनके विवादनसैं संशय होवै, तब प्रत्यक्षआदिक प्रमाणोंसैं आपकूंहीं निर्णयके ज्ञानके संभवतैं, औ ताके निर्णयकूं निष्प्रयोजन होनेतैं, ता निर्णयके ज्ञानअर्थ प्रश्न करना योग्य नहीं । यह आशंका मनमैं ल्यायके नचिकेता कहैहै किः—प्रत्यक्षप्रमाणसैं निर्णय किये ठोंठविषै "यह पुरुष है वा नहीं" या संदेहके न देखनेतैं, औ देहतैं भिन्न आत्माके सद्भावविषै संदेहके देखनेतैं, प्रत्यक्ष प्रमाणसैं ताका निर्णय बनै नहीं । परलोकके संबंधरूपसैं किसी बी लिंग ( चिह्न )की व्याप्तिके न देखनेतैं अनुमानसैं बी ताका निर्णय बनै नहीं । यह अर्थहै ।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो!
यन्न सुविज्ञेयमात्थ । वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न
लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥२२॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून्
हस्तिहिरण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयञ्च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥

---

जनोंकरि सुन्या हुया बी यह वस्तु सम्यक् जानने योग्य नहीं है
औ जातैं यह आत्मा या नामवाला धर्म सूक्ष्म है, यातैं हे न-
चिकेता ! अन्य निःसंशय फलवाले वरकूं मांग । ऋण ( कर्ज )
का देनेवाला धनवान् जैसैं ऋणवाले ( कर्जदार )के तांई रोकता है
तैसैं मेरेकूं मति रोक किंतु मेरे तांई या वर-कूं छोड ॥ २१ ॥

टीकाः—ऐसैं जब यमराजानैं कहा, तब नचिकेता कहैहै । नचिके-
ता उवाचः—हे मृत्यो ! जातैं या आत्मवस्तु-विषै देवताओंनैं बी
निश्चयकरि संशय किया है, ऐसैं मैंनैं आपतैं सुन्या औ
आप बी "आत्मतत्त्व सम्यक् जानने योग्य नहीं है," ऐसैं क-
हते हो; यातैं पंडितनसैं बी जाननेकूं अयोग्य होनेतैं या आत्मरू-
धर्म-का तुह्मारे तुल्य वक्ता अन्य पंडित खोज्या हुया बी प्राप्त
होने योग्य नहीं । औ यह वरदान तो मोक्षकी प्राप्तिका हेतु है
यातैं याके तुल्य अन्य कोई बी वर नहीं है । काहेतैं अन्य सर्व
वस्तुकूंहीं अनित्यफलरूप होनेतैं । यह अभिप्राय है ॥ २२ ॥

टीकाः—ऐसैं नचिकेतानैं कहा, तौ बी फेर यमराजा लोभ दिखा-
वते हुये कहैहैं । मृत्युरुवाचः—हे नचिकेता ! तूं सौ वर्षकी आयु-
वाले पुत्र अरु पौत्रनकूं मांग किंवा गौ आदिरूप बहुत पशु-
नकूं मांग । औ हस्ति सुवर्ण अरु अश्वनकूं मांग । किंवा पृथि-
वीके बडे विस्तारयुक्त मंडल ( चक्रवर्ती राज्य )-कूं मांग

**एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकाञ्च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानान्त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥**

**ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्व्वान् कामाऽश्छन्दतः प्रार्थयस्व। इमा रामाः सरथाः सतूर्य्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो! मरणं माऽनुप्राक्षीः ॥ २५ ॥**

---

जो कहै, आप जब अल्पआयुवाला है तब यह सर्व बी व्यर्थ है। तहां कहैहैं:—तूं आप बी जितनैं वर्ष पर्य्यंत जीवनेकूं इच्छता हैं, तितनैं वर्षपर्य्यंत जीव (जीव शरीर औ सर्व इंद्रियनके समूहकूं धारण कर) ॥ २३ ॥

**टीका:**—औ इस कथन किये वस्तु-के तुल्य अन्य वस्तु-कूं बी जब वर मानताहैं, तब ताकूं बी मांग ॥ किंवा:—सुवर्ण अरु रत्नादिरूप बहुत धनकूं औ धनसहित चिरजीविकाकूं मांग ॥ हे नचिकेता! बहुत कहनेसैं क्या है, बडी भूमिविषै तूं राजा होहू॥ किंवा:—देवनके औ मनुष्यनके भोग्यनका भोगके योग्य (भोक्ता) तुजकूं करूंगा, यातैं अन्य क्या है! मैं सत्य संकल्पवाला देव हूं। यह भाव है ॥ २४ ॥

**टीका:**—जो जो काम (विषय) मनुष्यलोकविषै इच्छा करने योग्य औ दुर्लभ हैं, तिन सर्व कामोकूं इच्छाके अनुसार मांग। किंवा रथसहित वर्त्तमान औ वादित्रसहित यह दिव्य अप्सरारूप पुरुषनकूं रमावनेवालियां रामा (स्त्रियां) हैं, वे ऐसी रामा जो मुज आदिककी प्रसन्नता विना मनुष्यनसैं प्राप्त होने योग्य नहीं, इन मेरी दई हुई सेवा करनेवाली रामा-सैं आ-

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रिया-
णाञ्जरयन्ति तेजः। अपि सर्वञ्जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वि-
त्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि
त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥

---

पकी पादप्रक्षालनादिरूप सेवाकूं कराव। हे नचिकेता! काकके दंतनकी परीक्षारूप "मरणकूं पायके, है वा नहीं है" या रीति-के मरण-संबंधी प्रश्न-कूं तूं पूंछने योग्य नहीं है ॥ २५ ॥

टीकाः—ऐसैं लोभकूं प्राप्त किया तौवी महाऱ्हद (जलके वडे कुंड)की न्यांई क्षोभकूं न पायके नचिकेता कहैहै। नचिकेता उ-वाचः—हे अंतक (मृत्यो)! तुह्मनैं दिये जे भोग वे कलके दिन होवैंगे वा न होवैंगे, ऐसे संशयसहित वर्त्तमान भाव (होने)वाले हैं। किंवाः—ये अप्सरा आदिक भोग जे हैं, वे मनुष्यका जो यह सर्व इन्द्रियनका तेज है, ताकूं नाश करैहैं। यातैं धर्म बल बुद्धि तेज औ यश आदिकके नाशक होनेतैं, वे भोग अनर्थके अ-र्थहीं होवैहैं। औ जा दीर्घ जीविका (वडी आयु)-कूं तुह्म देते हो, तहां बी दोष सुनोः—सर्व (जो ब्रह्माका है, सो) बी आयु अ-ल्पहीं है, तब मुज आदिक मनुष्यनकी जीविकाके तांई अल्प है, यामैं कहा कहना है! यातैं तुह्मारे रथादिक तथा नृत्य अरु गीत तुह्मारेकूंहीं होहू ॥ २६ ॥

टीकाः—किंवाः—जातैं लोकविषै धनका लाभ किसीकूं बी तृप्तिका कारण देख्या नहीं, यातैं मनुष्य वहुत धनसैं तृप्ति करने योग्य नहीं औ जब हमकूं प्रसिद्ध धनकी तृष्णा होवैगी, तब हम आपहीं धनकूं पावेंगे। जब हम तुमकूं देखते भये, तब [धनका ला-

**अजीर्य्यताममृतानामुपेत्य जीर्य्यन्मर्त्यः क-धःस्थः प्रजानन् । अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमो-दानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥ २८ ॥**

---

दुर्घट नहीं ] तैसैंहीं चिरकालकी आयुकूं वी पावैंगे । जहांलगि याम्य ( मयके ) पदविषै तुम स्वामी स्थित होउगे, तहां-लगि हम **जीवैंगे** । जातैं मनुष्य, आपके पास आयके अल्प धन औ अल्प आयुवाला कैसैं होवै । किसी प्रकार बी होवै नहीं । [ यातैं बहुत धन औ आयुका लाभ हमकूं आपके दर्शनसैंहीं सिद्ध है ] औ **मेरेकूं मांगने योग्य वर तो सोई है,** जो आत्माका विज्ञान है ॥ २७ ॥

**टीकाः**—औ [१६]जातैं **आयुकी हानिकूं अप्राप्त होनेवाले देव-नके समीप जायके** तिनतैं अपना उत्कृष्ट अन्य प्रयोजन प्राप्त क-रने योग्य है औ **जाननेवाला** ( विवेकी ) आप तो जरामरणवान् अरु **पृथिवीरूप** जो अंतरिक्ष आदिक लोकनकी अपेक्षासैं अधः-स्थल है, तिस-**विषै स्थित हुया,** ऐसैं अविवेकिनकरि इच्छने योग्य पुत्र धन औ सुवर्ण आदिक अस्थिर वस्तुकूं कैसैं मांगेगा । किसी प्रकार बी मांगे नहीं । [ काहू उपनिषद्के ग्रंथविषै "क तदास्थः" ऐसा और रीतिका पाठ है । या पक्षविषै अक्षरनकी योजना ऐसैं हैः—तिन पुत्रादिकनविषै तात्पर्य्यसैं वर्त्तनेरूप आस्था-वाला जो पुरुष है सो "तदास्थ" कहिये है । यातैं यह अर्थ हो-वैहै किः—तिस पुत्रादि वस्तुसैं अतिशय अधिक औ दुःखसैं प्राप्ति होनेयोग्य बी पुरुषार्थकूं प्राप्त करनेकूं इच्छता हुया औ जो तिनके असारपनैकूं **जाननैवाला** कोई बी पुरुष है, सो **कहां तिनविषै**

---

१६ अत्र " उत्तम पुरुषार्थके लाभके संभव हुये अधमपुरुषार्थकूं इ-च्छता हुया मैं मूर्खहीं होऊंगा, तातैं बी मुजकूं सोई आत्मज्ञानरूप वर मांग्या चाहिये " या अभिप्रायसैं नचिकेता कहैहै ।

**यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो ! यत्साम्प-राये महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्र-विष्टो नान्यन्तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥**

॥ इति प्रथमा वल्ली ॥ १ ॥

---

आस्थावाला ( तिनका अर्थी ) होवैगा ! कदाचित् होवै नहीं ।] जातैं सर्व लोक ऊपर ऊपर ( अधिक अधिककूं ) हीं भोगनेकूं इ-च्छता है, तातैं पुत्र औ धन आदिकनके लोभनसैं मैं लोभकूं पावता नहीं । किंवाः—शरीरके रंगकी प्रीतिसैं प्रमोदकी कारण अप्सरा आदिकन-कूं अस्थिररूपवालियां होनेकरि यथार्थ निरूपण करता हुया कौंन विवेकी अतिशय लंबे आयुविषै रमेगा ! कोई बी रमे नहीं । यातैं अनित्य भोगनसैं लुभावनेकूं छोडिके, जो मैंनें मांग्या है, [ आत्माके निर्णयका ज्ञान ] सो कहो । ऐसैं आगे सं-बंध है ॥ २८ ॥

टीकाः—हे मृत्यो ! जिस मृतक-के भये वडी ( बडे प्रयोजन-वाली ) परलोककी गतिविषै "आत्मा है वा नहीं है" ऐसैं [ देवता वा वादी निर्णयविना ] संशयकूं करते हैं । या प्रकारका यह संशय है । यातैं ताका निवर्त्तक आत्माके निर्णयका विज्ञान जो है, ताकूं हमारे अर्थ कहो ॥ इहां यह श्रुतिका वचन है:-बहुत कहनेसैं क्या है ! जो यह प्रसंगविषै प्राप्त आत्माकूं विषय करनेवाला वर, दुःखसैं विवेचनकूं प्राप्त हुया, नचिकेताके चि-त्तविषै प्रवेशकूं पाया है, ता वरदानतैं अन्य अविवेकिनकरि इ-च्छनैं योग्य अनित्य विषयवाले वर-कूं नचिकेता मनसैं बी मां-गता नहीं ॥ २९ ॥

इति श्रीकठोपनिषद् प्रथमाध्यायगत प्रथमवल्ली भाष्य भाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

---

अथ द्वितीयवल्ली ॥ २ ॥

**अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषᳲ सिनीतः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥**

---

**अथ प्रथमाध्यायगत द्वितीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका २**

**टीकाः**–शिष्यकी [17]परीक्षा करिके औ ताके विद्याकी योग्यताकूं जानिके यमराजा कहैहैं मृत्युरुवाचः–हे नचिकेता! श्रेय (विद्यारूप मोक्षका साधन) अन्य है औ प्रेय (अविद्यामय कर्मरूप संसारका साधन)वी अन्यहीं है। वे दोनूं, श्रेय औ प्रेय भिन्न प्रयोजनके होते वर्ण आश्रम आदिककरि युक्त अधिकारी पुरुषकूं बांधतेहैं। जातैं तिन श्रेय औ प्रेयरूप विद्या औ अविद्यासैं, मुजकूं यह कर्त्तव्य है, या भावसैं सर्व पुरुष जुडता है। कहिये, मोक्ष औ स्वर्गादि भोगरूप संसारका अर्थी जो पुरुष है; सो श्रेय औ प्रेयविषै प्रवृत्त होता है। यातैं सर्व पुरुष श्रेय औ प्रेयके प्रयोजनकी कर्त्तव्यताकरि तिनसैं बांध्या है ऐसैं कहियेहै ॥ वे[18] श्रेय औ प्रेय, यद्यपि यथायोग्य एक एक पुरुषार्थ (फल)के संबंधी हैं तथापि विद्या औ अविद्यारूप होनेतैं परस्पर विरुद्ध हैं। यातैं दोनूंमैसैं एकके अपरित्यागसैं एक पुरुषकरि साथि अनुष्ठान करनेकूं अशक्य होनेतैं, तिन दोनूं-विषै अविद्या (कर्म)रूप प्रे-

---

१७ अब भोग अरु मोक्षके विभागके दिखावनेसैं औ विद्या अरु अविद्याके दिखानेंसैं केवल विद्याका अर्थी होनेकरि शिष्यकी प्रथम श्लाघा करैहैं।

१८ अब श्रेय औ प्रेयके मध्य एकके त्यागसैंहीं एकके ग्रहणविषै कारण कहैहैं। वे विद्या औ अविद्यारूप श्रेय औ प्रेयरूप एकएक फलसैं संबंधवाली हैं, तथापि विरुद्ध हैं। यातैं तिनके मध्य एकका त्याग करिके अन्यका ग्रहण संभवैहै। यह अर्थ है।

**श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥ २ ॥**

**स त्वं प्रियान् प्रियरूपाꣳश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः। नैताꣳ स्रङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्याम्मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥**

---

यकूं छोडिके केवल श्रेयकूंहीं ग्रहण करनेवाले पुरुष-का कल्याण होवैहै औ जो अदूरदर्शी विमूढ पुरुष प्रेयकूं ग्रहण करता है सो तो परमार्थिक प्रयोजनरूप पुरुषार्थतैं वियोगकूं पावताहै (भ्रष्ट होता है) ॥ १ ॥

टीकाः—जब ये श्रेय औ प्रेय, दोनूं बी पुरुषकरि करनेकूं स्वाधीन हैं, तब लोक किस प्रयोजन अर्थ बहुतकरि प्रेयकूंहीं ग्रहण करैहै ? तहां कहियेहैः—यद्यपि श्रेय औ प्रेय स्वाधीन हैं, यह कथन सत्य है; तथापि साधनतैं औ फलतैं मंदबुद्धिवाले पुरुषनके दुर्विवेकरूप हुये मिश्रितभयेकी न्यांई या मनुष्यकूं प्राप्त होवैहैं। यातैं हंस जैसैं जलतैं दुग्धकूं निकाशता है, तैसैं धीर पुरुष तिन श्रेय औ प्रेय दोनूं पदार्थन-कूं मनसैं सम्यक् देखिके, इनके गुरुपनै अरु लघुपनैकूं भिन्न करता है। औ सो धीर (बुद्धिमान) श्रेयकूं अंगीकार किया होनेतैं, प्रेयतैं भिन्न करिके श्रेयकूंहीं ग्रहण करैहै ॥ ॥ औ यह अधीर कौंन है ? तहां कहैहैं:—औ अल्पबुद्धिवाला पुरुष है सो अधीर है। वह तो विवेकके असामर्थ्यतैं योगक्षेमतैं (शरीर आदिककी वृद्धि औ रक्षणरूप योगक्षेमके निमित्त) पशुपुत्रादिरूप प्रेयकूं ग्रहण करैहै ॥ २ ॥

टीकाः—हे नचिकेता ! सो तूं फेरि फेरि मेरेकरि लोभकूं प्राप्त किया तौ बी पुत्रादिरूप प्रिय औ अप्सरा आदिक प्रियरूप भोगनकूं अनित्यता औ असारता आदिक तिनके दोषयुक्त चिंतन करता

**दूरमेते विपरिते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता । विद्याभीप्सिनन्नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्तः ॥ ४ ॥**

**अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयन्धीराः पण्डितम्मन्यमानाः । दन्द्रम्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥ ५ ॥**

---

हुया त्यागता भया । औ या निंदित मूढजनोंकी प्रवृत्तिवाली वहुत धनयुक्त कर्मकी गतिकूं प्राप्त न भया । जा कर्मकी गति-विषै, केवल मूढ मनुष्य खेदकूं पावते हैं ऐसैं नहीं, किंतु वहुत मनुष्य खेदकूं पावतेहैं । यातैं तेरा बुद्धिमान्पना अहो (अवधिरहित) है ! ॥ ३ ॥

**टीकाः**—“ तिनविषै श्रेयके ग्रहण करनेवालेका कल्याण होवैहै, जो प्रेयकूं ग्रहण करता है सो पुरुषार्थतैं भ्रष्ट होवैहै ” ऐसैं द्वितीय वल्लीकी प्रथम कंडिकाविषै कहा सो किस कारणतैं है ? तहां कहैहैं:—जातैं ये दोनूं महान् अंतरायसैं तम औ प्रकाशकी न्यांई परस्पर भिन्नरूप हैं, विवेक अरु अविवेकरूप होनेतैं । औ संसार अरु मोक्षकी हेतु होनैंकरि नाना गति (भिन्नफल)वालियां हैं ॥ वे दोनूं कौंन हैं ? तहां कहियेहैं:—जो प्रेय (भोग)कूं विषय करनेवाली अविद्या है औ श्रेय (मोक्ष)कूं विषय करनेवाली विद्या है । वे दोनूं पंडितोंनैं क्रमतैं अज्ञातरूप औ ज्ञातरूप जानी हैं । तिनविषै तुज नचिकेताकूं विद्याका अर्थी मैं मानताहूं ॥ किस कारणतैं ? तहां कहैहैं:—जातैं बुद्धिकूं लुभावनेवाले अप्सरादिक वहुत भोग बी अपने भोगकी इच्छाके संपादनसैं तुजकूं श्रेयके मार्गतैं भ्रष्ट न करते भये । यातैं तुजकूं मैं विद्याका अर्थी मुमुक्षुजन मानता हूं । यह अभिप्राय है ॥ ४ ॥

**टीकाः**—जे संसारके भजनेवाले जन हैं वे तो घनीभूत अंधकारकी

न साम्परायः प्रतिभाति बालम्प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् । अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्व्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥

श्रवणायाऽपि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः । आश्चर्य्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्य्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ ७ ॥

---

न्यांई अविद्याके मध्य वर्त्तमान (पुत्र पशु आदिककी तृष्णारूप सं-कडो पाशनसैं वेष्टित) हुये अरु आप हम बुद्धिमान् औ शास्त्र-कुशल पंडित हैं ऐसैं मानतेहैं, वे मूढ (अविवेकी) जरा मरण औ रोग आदिक दुःखनसैं अत्यंत कुटिल अनेकरूप गतिकूं पावते हुये च्यारि औरतैं भ्रमतेहैं। जैसैं अंध पुरुष-करि वांच्छितस्थलमैं जाते हुये वहुत अंध (अबोधरूप) विषममार्गविषै महान्अनर्थकूं पावतेहैं; तैसैं वे संसारीजन मूढ होनेतैं भ्रमतेहैं ॥ ५ ॥

टीकाः—परलोककी प्राप्तिरूप प्रयोजनवाला शास्त्रउक्त साधनवि-शेष सांपराय कहियेहै। सो पुत्र औ पशु आदिक प्रयोजनोविषै आ-सक्तमनवाला होनेकरि प्रमादकूं करनेवाले औ धनरूप निमित्त-सैं भये अविवेकसैं मूढ (अज्ञानसैं आवृत) हुये अविवेकीरूप बालकके प्रति भासता नहीं (बुद्धिमैं स्थित होता नहीं)। जो यह स्त्री अरु अन्नपानादि भोगसहित लोक देखियेहै, यहहीं है दूसरा अदृष्ट लोक नहीं। या प्रकारके विचारवाला मानी पु-रुष वारंवार जन्मकूं पायके मुज मृत्यु-की अधीनताकूं पावताहै। अर्थ यह जो, जन्ममरणादिरूप दुःखके बंधनविषै आरूढहीं होवैहै जगत्विषै वहुतकरिके या प्रकारकाहीं लोक है ॥ ६ ॥

टीकाः—जो मोक्षका अर्थी पुरुष है, सो जातैं सहस्र पुरुषनविषै तैं जैसा आत्मवेत्ता कोइकहीं होवैहै, यातैं यह आत्मा वहुत पुरु-

**न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः । अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमनुप्रमाणात् ॥ ८ ॥**

---

नकरि श्रवण करनेकूं वी प्राप्त होनेयोग्य नहीं । औ अन्य अभागी संस्काररहित चित्तवाले अनेक पुरुष सुनते हुये वी या आत्मा-कूं जानते नहीं । किंवा, या आत्माका वक्ता वी आश्चर्यरूप (अद्भुतकी न्यांई) अनेकपुरुषनविषै कोइक हीं होवैहै. । तैसैं सुनिके वी या आत्मा-का प्राप्त होनेवाला निपुण पुरुष अनेकनविषै कोइकहीं होवैहै । जातैं ऐसैं है, यातैं निपुण आचार्य्य-सैं शिक्षाकूं पाया हुया या आत्माका ज्ञाता आश्चर्यरूप कोइकहीं होवैहै ॥ ७ ॥

**टीकाः**—यह तुह्मारा कथन किस कारणतैं है? तहां कहेहैं:—जातैं जा आत्माकूं तूं मेरे प्रति पूच्छता हैं यह आत्मा, है वा नहीं है, कर्त्ता है वा अकर्त्ता है, शुद्ध है वा अशुद्ध है इत्यादि, अनेक प्रकारसैं वादीनकरि चिंतन किया है; यातैं हीनमनुष्यसैं कथन किया हुया यह आत्मा सम्यक् जाननेकूं अशक्य है ॥ तब यह आत्मा कैसैं सम्यक् जाननेयोग्य है? तहां कहियेहै:—प्रतिपादन करनेके योग्य ब्रह्मके स्वरूपभूत अभेददर्शी आचार्य-करि कहे हुये या आत्मा-विषै, है वा नहीं है इत्यादिरूप अनेक प्रकारकी गति (चिंता) नहीं है । काहेतैं, आत्माके सर्वविकल्पकी चिंताके निवृत्त होनेतैं । अथवा स्वस्वरूपभूत अनन्यआत्माके कहे हुये तिसविषै अन्यवस्तुका ज्ञान नहीं है । काहेतैं, अन्य ज्ञेयवस्तुके अभावतैं । जातैं यह आत्माकी एकताका जो विज्ञान है, सो ज्ञानकी परम अवधि है, यातैं अन्यज्ञेयके अभावतैं इहां गति (चिंता) अवशेष रहती नहीं । अथवा इहां संसारकी गति नहीं है, काहेतैं, अनन्यरूप आत्माके कहे हुये ज्ञानके फल मोक्षके अंतरायके अभावतैं ।

**नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ । यान्त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥**

---

अथवा, कहनेयोग्य ब्रह्मके स्वरूपभूत आचार्यकरि कथन किये या आत्माविषै अज्ञानरूप अगति नहीं है; किंतु श्रोताकूं वा आचार्यकूं "ता ब्रह्मसैं अनन्य (सो ब्रह्म)मैं हूं," या प्रकारके ज्ञानरूप ता आत्माकूं विषय करनेवाली अवगति (ज्ञान) होवैहीं है। ऐसैं वेदवेत्ताआचार्यनैं अनन्यभावसैं कथन किया आत्मा सम्यक् जाननैंयोग्य है। यह अर्थ है ॥ आत्मा अणुपरिमाणवाले वस्तु-तैं बी अतिशयअणु (सूक्ष्म)रूप है। औ अतर्क्य है। कहिये, अणुपरिमाणवाला हुया केवल अपनी बुद्धिकी कल्पनासैं तर्कका विषय किये हुये अतर्क्य (तर्कका अविषय) है। काहेतैं किसी पुरुषकरि आत्माकूं अणुपरिमाणवाला स्थापित किये हुये, अन्यपुरुष तातैं अतिशय अणुकूं कल्पता है। औ अन्य पुरुष तातैं बी अतिशय अणुकूं कल्पता है; परंतु तर्ककी स्थिति काहूविषै बी होती नहीं। तातैं सो श्रुतिवेत्ता आचार्यके उपदेशविना केवल तर्कसैं जाननैयोग्य नहीं ॥ ८ ॥

**टीकाः**—यातैं अभेददर्शी आचार्यनैं आत्माके कथन किये हुये उत्पन्न भई जो श्रुतिप्रतिपादित आत्माविषै **मति** (आत्मनिष्ठा) यह केवल स्वबुद्धिकी कल्पनारूप **तर्कसैं प्राप्त होनै योग्य नहीं** अथवा यह मति तर्कसैं नाश करनैंयोग्य नहीं । यह अर्थ है जातैं शास्त्रका अज्ञाता जो तर्क करनेवाला पुरुष, सो जो कछु कहता है सो अपनी बुद्धिसैं कल्पितहीं कहता है । याहीतैं, हे प्रियतम (नचिकेता)! यह जो श्रुतिसैं उत्पन्न होनेवाली मति है सो तर्क करनेवाले पुरुषतैं **अन्यहीं श्रुतिके वेत्ता** आचार्यसैं कथन करी हुई सम्यक् ज्ञानके अर्थ होवैहै ॥ सो तर्कसैं

**जानाम्यहꣳशेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवन्तत्। ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ १० ॥**

---

जाननैं योग्य मति कौंनसी है? तहां कहियेहैः—जा मति-कूं तूं मेरे वरदानसैं **प्राप्त भया** हैं सो। **अहो** (बडा हर्ष है कि)! तूं **सत्यधृति** (सत्य वस्तुकूं विषय करनेहारे धैर्य्य)—**वाला** हैं ॥ ॥ अब यमराजा, आगे कहनेके ज्ञानकी स्तुतिअर्थ नचिकेताकेताईं कृपा करते हुये कहैहैः—हे **नचिकेता**! जैसा तूं पूछनेवाला हैं तैसा **तेरेतुल्य हमारे अर्थ पूछनेवाला** अन्य पुत्र वा शिष्य **होहू** ॥ ९ ॥

**टीकाः**—[१९]फेर बी संतुष्ट हुये यमराजा कहैहैः—हे नचिकेता! कर्मका फलरूप जो **निधि**, सो निधिकी न्यांई प्रार्थना करियेहै। यातैं यह **अनित्य है, ऐसैं मैं जानता हूं**। जातैं **अनित्य द्रव्यन-सैं** परमात्मा नामक **सो नित्य** वस्तु **प्राप्त नहीं होवैहै, औ** जातैं जो अनित्यसुखरूप निधि है सोई अनित्य द्रव्य (पदार्थ)नसैं प्राप्त होवैहै, **तातैं** मुज जाननेवाले-सैंहीं अनित्य साधनोंकरि नित्यवस्तु प्राप्त नहीं होवैहै ॥ किंतु **मैंनैं** पशु आदिक **अनित्य द्रव्यनसैं "नाचिकेत"** नामवाला स्वर्गका साधनभूत **अग्नि परिपूर्ण कियाहै**, तिसकरि मैं अधिकारकूं प्राप्त हुया आपेक्षिक **नित्य** स्वर्गनामक यमके स्थान-कूं **प्राप्त भया हूं** ॥ १० ॥

---

१९ जाननेंवाले मुजनैं बी बहुतश्रमसैं कर्म किया है, औ तूं दिये हुये बी ताके फलकूं लेता नहीं; यातैं "हे नचिकेता! तूं मुजतैं अधिक बुद्धिमान् हैं" या संतोषतैं यमराजा शिष्यकी श्लाघा करैहैं; ऐसैं भाष्यकार कहैहैं।

कामस्याप्तिञ्जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्। स्तोमं महदुरुगायम्प्रतिष्ठान्दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥

तन्दुर्दर्शङ्गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितङ्गह्वरेष्ठम्पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥

---

टीकाः—हे नचिकेता ! तूं तो विस्तीर्ण औ उत्तम आत्माकी स्थितिकूं देखिके जा इसविषैहीं सर्व काम समाप्त होवैहैं, ऐसे काम (भोग)की प्राप्तिरूप औ सर्वरूप होनेतैं, अध्यात्म अधिभूत अरु अधिदैव आदिक जगत्का आश्रय औ यज्ञका फल (हिरण्यगर्भका पद) औ अनंत औ स्तुति करने योग्य औ महत (निरतिशय होनेतैं अणिमादिक ऐश्वर्यसैं आदिलेके अनेक गुणसहित) जो यह संसारके भोगका समूह है, ता-कूं जातैं बुद्धिमान भया परब्रह्मकूंहीं इच्छता हुया धैर्यसैं त्यागता भया, यातैं अहो (बडा हर्ष है !) तूं सर्वोत्तमगुणवाला हैं ॥ ११ ॥

टीकाः—जा आत्माकूं तूं जाननेकूं इच्छता हैं, ता अतिसूक्ष्म होनेतैं दुःखसैं देखनेयोग्य औ गूढ औ प्राकृत जनोके विषयनके विकारयुक्त ज्ञानोंसैं आवृत औ बुद्धिविषै जाननेमैं आवता है, यातैं बुद्धिरूप गुहाविषै स्थित औ अनेक अनर्थरूप संकटविषै स्थित, [जातैं ऐसैं गूढ आवृत औ गुहाविषै स्थित है; यातैं संकटविषै स्थित है। याहीतैं दुर्दर्श है। ऐसै] पुरातन आत्मारूप देवकूं आत्माविषै चित्तकी एकाग्रतारूप जो अध्यात्मयोग है, ता-की प्राप्तिसैं मानिके (निश्चयकरिके) बुद्धिमान् पुरुष आत्माकी वृद्धि औ हानिके अभावतैं हर्ष औ शोककूं त्यागता है ॥ १२ ॥

**एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य । स मोदते मोदनीयꣳ हि लब्ध्वा विवृतꣳ सद्म नचिकेतसम्मन्ये ॥ १३ ॥**

**अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्म्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥**

---

**टीकाः**—किंवाः—मरणधर्मवाला जो मनुष्य है, सो जाकूं मैं कहता हूं, या आत्मतत्त्व-कूं आचार्यतैं सुनिके औ सम्यक् (आत्मभावसैं) ग्रहण करिके औ धर्मरूप सूक्ष्म या आत्मा-कूं उद्यम करिके (शरीरादिकतैं भिन्न करिके) प्राप्त होयके सो विद्वान् मनुष्य हर्ष करने योग्य आत्मा-कूं पायके आँनंदकूं पावता है। हे नचिकेता! मैं तुज नचिकेताकूं या प्रकारके खुल्ले द्वारवाले ब्रह्मरूप भवनके तांईं सन्मुख हुया मानता हूं ॥ अभिप्राय यह है किः—तुजकूं मोक्षके योग्य मानता हूं ॥ १३ ॥

**टीकाः**—यह सुनिके नचिकेता फेर कहैहैः—नचिकेता उवाचः—हे भगवन्! जब[21] मैं योग्य शिष्य हूं औ मेरे प्रति आप प्रसन्न हो, तब शास्त्रउक्त धर्म-के अनुष्ठान-तैं अहंताके फलतैं अरु ताके साधनोतैं भिन्न हुया, तैसैं अधर्मतैं भिन्न हुया, तैसैं या कार्य्य औ

---

२० हे नचिकेता! तैनैं जो देहतैं भिन्न आत्मा पूंछ्या है, सो ताहीके परमार्थरूपका ज्ञान कारणसहित बंधका निवर्त्तक है औ परमानंदकी प्राप्तिका साधनरूप धर्म है, यातैं अन्य मोक्षका साधन नहीं; यह भाव है।

२१ "हे मृत्यो! जब देहतैं भिन्न प्रथम पूंछे हुये आत्माके परमार्थस्वरूपका ज्ञानहीं मोक्षका साधन है, तब सोई मुजकूं कहो" ऐसैं नचिकेता कहैहै।

**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि स-र्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यंश्चरन्ति तत्ते पदꣳ सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥**

---

कारणतैं भिन्न हुया, किंवा भूत काल-तैं औ भविष्यत् कालतैं तैसैं वर्त्तमान कालतैं भिन्न हुया, (तीन कालतैं जो परिच्छेदकूं पावता नहीं) जो ऐसा सर्व व्यवहारके विषयनतैं भिन्न वस्तु है, ताकूं आप जानते हो; सो मुजकूं कैहो[22] ॥ १४ ॥

**टीकाः**—ऐसैं पूछनेवाले नचिकेताके तांई पूछे हुये वस्तु (ब्रह्म) के अन्य विशेषणकूं कहनेकूं इच्छते हुये, यमराजा कहैहैंः—मृत्युरुवाचः—सर्व वेद [वेदके एकदेशरूप उपनिषद्] पावने योग्य जा पदकूं अविभागसैं प्रतिपादन करतेहैं, औ सर्व तपोंकूं जाके प्राप्ति अर्थ कहते हैं, औ जाकी इच्छावाले (जा ब्रह्मकी प्राप्ति अर्थ) गुरुकुलविषै वासकरनेरूप वा अन्यरूप ब्रह्मचर्यकूं आचरते हैं, औ जाकूं तूं जाननेकूं इच्छता हैं; ता पदकूं तेरे तांई मैं [23]संक्षेपसैं कहता हूं। [सो पद कौन है ? तहां कहैहैंः—] जो

---

२२ इहां "सो मुजकूं कहो" ऐसैं जो नचिकेतानैं पूंछ्या, यह यमके वरदानसैं भिन्न नवीन प्रश्न होवैगा; ऐसी शंका करनैं योग्य नहीं। काहेतैं, पूंछे हुये वस्तुके ज्ञानके साधन अन्यविशेषणके कहनेंकूं पूर्व पूंछे हुये वस्तुकेहीं यथार्थ स्वरूपका यह प्रश्न है। यातैं उक्त शंका बनै नहीं।

२३ उपनिषद् जे हैं, वे ज्ञानके साधन होनेंकरि ता परमात्मपदसैं साक्षात् संबंधवालीयां हैं, औ तपरूप जे तिन जीवनके कर्म हैं, वे चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानके साधन हैं; औ विचारविषै असमर्थ जो मंदअधिकारी है, ताकूं क्रमसैं ज्ञानका साधन इहां संक्षेपसैं कहैहैं।

**एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥**

**एतदालम्बनꣳश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥**

---

यह पद है, वा जो जाननेकूं इच्छित है, सो यह ॐ ( ॐ शब्दका वाच्य औ ॐ शब्दरूप प्रतीक[२४]वाला ) है ॥ १९ ॥

**टीकाः**—यातैं यहहीं अक्षर ( अविनाशी ) रूप ब्रह्म, अपर (सगुणरूप अश्रेष्ठ ) है। औ यहहीं अक्षर ( अविनाशी )रूप ब्रह्म, पर (निर्गुणरूप श्रेष्ठ) है। तिन दोनूंका प्रतीकरूप जो यह ॐकार अक्षर है, याही-कूं "यहहीं अक्षर (अविनाशी)रूप ब्रह्म है," ऐसैं उपासनाकरिके जो पुरुष जिस परब्रह्म वा अपरब्रह्म-कूं इच्छता है, ताकूं सो होवैहै। कहिये, इन दोनूंमैंसैं परब्रह्मकूं जब इच्छता है, तब सो जाननेयोग्य होवैहै, औ अपरब्रह्मकूं जब इच्छताहै, तब सो पावनेयोग्य होवैहै ॥ १६ ॥

**टीकाः**—जातैं ऐसैं है, याहीतैं यह ॐकाररूप जो आलंबन

---

२४ ध्येयवस्तुके स्वरूपके अग्रहण हुये ध्येयवस्तुकी भावनासैं शास्त्र उक्त प्रकारसैं जिस अन्यवस्तुका ध्यान करियेहै, सो वस्तु प्रतीक कहियेहै। जैसैं विष्णु औ शिवके स्वरूपके अग्रहण हुये शालिग्राम औ नर्मदाके कंकर आदिकका ध्यान करियेहै, सो प्रतीक है। ऐसैं सगुण वा निर्गुण ब्रह्मके स्वरूपके अग्रहणं हुये, यह " ॐ कार अक्षर ब्रह्म है " ऐसैं ताकी भावनासैं ॐकारअक्षरका ध्यान करियेहै, यातैं यह ॐकार अक्षर प्रतीकरूप है। जा शब्दके उच्चारण किये जो वस्तु स्फुरता है, सो ताका वाच्य प्रसिद्ध है। एकाग्रचित्तवाले पुरुषनकूं ॐकारके उच्चार किये जो विषयके संबंधतैं रहित ज्ञान स्फुरता है, सो ताका वाच्य है। तातैं ॐकारकूं आश्रयकरिके ताका वाच्य "ब्रह्म मैं हूं" ऐसैं ध्यान करै, तामैं बी जो असमर्थ होवै सो प्रतीकरूप ॐ शब्दविषैहीं ब्रह्मदृष्टि करै। यह अर्थ है।

**न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥**

(उपासनाका आश्रय ) है, सो ब्रह्मप्राप्तिके साधनरूप अन्य आलंबनोके मध्य **श्रेष्ठ** (अतिशय श्लाघा करनेके योग्य पररूप) है। औ **यह आलंबन पर** ( श्रेष्ठतैं दूसरा अश्रेष्ठ अपररूप ) है । काहेतैं, परब्रह्म औ अपरब्रह्म इन दोनूंकूं विषयकरनेवाला होनेतैं । यातैं **या आलंबनकूं जानिके** परब्रह्मरूप वा अपरब्रह्मरूप **ब्रह्मलोकविषै महिमाकूं पावताहै** । अर्थ यह है किः—ब्रह्मकी न्यांई उपासना करनेकेयोग्य होवैहै ॥ १७ ॥

**टीकाः**—"[२५]धर्मतैं भिन्न हुया" या चतुर्दशवीं कंडिकासैं पूछे हुये सर्व विशेष (उपाधि)सैं रहित आत्माका औ अपरब्रह्मका आलंबन होनेकरि औ प्रतीक होनेकरि मंद औ मध्यम अधिकारीनके तांई ॐकार कहा। अब ता ॐकाररूप आलंबनवाले आत्माके साक्षात् स्वरूपके निर्धार करनेकी इच्छासैं यह कहियेहैः—**यह आत्मा जन्मता नहीं औ मरता नहीं** । उत्पत्तिवाले अनित्यवस्तुकूं अ-

---

२५ "ऐसैं साधनहीन पुरुषके तांई उपदेश व्यर्थ है," यह मानिके उच्चनीचरूप ज्ञानका साधन कहिके अब अविनाशी स्वरूप जो पूंछ्या है, ताके कहनें अर्थ यमराजा आरंभ करैहैं; ऐसै कहैहैं । इहां यह भाव हैः— यद्यपि आत्मातैं अन्य ब्रह्म होवै तब तिसविषै जन्मादिककी प्राप्तिके अभावतैं अप्राप्त जन्मादिकका निषेध होवैगा; यातैं जन्मादिकके निषेधतैं केवल आत्माके स्वरूपकूंहीं उपदेश करैहैं ऐसैं नहीं, किंतु आत्मासैं अभिन्न ब्रह्मकूं उपदेश करते भये; ऐसैं जानियेहै । औ मरणके निमित्तसैं आत्माके सद्भावकी जो शंका है, ताके निवारण अर्थ आत्माके सद्भावकूं विषय करनेंवाला जो नचिकेताका प्रश्न है, ताका बी आत्माके मरणके अभाव हुये यहहीं उत्तर होवैहै, ऐसैं जानना ।

**हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।**
**उभौ तौ न विजानीतो नायꣳ हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥**

---

नेक विकार होवैहैं, तिनके मध्य या आत्माविषै "जन्मता नहीं औ मरता नहीं" ऐसैं जन्म औ नाशरूप दोनूं विकारनका जो निषेध करियेहै, सो प्रथम सर्वविकारनके निषेध अर्थ है। [ फेर आत्मा कैसा है ? ] **औ विपश्चित्** ( सर्वज्ञ ) है । काहेतैं, अलुप्तचैतन्यस्वभाववाला होनेतैं । किंवा, यह आत्मा किसी अन्यकारण-तैं बी भया नहीं औ या आत्मातैं कोई अन्यअनर्थरूप पदार्थ बी भया नहीं; यातैं यह आत्मा **अजन्मा** है, **नित्य** है, औ **शाश्वत** ( अपक्षयरहित ) है । जातैं जो अशाश्वत है, सो अपक्षयकूं पावताहै। यह आत्मा तो शाश्वत है, यातैं अपक्षय ( जरा ) कूं पावता नहीं; याहीतैं **पुराण** ( पूर्व बी नवीनहीं ) है । जातैं जो अवयवकी वृद्धिद्वारा समाप्त करियेहै, सो अबी नवीन है; जैसैं घटादिक हैं । आत्मा तो तातैं विपरीत है, यातैं पुराण ( वृद्धिरहित ) है । जातैं ऐसा है, यातैं आत्मा, शस्त्रादिकसैं **शरीरके हनन हुये बी हननकूं पावता नहीं** । अर्थ यह जोः—आत्मा शरीरविषै स्थित हुया बी आकाशकी न्यांई असंगहीं होवैहै ॥ १८ ॥

**टीकाः**—या प्रकारके आत्माकूं बी केवल शरीरविषै आत्मदृष्टिवाला हनन क्रियाकाकर्त्ता **हंता** पुरुष, जब "या आत्माकूं मैं हनन करूं" ऐसैं **हनन करनेकूं मानता** ( चितवता ) है, औ अन्य हननक्रियाका विषय भया जो **हत** पुरुष सो बी जब "मैं हननकूं पाया" ऐसैं आत्माकूं **हन्या** ( हननक्रियाका विषय भया ) **मानता** है; **वे दोनूं** बी आप आत्माकूं **नहीं जानतेहैं** । जातैं **यह** आत्मा **हनन करता नहीं** । काहेतैं, आत्माकूं क्रियारहितहोनेतैं । तैसैं यह आत्मा **हननकूं पावता नहीं** । काहेतैं, आकाशकी न्यांईहीं क्रिया ( वि-

**अणोरणीयान्महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ २० ॥**

---

कार )सैं रहित होनेतैंहीं । [26]यांतैं धर्म औ अधर्मादिरूप जो संसार है सो अनात्माके जाननेवाले अज्ञानीका विषयहीं है; ब्रह्मके जाननेवाले ज्ञानीका विषय नहीं। काहेतैं, श्रुतिके प्रमाणतैं औ [27]न्यायतैं ज्ञानीविषै धर्म औ अधर्म आदिकके असंभवतैं ॥ १९ ॥

**टीकाः**—जब ऐसा आत्मा है, तब फेरि[28] आत्माकूं पुरुष कैसैं जानता है? तहां कहियेहैः—यह आत्मा श्यामा ( सांवा ) आदिक सूक्ष्मवस्तु तैं बी अतिशय सूक्ष्म है, औ महत् परिमाणवाले पृथिवी-आदिक तैं बी अतिशय महान् ( बडा ) है [29]लोकविषै जो वस्तु सूक्ष्म है, वा बडा है, सो ता नित्य आत्मासैं है। यातैं आत्माकी

---

२६ यद्यपि आत्मा अक्रियहीं है, तथापि धर्मआदिकके अधिकारीके अभावतैं तिनकी असिद्धिके हुये संसारकी प्रतीतिहीं नहीं होवैगी; यह आ-शंकाकरि अब कहैहैं।

२७ "जाके अज्ञानतैं प्रवृत्ति होवै, ताके ज्ञानसैं सो कैसैं होवै?" इ-न्यायतैं, आत्मज्ञानीकूं धर्म आदिक बनै नहीं। यातैं आत्मज्ञानी सदा अ-क्रहीं है। तहां यह शास्त्रका प्रमाण है;—"विवेकी सर्वदा मुक्त है औ ला-कके वादकूं आश्रय करिके कर्त्ता हुया बी ताकूं कर्त्तापना नहीं है; श्रीकृष्ण औ जनक हैं."

२८ अब निष्कामता आदिक अन्य साधनोके विधान अर्थ, आदि इस वाक्यकूं प्रकट करैहैं।

२९ जो वस्तु अणु है सो महत्की अपेक्षावाला है। आत्मा, एक है, यातैं ताकूं अणुपना विरुद्ध है, । ताका कैसैं अनुवाद करते है यह आशंका करिके, अणुपनै आदिकके अध्यासके अधिष्ठानपनैं आदिक व्यवहार वास्तवतैं नहीं है; ऐसैं अविरोधकूं कहैहैं।

**आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्व्वतः ।**
**कस्तम्मदामदन्देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥**

---

त्यांई सत् संभवै नहीं, किंतु सो आत्मासैं भिन्न किया हुया असत् संभवैहै । तातैं यह आत्माहीं सर्व नामरूप वस्तुमय उपाधिवाला होनेतैं सूक्ष्मतैं अतिसूक्ष्म औ महत्तैं अतिमहान् है । फेर सो आत्मा या जंतु ( ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्य्यंत प्राणिनके समूह )की हृदयरूप **गुहाविषै** अपना आप हुया **स्थित है** । ता दर्शन श्रवण मनन औ विज्ञानरूप लिंगंवाले आत्मा-कूं निष्काम (दृष्ट औ अदृष्ट बाह्यविषयनतैं उपरामकूं प्राप्त भई बुद्धिवाला) हुया जब ऐसैं देखताहै, तब शरीरके धारणतैं प्रसन्न होवैहैं, ऐसैं धातु जे मन आदिक करण हैं; इन **धातुनके प्रसादतैं** कर्मनिमित्तसैं वृद्धि औ क्षयसैं रहित **आत्माके महिमाकूं देखताहै** (यह मैं हूं, ऐसैं साक्षात् जानता है) । तातैं **शोकरहित होवैहै** ॥ औरप्रकारसैं कामनावाले प्राकृतपुरुषसैं यह आत्मा दुःखसैं जाननेकूं योग्य है ॥ २० ॥

**टीकाः—जातैं यह आत्मारूप देव अचलहीं हुया दूर जाता है,** औ **सोया हुया सर्व औरतैं जाता है,** औ मदसहित हुया मदरहित है औ हर्षसहित हुया हर्षरहित है; ऐसैं विरुद्ध धर्मवाला है, यातैं जाननेकूं अशक्य होनेतैं **ता मद अमदरूप देवकूं मुज (यम)तैं अन्य कौंन जाननेकूं योग्य है** ? कहिये, मुजसैं आदि लेके को-

---

२० जैसैं " जहां अग्नि होवै तहांहीं धूम होवैहै, औ जहां अग्नि न होवै तहां धूम बी होवै नहीं " ऐसैं धूम, अग्निकी अन्वय औ व्यतिरेकरूप व्याप्तिवाला होनेतैं अग्निका निश्चायक है; यातैं अग्निका लिंग है । तैसैं चेतनरूप आत्मा होवै तो चक्षुआदिक करणसैं देखना, सुनना, मननकरना, जानना; इत्यादि व्यवहार होवैहै औ चेतनरूप आत्माविना होवै नहीं; ऐसैं श्रवण आदिक व्यवहार, आत्माकी अन्वय औ व्यतिरेकरूप व्याप्तिवाला होनेतैं आत्माका निश्चायक है; यातैं आत्माका लिंग कहियेहै ॥

ईक सूक्ष्मबुद्धिवाले पंडितकूहीं यह आत्मा सम्यक् जानने योग्य है; सर्वकूं नहीं। यातैं स्थिति[31] औ गति, नित्य औ अनित्य इत्यादि, विरुद्ध अनेक धर्मयुक्त उपाधिवाला होनेतैं विरुद्ध धर्मयुक्त उपाधिवाले विश्वरूपमणिकी[32] न्यांई औ चिंतामणिकी[33] न्यांई नानारूप भासता है। यातैं विद्वान्कूं जानने योग्य है। औ "ताकूं मुजतैं अन्य कौंन जाननेकूं योग्य है?" या कहनेसैं यमराजा उपाधिके विवेकसैं रहित अविद्वान्कूं ता आत्माके दुःखसैं जाननेकी योग्यताकूं दिखावैहैं॥ औ करणोंका[34] जो उपशम, सो शयन है। जब सोये पुरुषकूं करणसैं जन्य एकदेशके[35] ज्ञानका उपशम होवैहै, जब सो ऐसैं केवल सामान्य ज्ञानवाला होनेतैं सर्व औरतैं जाते हु

---

३१ विरुद्ध अनेक धर्मवाला होनेतैं जब आत्मा दुःखसैं जाननें योग्य है, तब पंडितकूं बी सुखसैं जानने योग्य कैसैं होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं।

३२ जैसैं स्फाटिकतैं बी स्वच्छ जो विश्वरूपमणि है, सो नानारूप भासता है; परंतु सो नानाउपाधिकी संन्निधितैं नानारूप भासता है; स्वरूपसैं नानारूप नहीं। तैसैं उपाधिके वशतैं आत्मा, नानारूप भासता है, स्वरूपसैं नहीं।

३३ जैसै चिंतामणिविषै जो जो चिंतन करियेहै, सो सो चिंतारूप उपाधिका कियाहीं भासताहै, चिंतामणिके स्वरूपतैं नहीं। तैसैं, स्थिति गति, नित्य औ अनित्य, आदिक विरुद्ध अनेकधर्मवाले उपाधिनके वशतैं आत्मा विरुद्ध धर्मवान्की न्यांई भासताहै; यातैं सो उपाधितैं विवेचन किये वस्तुके देखनेवाले पंडितकूं सुखसैं जाननेयोग्य होवैहै। उपाधितैं अविवेचन किये आत्माके देखनेवाले मूढकूं तो दुःखसैंहीं जानने योग्य है यह अर्थ है।

३४ आत्माकूं स्वरूपसैं विरुद्धधर्मवान्पना नहीं है, याही अर्थकूं मूलश्रुतिकी योजनासैं दिखावैहै।

३५ "मैं मनुष्य हूं, नीलरंगकूं देखता हूं" इत्यादिरूप जो परिच्छिन्नज्ञान है, सो एकदेशका ज्ञान है।

**अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति २२**

**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूꣳ स्वाम् ॥ २३ ॥**

---

येकी न्यांई होवैहै, औ जब स्वरूपसैं स्थितहीं हुया पुरुष मन आदिकनकी गतिनविषै विशेष ज्ञानसैं स्थित होवैहै, तब ता मन आदिक उपाधिवाला होनेतै दूर जाते हुयेकी न्यांई है, परंतु सो स्वरूपसैं इहांहीं वर्त्तता है ॥ २१ ॥

**टीका:**—अब ता आत्माके विज्ञानतैं शोकका नाश होवैहै, यह दिखावै हैं:—स्वरूपसैं आत्मा आकाश जैसा है, यातैं **अशरीर** है, औ स्थितिसैं रहित अनित्य देव पितृ औ मनुष्य आदिक **शरीरनविषै स्थित** (नित्य निर्विकार) है औ **महान्** (बडा) है ॥ महत्पनेके आपेक्षिकपनेकी शंकाके हुये कहैहैं:—आत्मा **विभु** ( निरपेक्ष व्यापक ) है । ता ऐसै [36]आत्माकूं **बुद्धिमान्** पुरुष "यह आत्मा मैं हूं" ऐसैं **मानिके शोककूं पावता नहीं** । जातैं ऐसैं आत्मवेत्ताकूं शोकका संभव नहीं, यातैं वह शोकरहित होवैहै ॥ २२ ॥

**टीका:**—यद्यपि यह आत्मा दुःखसैं जाननैं योग्य है, तथापि उपायसैं सम्यक् जाननैं योग्यहीं है; ऐसैं कहैहैं:—**यह आत्मा** अनेक वेदनके **पठनसैं जाननैं योग्य नहीं**, औ ग्रंथनके अर्थकी धारणशक्तिरूप **बुद्धिसैं** बी **जाननैं योग्य नहीं**, औ **बहुत** वेदांतसैं भिन्न अन्य शास्त्रनके **श्रवणतैं** वा ब्रह्मनिष्ठ गुरुके उपदेशरहित केवल

---

३६ इहां आत्माका जो ग्रहण है, सो आपतैं अभेदभावके दिखावनेअर्थ है औ यह आत्मशब्द मुख्य प्रत्यगात्माकूं विषय करनेवालाहीं है, देहादिकनकूं विषय न करनेंवाला गौण है, यातैं इहां मुख्य आत्मशब्दके ग्रहणसैं ताके अर्थकूं आपतैं अभिन्नपना संभवैहै ।

**नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।**
**नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥२४॥**

---

वेदांत (उपनिषद्)के श्रवणसैं बी जाननैं योग्य नहीं ॥ तब कौनसे पुरुषकरि आत्मा जाननैं योग्य है? तहां कहैहैं:—जौं[३७] आपनैं आत्मा-कूंहीं यह साधक पुरुष इच्छता है, तिसीहीं इच्छनेवाले आत्मा-सैं आप आत्मा जाननैं योग्य है। जो निष्काम है सो आत्माकूंहीं इच्छता है। ता आत्मासैंहीं आत्मा जानियेहै। यह अर्थ है॥ ॥ तासैं आत्मा कैसैं जानियेहै? तहां कहियेहैः—ता आपने आत्माकी कामनावाले पुरुष-कूं यह आत्मा अपनी पारमार्थिक तनु ( अपने स्वभाव )कूं प्रकाशता है ॥ २३ ॥

**टीकाः**—और क्या है? तहां कहैहैं:—या आत्माकूं श्रुतिस्मृतिविहित निषेध किये पाप कर्मतैं अनिवर्त्त भया पुरुष पावता नहीं औ इंद्रियनकी चंचलतासैं अशांत हुया पावता नहीं औ चित्तकी एकाग्रतासैं रहित विक्षिप्तचित्तवाला हुया पावता नहीं, औ चित्तकी एकाग्रतावान् हुया बी समाधानके फलका अर्थी होनेंतैं जो चित्तके व्यापारयुक्त अशांतमनवाला है, सो बी या आत्माकूं

---

३७ परमेश्वर औ आचार्यके अनुग्रहसैं तो आत्मा प्राप्त होवैहै, ऐसैं कहैहैं। यह साधक पुरुष जा आत्माकूंहीं श्रवण मनन आदिकसैं भजता औ श्रवणादिकालविषै बी "सो मैं हूं" या उपायसैंहीं अनुसंधान (स्मरण) करता है, ताहीकूं पावताहै [ ऐसैं लक्षणासैं ग्रहण करना ]। कहिये, परमात्माके अनुग्रहसैंहीं अभेदके अनुसंधान करनेंवाले तिस साधकपुरुषकूं अनुसंधानके अनुसार आत्मभावकरिहीं परमात्मा प्राप्त होवैहै । यह अर्थ है। अथवा, विपरीतपनैंकरि या श्रुतिकी योजना है:—यह आत्मा तो अंतर्यामी रूपसैं स्थित है। सो जिसीहीं मुमुक्षुकूं भजता ( अनुग्रह करता ) है, तिसीहीं परमेश्वरके अनुग्रहकूं प्राप्त भये अभेदके अनुसंधानवाले पुरुषकूं प्राप्त होवैहै। यह अर्थ है।

**यस्य ब्रह्म च क्षत्रञ्च उभे भवत ओदनम् ।**
**मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥**

इति कठोपनिषदि द्वितीया वल्ली ॥ २ ॥

---

वता नहीं ॥ तब किस उपायसैं आत्माकूं पावता है ? तहां कहिये हैः—जो पुरुष निषेधआचरणतैं निवृत्त भया है औ इंद्रियकी चंचलतातैं रहित है, औ चित्तकी एकाग्रतावान् है, औ ता एकाग्रतारूप समाधानके फलतैं बी शांतमनवाला हुवा आचार्य्यवान् (गुरुसैं संबंधकूं प्राप्त) भया है; सो ब्रह्मके विज्ञानसैं शास्त्रविषै जैसा कहा है, तैसैं या आत्मा-कूं पावता है । यह अर्थ है ॥ २४ ॥

**टीकाः**—अब जो पुरुष ऐसा उक्त साधनसैं युक्त होवै नहीं, सो या आत्माकूं कैसैं जानै, किसी प्रकारसैं बी जाने नहीं; यह कहैहैंः—जा आत्मा-के सर्वधर्मके धारनेवाले औ सर्वके प्राणभूत (रक्षक) ब्राह्मण औ क्षत्रिय, ये दोनूं [३८]वर्ण बी भोजन-रूप है औ सर्वका नाशक मृत्यु बी जाके भोजनका शाकहीं है, भोजन होनेमैं बी असमर्थ है औ जा स्वमहिमारूप स्थान-विषै सो विश्वके संहारका कर्त्ता आत्मा वर्त्तता है, तैसै भये ता आत्माकूं प्राकृतबुद्धिवाला उक्त साधनसैं रहित हुया कौंन पुरुष ऐसैं उक्त साधनवान् पुरुषकी न्यांई जानता है ? कोईबी नहीं । यह अर्थ है ॥ २५ ॥

इति श्रीकठोपनिषद् प्रथमाध्यायगत द्वितीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ २ ॥

---

३८ जैसैं "लालरंग दौडता है," इहां लालरंगके आश्रय अश्वका अजहत्लक्षणासैं ग्रहण होवैहै; यातैं लालरंग अश्वका उपलक्षण है । तैसैं इहां ब्राह्मण औ क्षत्रिय, ये दोवर्ण सारे जगत्के उपलक्षण हैं । यातैं नामरूप औ क्रिया स्वरूप सारा जगत् जो आत्माका चावलका भोजन है, औ सर्वका संहारकर्त्ता जो काल सो, अन्न होनेंमें बी असमर्थ है, किंतु शाकस्थानीय है । जिस अपने महिमाविषै सो विश्वका संहारकर्त्ता वर्त्तता-

अथ तृतीयवल्ली ॥ ३ ॥

**ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे । छायाऽऽतपौ ब्रह्मविदो वदन्ति प- ञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥**

---

**अथ प्रथमाध्यायगत तृतीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका ॥ ३ ॥**

टीकाः—"ऋतकूं पान करनेवाले" इत्यादिरूप या तृतीय वल्लीका द्वितीय वल्लीसैं संबंध यह है किः—विद्या औ अविद्या ये दोनूं, नाना विरुद्ध फलवालियां हैं, ऐसैं पूर्व कहनेकूं आरंभ करी हैं; परंतु वे फलसहित जैसीयां हैं, तैसीयां निर्णय करी नहीं; यातैं तिनके निर्णय अर्थ रथके रूपककी कल्पना या तीसरी वल्लीविषै कहियेगी। तैसैं हुये सुखसैं समज होवैगी। ऐसैं प्राप्ता (प्राप्त होनेवाला) औ प्राप्य (प्राप्त होनैं योग्य) अरु गंता (गमन करनेवाला) औ गंतव्य (जहां गमन करिये सो), इनके विवेक अर्थ रथके रूपकद्वारा दोनूं आत्मा (जीवचेतन औ परमात्मचेतन) कहनेकूं आरंभ करिये हैंः—जीव औ परमात्मा, ये दोनूं अवश्य होनेहारे होनेतैं आपके किये कर्मका फलरूप जो ऋत (सत्य) ताकूं पीवते (भोगते) हैं। यद्यपि तिनविषै एक (जीव) कर्मफलकूं भोगता है, अन्य (ईश्वर) नहीं; तथापि बुद्धि उपाधिरूप पात्रके संबंधसैं [३९] छत्रीके न्यायसैं (छत्रवाले पुरुषके दृष्टांतसैं) दोनूं पान करैहैं; ऐसैं

---

है, तिसरूपवाले ताकूं अनधिकारी कौंन जानेगा; कोईबी नहीं। ऐसा अर्थ है।

३९ जैसैं दोपुरुष मार्गविषै जाते होवैं, तिनके मध्य एकके हाथमैं छत्र है औ दूसरेके हाथमैं छत्र नहीं; तथापि तिनकूं दूरसैं देखनैंवाले पुरुष "ये छत्रवाले पुरुष जाते हैं" ऐसैं दोनूंविषै छत्रवानूपनैंका व्यवहार करैहैं। तैसैं कर्मके अवश्यभावी फलरूप ऋत (सत्य)का पानकर्त्ता

कहियेहैं:—औ या शरीररूप लोकविषै बुद्धिरूप गुहामैं प्रवेशकूं पायेहैं औ देहके आकाशकी स्थितिकी अपेक्षासैं उत्कृष्ट जो परब्रह्म-का स्थान-रूप हृदयाकाश है, तिसविषै प्रवेशकूं पायेहैं। औ वे दोनूं छाया (प्रतिबिंब) औ आतप (सूर्यके धूप)की न्यांई विलक्षण हैं। तिनकूं संसारी औ असंसारीपनैसैं ब्रह्मवेत्ता कहते हैं॥ केवल कर्मरहित पुरुष कहतेहैं ऐसैं नहीं, किंतु पंचाग्निवाले ग्रहस्थ बी कहतेहैं औ जिनोंनैं तीनवार नाचिकेत नामक अग्नि संपादन किया है, ऐसै जे त्रिणाचिकेत पुरुष हैं वे बी कहतेहैं ॥१॥

---

प्रथम एक सिद्ध भया, दूसरेकी योजना किये हुये लोकविषै समानस्वभाववाले दूसरेके श्रवण हुये प्रथमकी प्रतीतिके देखनेतैं, चेतनपनैंकरि समानस्वभाववाला परमात्माही दूसरा प्रतीत होवैहै । सो कर्मफलका भोक्ता नहीं है, किंतु कर्मफलका दाता है; तौबी ताकूं छत्रवाले पुरुषके दृष्टांतकरि उपचारतैं (आरोपतैं) कर्मफलरूप ऋतका पात्रपना है। यह अर्थ है।

४० हृदयाकाशविषै जातैं परब्रह्म लक्षणासैं जानियेहै, यातैं सो परब्रह्मका उत्कृष्टस्थान कहियेहै।

४१ जीव, जब अविद्यारूप होवै तब दृष्टांतके सूचक छायाशब्दसैं वृक्षादिककी छायाका ग्रहण होवै, परंतु अविद्यारूप जीव नहीं; किंतु बुद्धि वा अविद्या उपाधिविषै ब्रह्मका प्रतिबिंबरूप जीव है, यातैं इहां छायाशब्दसैं दर्पण आदिकविषै पुरुषके प्रतिबिंबकी न्यांई जलआदिकविषै सूर्य्यके प्रतिबिंबका ग्रहण है। औ आतप शब्दसैं सर्वव्यापी सूर्य्यके सामान्य प्रकाशका ग्रहण है। तिनकी न्यांई प्रतिबिंबरूप जीव औ अधिष्ठान ब्रह्मरूप परमात्मा, ये दोनूं विलक्षण हैं। इहां विशेषप्रकाशरूप सूर्य्यमंडलस्थानी ब्रह्ममैं अध्यस्त मायाविषै प्रतिबिंबरूप ईश्वर जानना। सो परमात्माके अंतर्गतहीं है। यह तात्पर्य्य है।

४२ गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य औ अवसथ्य; ये पंचअग्नि जिनकूं हैं, ऐसै गृहस्थ अथवा स्वर्गलोक मेघ पृथ्वी पुरुष औ स्त्री, इन पांचविषै जे अग्निकी दृष्टिकूं करतेहैं, ऐसै जो अग्निहोत्रके अधिकारी गृहस्थ, वे पंचाग्निवाले हैं।

**यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्। अभयं तितीर्षतास्पारं नाचिकेतꣳशकेमहि ॥ २ ॥**

**आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु। बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३॥**

---

**टीकाः**—[४३]जो-यजन करनेवाले कर्मिष्ठन-का सेतु ( पांज )की न्यांई सेतु है; दुःखके तरणे अर्थ होनेतैं। ऐसा जो नाचिकेत नामक अग्नि है, ता-कूं हम जाननेकूं औ संपादन करनेकूं समर्थ हैं। किंवा जो भयरहित औ संसारके तरनेंकी इच्छावाले पुरुषन-का पार है, औ जो ब्रह्मविदनका परम आश्रय अक्षर ( अविनाशी) आत्मा या नामवाला ब्रह्म है, ताकूं हम जाननेकूं समर्थ हैं। या वाक्यका अर्थ यह है किः— पर औ अपरब्रह्म ये दोनूं, कर्मिष्ट औ ब्रह्मवेत्ताके क्रमतैं आश्रय जानने योग्य हैं। "ऋतं पीवतेहैं" या प्रथम ऋचासैं इन दोनूंकाहीं कहनेका आरंभ किया है ॥ २ ॥

**टीकाः**—तिन दोनूंविषै जो उपाधिका किया संसारी जीव, विद्या औ अविद्या (कर्म औ ज्ञान) विषै अधिकारी है; ताके मोक्षके तांई गमन अर्थ औ संसारके तांई गमन अर्थ तिन दोनूंके तांई गमन

---

४३ ननु, अबके समयमैं ब्रह्मके वेत्ता नहीं हैं औ पंचाग्निके वेत्ता बी नहीं हैं; काहेतैं, लोकविषै तिनकी अप्रतीतितैं ? यह आशंका करिके ऐसें नहीं माननेमैं पूर्वके विद्वानोके अनुभवका विरोध कहैहैं।

४४ यद्यपि पूर्वके विद्वानोका प्रभावके अतिशयतैं ब्रह्मवेत्तापनेसैं आदिलेके धर्म संभवैहैं; तथापि अल्पबुद्धिवाले आधुनिकपुरुषनका धर्म संभवै नहीं ? यह आशंका करिके, आधुनिकपुरुषनकूं बी चेतन होनेतैं स्वाभाविक ज्ञाता होनेंकी योग्यता है; या अभिप्रायसैं श्रुतिवाक्यका तात्पर्य कहैहैं।

**इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान्।**
**आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥**

---

विषै साधनरूप रथकी कल्पना करियेहै; ऐसैं कहैहैंः-तिन जीव औ परमात्मा दोनूंविषै कर्मके फलके भोक्ता संसारी आत्माकूं रथका स्वामी जान औ शरीरकूं तो रथहीं जान । काहेतैं शरीरकूं रथमैं जुडे अश्वके स्थानी इंद्रियनसैं खीच्या हुया होनेतैं औ निश्चयरूप बुद्धिकूं तो सारथि जान । काहेतैं सारथिरूप लेजानेवालेकी मुख्यतावाले रथकी न्यांई शरीरकूं बुद्धिरूप लेजानेवालेकी मुख्यतावाला होनेतैं । औ जातैं सर्व देहगत कार्य बुद्धिसैंहीं करनेयोग्य है, यातैं बुद्धिकूं सारथि जान । संकल्प अरु विकल्प आदिक वृत्तिरूप मनकूं, अश्वनके बांधनेकी रस्सीहीं जान । जातैं रस्सीसैं अश्वनकी न्यांई मनसैं ग्रहण किये श्रोत्रादिक इंद्रिय विषयनमैं प्रवृत्त होवैहैं, यातैं मनकूं रस्सी जान ॥ ३ ॥

**टीकाः**—रथकी कल्पनाविषै कुशल जे पुरुष हैं, वे चक्षु आदिक इंद्रियनकूं अश्व (घोडे) कहतेहैं। काहेतैं, रथके खीचनेवाले अश्वनकी न्यांई शरीरके खीचनेवाले होनेतैं । अश्वहोनेंकरि कल्पना किये तिन इंद्रिय-विषैहीं रूपादिक विषयनकूं मार्ग जान । औ शरीर इंद्रिय अरु मनकरि सहित आत्मा-कूं विवेकी जन भोक्ता (संसारी ) ऐसैं कहतेहैं । केवल आत्माकूं भोक्तापना नहीं है, किंतु बुद्धि आदिकका कियाहीं ताकूं भोक्तापना है । तैसैं "[बुद्धिकूं ध्यावते औ लीला करते हुये आत्मा,] ध्यान करते हुयेकी न्यांई औ लीला ( भोग ) करते हुयेकी न्यांई भासताहै" इत्यादि अन्यश्रुति बी केवल आत्माके अभोक्तापनेकूंहीं दिखावैहै । ऐसैं हुये आगे कहनेकी रथकी कल्पनासैं वैष्णवपदकी आत्मभावसैं प्राप्ति संभवैहै; औ ऐसैं नहीं माने हुये आत्माके भोक्तापनेरूप स्वभा-

**यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।**
**तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वाइव सारथेः॥ ५॥**
**यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।**
**तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ६**
**यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।**
**न स तत्पदमाप्नोति सꣳसारश्चाधिगच्छति ॥ ७॥**

---

वके अनिवारणतैं वैष्णवपदकी आत्मभावसैं जो आगे प्राप्ति कही है, सो संभवै नहीं ॥ ४ ॥

**टीकाः**—तहां ऐसैं हुये, रथके चलावनेविषै लोकप्रसिद्ध सारथिकी न्यांई जो बुद्धि नामवाला सारथि प्रवृत्तिविषै औ निवृत्तिविषै अविवेकी होवैहै, औ एकाग्रतारहित रस्सीस्थानी मनसैं सदा युक्त होवैहै, ता अकुशलबुद्धिरूप सारथि-के अश्वस्थानी इंद्रिय लोकप्रसिद्ध सारथिके अस्वाधीन किये दुष्टअश्वनकी न्यांई विषयसैं निवारण करनेकूं अयोग्य होवैहैं ॥ ५ ॥

**टीकाः**—जो फेर पूर्वउक्त सारथिसैं विपरीत विवेकवान् सारथि होवैहै औ एकाग्रतावाले मनसैं सदायुक्त होवैहै, ता बुद्धिरूप सारथि-के अश्वस्थानी इंद्रिय लोकप्रसिद्ध सारथिके स्वाधीन किये श्रेष्ठ अश्वनकी न्यांई प्रवृत्ति करावनेकूं वा निवृत्ति करावनेकूं शक्य होवैहैं ॥ ६ ॥

**टीकाः**—तिन दोनूंविषै पूर्वउक्त विवेकरहित बुद्धिरूप सारथिवालेकूं यह फल होवैहै; ऐसैं कहैहैंः—जो विवेकरहित बुद्धिरूप सारथिवाला होवैहै औ मनकी एकाग्रतासैं रहित औ ताहीतैं सदाहीं मलिन ऐसा रथका स्वामी, सो ता पूर्वउक्त जो अक्षरब्रह्मरूप परमपद है, ताकूं ता सारथिसैं पाहता नहीं। केवल ता पदकूं पावता नहीं इतनाहीं नहीं, किंतु जन्ममरणरूप संसारकूं पावताहै॥ ७

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदाशुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८ ॥
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनःपारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम्पदम् ॥९॥
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ १० ॥

---

टीकाः—जो दूसरा विवेकवान् सारथिसैं युक्त विद्वान्, औ एकाग्रमनवाला, औ याहीतैं सदा शुचि (शुद्ध) जो रथका स्वामी होवैहै, सो तो ता पदकूं पावता है। सो पद कैसा है? प्राप्त भये जा पद-सैं पतनरहित हुया फेर संसारविषै जन्मता नहीं ८

टीकाः—सो पद कौन है? तहां कहैहैं:—जो तिनविषै विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथिवाला औ एकाग्रचित्तवाला हुया पूर्वउक्त शुद्ध विद्वान् मनुष्य है, सो संसारकी गतिके परब्रह्मरूपहीं पावने योग्य पारकूं, पावता है, औ सर्व संसारके बंधनोंतैं मुक्त होवैहै। सो व्यापक ब्रह्म परमात्मा वासुदेव नामवाले विष्णुका परमपद (उत्कृष्टस्थानरूप तत्त्व) है ता पदकूंहीं विद्वान् पावताहै ॥ ९ ॥

टीकाः—अब जो पद गंतव्य (जहां गमन करिये ऐसा) है, ताकी "इंद्रिय स्थूल है" इहांसैं आरंभ करिके सूक्ष्मताके अधिक न्यूनपनैके क्रमकरि प्रत्यगात्मभावसैं प्राप्ति करने योग्य है, या अर्थ-

---

४५ इहां यह भाव है:—जो आंतरभाव है, सो मोक्ष है। जो बाह्यभाव है, सो बंध है। कारणविषै सदा आंतरभाव है, औ कार्यविषै बाह्यभाव है। यातैं कार्यकी अपेक्षासैं आंतर जो कारण है, ताकेविषै जो इस परमात्माकी दृष्टि है, सो मोक्ष है। तिनमैं बी जो परम कारणभाव है, सो मुख्य मोक्ष है औ अन्य गौण है। ता परम कारणभावकी प्राप्तिअर्थ इहां अन्य कारणोंकी परंपराकूं दिखावैहैं।

वाले इस दोनूं ऋचाके समूहका आरंभ करियेहैः—प्रथम इंद्रिय स्थूल हैं। तिन अपनें कार्यरूप इंद्रियनतैं जिन अर्थोनैं आपके प्रकाश करनें अर्थ वे इंद्रिय आरंभ कियेहैं, ऐसै जे शब्दादिक विषयभावकूं प्राप्त भये सूक्ष्मभूतरूप अर्थ हैं, वे पर ( सूक्ष्म वडे औ अध्यासतैं प्रत्यगात्मारूप ) हैं। औ तिन अर्थनतैं मन पर ( अतिशय सूक्ष्म बडा औ अध्यासतैं प्रत्यगात्मारूप ) है। इहां मैं शब्दका वाच्य मनका आरंभक ( जनक ) सूक्ष्मभूत ( अन्नरूप पृथ्वी ) है काहेतैं, ताकूं संकल्प विकल्प आदिकका आरंभक होनेतैं। औ मनतैं वी बुद्धि पर ( अतिशय सूक्ष्म औ अतिशय वडी औ अध्यासतैं प्रत्यगात्मारूप है। इहां बुद्धिशब्दका वाच्य

---

४६ ननु, शब्दादिक विषयरूप अर्थनतैं मनका आरंभक सूक्ष्मभूत पर है, तातैं बुद्धिका आरंभक सूक्ष्मभूत पर है, यह कथन युक्त नहीं। काहेतैं उपादान जो है सो कार्यकी अपेक्षासैं संकुचित ( मिलित ) अवयववाला व्यापक औ अविनाशीस्वरूप प्रसिद्ध है, जैसैं घटादिकका उपादान मृत्तिका है, तैसैं इहां सूक्ष्मभूतनके परस्पर कार्यकारणभावविषै प्रमाण नहीं है। तहां कहैहैंः—यह तेरा कथन सत्य है, तथापि विषय औ इंद्रियके व्यवहारकूं मनके अधीन देखनेतैं, मन, प्रथम व्यापक ( पर ) कल्पियेहै। "सो मन परमार्थतैंहीं आत्मरूप है" ऐसा केइक वादीनका मत है, ताके निषेध अर्थ मनशब्दका वाच्य सूक्ष्मभूत कहा है। "हे सौम्य ! मन, अन्नमय है" इत्यादि श्रुतितैं, मनके भौतिकपनैके जाननेंतैं अन्नके भाव अभावकरि मनके वढनें औ घटनेके देखनेतैं, सो मन भूतनका कार्यहीं है।

४७ तिस संकल्पविकल्परूप मनकूं निश्चयकरि नियममैं रहनेंयोग्य होनेंतैं बुद्धि मनतैं पर है।

४८ बुद्धिहीं आत्मा है, ऐसा केइक वादीनकूं अभिमान है; ताके दूर करने अर्थ अब कहैहैं। इहां यह भाव हैः—अंतर इंद्रियरूप बुद्धिकूं कार्य होनेतैं भौतिकपना सिद्ध है, औ ता बुद्धिका करणपना तो "अपनी बुद्धिसैं मैं जानता हूं" या अनुभवतैं सिद्ध है। तातैं भूतनके अवयवरूप आकारवाली

**महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।**
**पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥११॥**

---

निश्चय आदिक बुद्धिके धर्मका आरंभक सूक्ष्मभूत है । औ बुद्धितैं, सर्व प्राणिनकी बुद्धिका प्रत्यगात्मारूप होनैतैं, आत्मा औ सर्वसैं बडा होनेतैं महान् ऐसा जो बोध अबोधरूप अव्यक्त (अज्ञान)तैं प्रथम उपज्या सूत्रात्मा नामवाला हिरण्यगर्भका तत्त्व (स्वरूप)महान् आत्मा है; सो पर (बुद्धितैं अतिशय सूक्ष्म औ अतिशय वडा औ अध्यासतैं प्रत्यगात्मारूप) है; ऐसैं कहियेहै ॥ १० ॥

**टीकाः**—औं या **महान्** आत्मा-तैं वी सर्व जगत्का वीजभूत औ अप्रकटभये नामरूपका स्वरूप औ सर्व कार्य्यकारणकी शक्तिनका मिश्रभावरूप औ अव्याकृताकाश आदिक नामका वाच्य औ वटवीजविषै वटवृक्षके उत्पत्ति करनेकी शक्तिकी न्यांई परमात्माविषै ओतप्रोतभावसैं आश्रित जो **अव्यक्त** है, सो **पर** ( अतिशय

---

अर्थ आदिकनविषैहीं परमपुरुषार्थके दिखावनेकी इच्छासैं उत्तर उत्तर पर औ अपरपनैंकी कल्पना करियेहै । परंतु प्रयोजनके अभावतैं औ वाक्यके भेदकी प्राप्तितैं अर्थ आदिकनका परपना प्रतिपादन करनेकूं वांच्छित नहीं ।

४९ सूत्र नामवाला जो हिरण्यगर्भका तत्त्व है, सो सुर नर औ तिर्यक् आदिककी बुद्धिनका धारणेवाला होनेतैं औ निरंतर गति करनैतैं आत्मा कहियेहै । सो ज्ञानशक्ति औ क्रियाशक्तिवाला होनेतैं बोध अबोधरूप है । अथवा, अधिकारी पुरुषनके अभिप्रायसैं बोधरूप है औ अज्ञानका प्रथम परिणाम अपंचीकृत भूतरूप जो उपाधि, तिसरूपसैं अबोधरूप है ।

५० शब्द औ अर्थसंबंधी सर्व शक्तिनके लक्षणकी नित्यताके निर्वाहअर्थ प्रलयविषै सर्व कार्य औ कारणकी शक्तिनकी स्थिति माननी योग्य है । तिन शक्तिनका मिलापहीं मायाका स्वरूप होवैहै । अव्यक्त नामवाले ब्रह्मकूं असंग होनेतैं, तातैं विलक्षण ऐसा शक्तिनका मिलापरूप अव्यक्त

सूक्ष्म औ सर्वसैं बडा औ चेतनके तादात्म्य अध्यासतैं प्रत्यगात्मारूप)है । ता अव्यक्ततैं सर्वकारणोका कारण होनेतैं औ मुख्यप्रत्यगात्मारूप होनेतैं जो अतिशय सूक्ष्म औ बडा है, याहीतैं सर्वके पूरणतैं पुरुष कहियेहै; ऐसा जो प्रत्यगात्मासैं अभिन्न परमात्मारूप **पुरुष है, सो पर** (अव्यक्ततैं अतिशयसूक्ष्म औ बडा औ परमार्थसैं सर्वका अंतरात्मारूप) **है** ॥ अब ता पुरुषतैं अन्यपरके प्रसंगकूं निवारण करते हुये कहैहैं:—जातैं केवल चिद्घन पुरुषतैं कोई बी अन्यवस्तु **पर नहीं है**, तातैं सूक्ष्मपनैं महत्पने औ प्रत्यगात्मापनैंकी **सो** (पुरुषरूप) **अवधि है** । जातैं इहांहीं इंद्रियनतैं आरंभ करिके सूक्ष्मपनैं आदिककी समाप्ति होवैहै यातैं यह अवधि है । याहीतैं गमन करनेंहारे सर्वगतिवाले संसारी जीवनकी **सो** (पुरुषरूप) **श्रेष्ठ गति है**, "जाके ताईं जायके पीछे लौटते नहीं, सो मेरा परमधाम है" या गीतास्मृतितैं ॥ ११ ॥

---

है । तिस अव्यक्तकूं सांख्यमतविषै मानें हुये प्रधानतैं विलक्षण कहनेंअर्थ परमात्माविषै ओतप्रोतभावसैं आश्रित कहा । औ शक्ति होनेकरि अद्वितीयभावका अविरोधीपना कहने अर्थ वटबीजविषै वटवृक्षकी जनकशक्तिकी न्याईं यह कहा । जैसैं भावीवटवृक्षकी शक्तिवाला वटका बीज अपनी शक्तिसैं द्वैतसहित नहीं कहियेहै; तैसैं मायाशक्तिसैं ब्रह्म बी द्वैतसहित नहीं कहियेहै । औ सत्पनैं आदिक रूपसैं निरूपण किये हुये तिसकी व्यक्ति (स्वरूप) नहीं है, यातैं अव्यक्त कहियेहै । तातैं अव्यक्तशब्दतैं बी मायाके स्वरूपकूं अद्वैतका अविरोधीपना देखना । सर्वप्रपंचका कारण जो अव्यक्त है, ताकूं परमात्माके अधीन होनैंतैं परमात्माका उपचारसैं कारणपना कहियेहै । परंतु अव्यक्तकी न्याईं विकारी होनेंकरि औ अनादि होनेकरि कारणपना नहीं । औ अव्यक्तकूं जो परतंत्रपना है, सो ताकी भिन्नसत्ताविषै प्रमाणके अभावतैं आत्माकी सत्तासैंहीं सत्तावाला होनैंतैं है यह अर्थ है ।

**एष सर्व्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।**
**दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः १२**

---

**टीकाः**—ननु, परमात्मारूप पुरुष जब गतिरूप है, तब ताकूं अगतिरूपसैं बी होना चाहिये। कैसैं कि, जातैं फेर जन्मता नहीं। तहां कहैहैं:— यह दोष नहीं है । काहेतैं, परमात्मा सर्वका अंतरात्मा होनेतैं गतिरहितहीं है, तौबी उपचार ( आरोप )सैं गतिरूप कहिये है। ताका अंतरात्मापना इंद्रिय मन औ बुद्धितैं पर होनेकरि दिखाया। औ याके तांई जो गमन करनेवाला गंता जीव है, सो यह अंतरात्मासैं भिन्न अनात्मारूप परवस्तुकूं भ्रांतिज्ञानसैं जाता नहीं। तैसैं "संसारके पारके तांई गये जे पुरुष, वे संसारके मार्गनविषै गतिरहित होवैहैं" इत्यादि श्रुति कहतीहै। तैसैं हुये सर्वके अंतरात्मापनैकूं दिखावैहैं:— यह पुरुषरूप आत्मा ब्रह्मासैं आदि लेके स्तंब ( तृणके गुच्छ ) पर्यंत सर्व भूतनविषै गूढ ( देखने सुननें आदिक कर्मवाला भया, अविद्या औ मायासैं ढांप्या ) हुया किसीकूं बी आत्मा ( अपनाआप ) होनेकरि [५१]प्रकाशता नहीं। अहो ( बडा आश्चर्य है कि )! यह माया, अति गंभीर जाननेकूं अशक्य औ विचित्ररूप है। जातैं यह सर्व जंतु परमार्थतैं परमार्थरूप हुयाबी या प्रकारसैं बोध किये हुये "मैं परमात्मा हूं"

---

५१ इहां यह शंका है:—जब आत्मा प्रकाशता नहीं. तब नहीं है ? यह कथन बनै नहीं:—काहेतैं, आत्माकूं दर्शन श्रवण आदिक कर्मरूप लिंगवाला होनेंतैं। औ जीवकूं स्वप्रकाश ब्रह्मात्मारूप होते बी जो यह ब्रह्मस्वरूपकी अप्रतीति है, सो किसी बी प्रतिबंधनैं करी होवेगी ऐसैं कल्पना करियेहै। सो प्रतिबंध अवतलकी वस्तुके ज्ञानतैं निवृत्त भया नहीं। काहेतैं वस्तुके ज्ञानविना ताकी निवृत्तिके हुये ज्ञानकी प्रतिपादक श्रुतिके बाधका प्रसंग होवैगा; तातैं अविद्याहीं प्रतिबंध करनेवाली है; यह जनावनेंअर्थ आत्माकूं अविद्या औ मायासैं ढांप्या हुया कहा।

**यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ १३ ॥**

---

ऐसैं ग्रहण करता नहीं, किंतु घटादिककी न्यांई आपके दृश्य हुये वी देह औ इंद्रियआदिकके संघातरूप अनात्माकूं उपदेशविना वी "मैं अमुकका पुत्र हूं," ऐसै आत्मापनैकरि ग्रहण करताहै। यातैं यह सर्व लोक निश्चयकरि परमेश्वरकी मायासैंहीं मोहकूं पाया हुया भ्रमताहै; ऐसैं गीतास्मृतिविषै श्रीकृष्णनैं कहाहैः– "योगमायासैं आवृत्त भया जो मैं, सो सर्वकूं प्रकाशमान नहीं हूं" इत्यादि वाक्यसैं॥ ॥ ननु, "आत्मा प्रकाशता नहीं," यह जो तुमनैं इहां कहा, यह "बुद्धिमान् आत्माकूं मानिके शोककूं पावता नहीं" या द्वितीयवल्लीकी बावीशवीं ऋचासैं विरुद्ध है। यह कथन बनै नहीं:– काहेतैं, इहां संस्काररहित बुद्धिवालेकूं जाननेकूं अयोग्य होनेतैं "प्रकाशता नहीं" ऐसैं कहा औ, संस्कारयुक्त अरु एकाग्रपनैंकरि युक्त जो सूक्ष्म वस्तुके निरूपणपरायण बुद्धि है, तासैं "इंद्रियनतैं अर्थ पर हैं" इत्यादि प्रकारकरिं सूक्ष्मताकी अवधिके देखनेसैं परम सूक्ष्मवस्तुकूं देखनेके स्वभाववाले सूक्ष्मदर्शी पंडितनसैं तो [सर्वभूतनविषै गूढ हुयावी आत्मा] [५२]देखियेहै॥ १२॥

**टीकाः**—याकी प्राप्तिके उपायकूं कहैहैंः—प्राज्ञ जो विवेकी, सो

---

५२ निदिध्यासनके परिचयसैं एकाग्र भया जो अंतःकरण, सो जब [न]हकारी होवै, तब ताकेसहित भये महावाक्यतैं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी [जो] बुद्धिकी वृत्ति उपजेहै, तिसविषै आविर्भावकूं पाया जो ब्रह्मभाव सो स्व[रू]पतैं अपरोक्ष होनेकरि व्यवहार करियेहै। ऐसैं आत्माके दृश्यपनैका उ[प]चार करियेहै । जातैं जो जिसके किये व्यवहारका विषय है सो तिस[का] दृश्य है यह प्रसिद्ध है। यातैं बुद्धिके किये ज्ञानरूप व्यवहारका विषय [है] आत्मा, सो आरोपसैं बुद्धिका दृश्य कहियेहै; परंतु परमार्थसैं तो स्वप्रका[श] होनेतें आत्मा किसीका वी दृश्य बनै नहीं।

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥**

---

(वाणीसैं ग्रहण किये सर्व इंद्रियन)कूं मनविषै लय करे औ ता मन-कूं ज्ञान(प्रकाश)स्वरूप आत्मा(बुद्धि)विषै लय करे। जातैं बुद्धि, मनआदिक करणोंकूं प्राप्त होती है, यातैं तिनके अंतर वर्तमान आत्मा कहियेहै। औ ज्ञान-रूप बुद्धिकूं प्रथम उत्पन्न भये हिरण्यगर्भनामवाले महत्तत्वरूप महान्आत्माविषै लय करे। अर्थ यह जो प्रथम उपजे महान्आत्माकी न्यांई अपनी बुद्धिकूं स्वच्छस्वभाववाली संपादन करे। औ ता महान्आत्माकूं सर्व विशेष शून्य-रूपवाले क्रियारहित सर्वांतर सर्व बुद्धिवृत्तिके साक्षी शांतरूप मुख्य आत्माविषै लय करे ॥ १३ ॥

**टीकाः**—जैसैं[५३] मृगजल औ रज्जुका सर्प, औ आकाशका मल; ये तीनों मरुभूमि। रज्जु औ आकाशके स्वरूपके दर्शनसैंहीं विलय होवै हैं, ऐसैं पुरुषरूप आत्माविषै मिथ्याज्ञानसैं भासमान जो क्रिया कारक औ फलरूप अरु नामरूप कर्म, यह तीन भांतिका प्रपंच है, ता सर्वकूं अपने आत्माके यथार्थस्वरूपके ज्ञानसैं विलय करिके पुरुष जातैं स्वरूपविषै स्थित शांत औ कृतकृत्य होवैहै; यातैं ता स्वस्वरूपके दर्शनअर्थ, हे अनादि अविद्याविषै सोये हुये जंतु! तुम ऊठो। कहिये, आत्मज्ञानके सन्मुख होवो औ सर्व अनर्थकी बीज हुयी घोररूप अज्ञानमय निद्रातैं जागो कहिये, ताका नाश करो॥ ॥ कैसैं नाश करैं? तहां कहैहैंः—ता स्वरूपके

---

५३ ऐसैं क्रमकरि विषयनविषै दोषके दर्शनतैं औ अभ्यासतैं, बाह्यकरण औ अंतःकरणके व्यापारके विलय हुये; लयकर्त्ताकूं कौंन पुरुषार्थ सिद्ध होवैहै? यह आशंका करिके इहांसैं कहैहैं।

**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यम-गन्धवच्च यत् । अनाद्यनन्तम्महतः परन्ध्रुवं नि-चाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥**

---

जाननेवाले श्रेष्ठ आचार्य-नके तांई समीप जायके तिनोंनैं उप-देश किये सर्वांतरवर्त्ती आत्माकूं "मैं हूं," ऐसैं जानो ॥ अब जाननेयोग्य स्वरूपकूं सूक्ष्मबुद्धिका विषय होनेतैं, ता ज्ञानरूप सूक्ष्म बुद्धिकूं यह सुलभ है, यातैं विशेष यत्न क्या करिये; ऐसे विसरण करनेयोग्य नहीं, किंतु दुर्लभ जानिके यामैं यत्न किया चाहिये । ऐसैं श्रुति । माताकी न्यांई कृपादृष्टिसैं कहेहैः—यह सूक्ष्म बुद्धिरूप ज्ञानमार्ग, किसकी न्यांई है ? तहां कहियेहैः—केशके छेदक नाईके शस्त्रकी अग्रभागरूप जो धारा सो पाषाणके ऊपरि घसीटनेसैं तीक्ष्ण करी हुयी दुःखसैं नाश होनेवाली होवैहै, सो जैसैं पगनसैं गमन करनेयोग्य नहीं । कहिये, जैसैं ताके ऊपर पगनसैं चलना कठीन है; तैसैं बुद्धिमान् पुरुष या तत्त्वज्ञा-नरूप मार्गकूं दुःखसैं संपादन करनेयोग्य होनेतैं दुर्गम कहतेहैं ॥१४॥

टीकाः—जाननेयोग्य वस्तुकूं अतिसूक्ष्म होनेतैं ताकूं विषय क-रनेवाले ज्ञानमार्गकी दुःखसैं संपादन करनेकी योग्यता कविजन क-हतेहैं । यह पूर्वकी चौदावीं ऋचाका अभिप्राय है । तहां यह आकांक्षा होवैहै किः—सो जाननेयोग्य वस्तुका अतिसूक्ष्मपना कैं-सैंहै ? तहां कहियेहैः—शब्द स्पर्श रूप रस गंध, इन पांच गुणनसैं युक्त औ सर्व इंद्रियनकी विषय हुयी यह पृथिवी प्रथम स्थूल है। ऐसैं शरीर बी स्थूल है । औ जलसैं आदिलेके आकाशपर्य्यंत चारि भूतनविषे तिन गंधादिक गुणोंके मध्य एक एक गुणके निवारणसैं सूक्ष्मपना महत्पना शुद्धपना औ नित्यपना, इत्यादिक धर्मनका अधिक न्यूनभाव देख्याहै । वे स्थूलपनै आदिकके कारण गंधसैं

आदिलेके शब्दपर्यंत सर्वहीं गुण, जिस निर्गुण परमात्माविषै नहीं हैं, ताका सूक्ष्मपना औ महत्पना आदिरूप सर्वसैं अधिकपना है। यामैं कैंया कहना हैं? ऐसैं यह श्रुति दिखावैहैः—जो ब्रह्म शब्द-रहित; स्पर्शरहित, रूपरहित, औ अव्यय है. तैसैं रसरहित नित्य औ गंधरहित है॥ ऐसैं कहा जो ब्रह्म सो अव्यय कैसैं है कि? जो वस्तु शब्दादिक गुणवाली है सो नाश होवैहै। यह ब्रह्म जातैं शब्दादि गुणरहित है, यातैं अविनाशी होनेतैं अव्यय है, औ याहीतैं नित्य है। जो वस्तु नाश होवैहै, सो अनित्य है। यह ब्रह्म जातैं नाश होवै नहीं, यातैं नित्य है औ अनादि है। कहिये कारणसैं रहित है। जो वस्तु उत्पत्तिवाला है, सो कार्य होनेतैं अनित्य हैं; यातैं कारणविषै लीन होवैहै, जैसैं पृथिवी आदिक हैं। औ यह ब्रह्म तो सर्वका कारण होनेतैं कार्य नहीं औ अकार्य हो-नेतैं नित्य है औ यह जाकेविषै लीन होवै ऐसा ताका कारण नहीं है, यातैं अनादि है। तैसैं अनंत है। कहिये कार्यरूप अंतसैं र-हितहै। जैसैं कदली आदिक वृक्षका फलआदिक कार्यके उपजा-वनेसैं बी अनित्यपना देख्या है; तैसैं ब्रह्मकूं अंतवान्पना नहीं, यातैं बी ब्रह्म नित्य है। औ सो ब्रह्म हिरण्यगर्भकी बुद्धिरूप म-हत्तत्वतैं विलक्षण है। काहेतैं, नित्यज्ञानस्वरूप होनेतैं, औ सर्व भूतोंका आत्मा होनेतैं ब्रह्म सर्वका साक्षी है। "यह सर्वभूतन-विषै गूढ है" इत्यादिरूप वाक्यसैं पूर्व कहाहै। औ सो ब्रह्म ध्रुव है। कहिये, निर्विकार नित्य है, पृथिवी आदिककी न्यांई आपे-क्षिक नित्य नहीं। ता या प्रकारके ब्रह्मरूप आत्मा-कूं जानिके अविद्या काम कर्मरूप मृत्युके मुखतैं छूटता है॥ १९॥

---

५४ पृथ्वी आदिकविषै जितनी जितनी गुणोंकी न्यूनता है, तितनी ति-तनी अधिक न्यूनपनैकरि सूक्ष्मता देखियेहै। परमात्माविषै तो गुणोंके अ-त्यंत अभावतैं सर्वसैं अधिक सूक्ष्मता सिद्ध होवै है। ऐसैं इहां कहैहैं॥

**नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तꣳ सनातनम्। उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते १६**

**य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि। प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते। तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥**

---

**इति प्रथमाध्यायगत तृतीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका ३**

**इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥**

---

**टीकाः**—अब प्रसंगविषै प्राप्त भये ज्ञानकी स्तुतिअर्थ श्रुति कहतीहैः—जो बुद्धिमान् पुरुष या नचिकेतासैं प्राप्त भये पुरातन तीनवल्लीरूप यमराजानैं कहे आख्यानकूं वेदका भाग होनेतैं ब्राह्मणोंतैं पढिके औ ब्रह्मवेत्ता आचार्य्यनतैं सुनिके धारता है सो ब्रह्मरूप लोकविषै महिमाकूं पावता है। अर्थ यह जो सर्वका आत्मारूप हुया उपासना करनेयोग्य होवैहै ॥ १६ ॥

**टीकाः**—जो कोई पुरुष या श्रेष्ठ गुह्य ग्रंथ-कूं ब्राह्मणनकी सभाविषै पाठतैं वा अर्थतैं सुनावै वा श्राद्धकालविषै पवित्र होयके यजन करनेवाले ब्राह्मणोंके मध्य सुनावै याका श्राद्ध अनंत फलके अर्थ समर्थ होवैहै; अनंत फलके अर्थ समर्थ होवैहै। इहां दो वार जो कथन है, सो अध्यायकी समाप्ति अर्थ है ॥१७॥

इति श्रीकठोपनिषद्गतवल्लीत्रयरूपप्रथमाध्यायभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ १ ॥

---

## अथ चतुर्थवल्ली ॥ ४ ॥

**पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीरः प्रत्यागात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥**

---

## अथ कठोपनिषद्द्वितीयाध्यायगतप्रथमवल्ली-भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

---

**टीकाः**–"येंहे आत्मा सर्व भूतनविषै गूढ हुया प्रकाशता नहीं, औ एकाग्रतायुक्त बुद्धिसैं तो देखिये है" ऐसैं पूर्व तृतीय वल्लीकी बारावी ऋचाविषै कहाथा। तहां यह पूछनेकी इच्छा होवैहै किः–एकाग्रतावाली बुद्धिका कौंन प्रतिबंध है, जिसकरि ता एकाग्रतावाली बुद्धिके तिरस्कारतैं आत्मा नहीं देखियेहै ? या रीतिसैं ता आत्माके ज्ञानके कारणके दिखावनेरूप प्रयोजनवाली या चतुर्थवल्लीका आरंभ करियेहै । जातैं श्रेयके प्रतिबंधका जो कारण है, ताके जाने हुये ता प्रतिबंधके निवारणअर्थ यत्न करनेकूं शक्य होवै है, और प्रकारसैं नहीं ॥ यातैं श्रेयके प्रतिबंधकूं दिखावैहैंः–जो सर्वदा आपहीं स्वतंत्र होवैहै, परतंत्र होवै नहीं; ऐसा **स्वयंभू** जो परमेश्वर, सो स्वाभाविक आत्मातैं भिन्न बाह्य शब्दादिक विषयनके **प्रकाशने अर्थ प्रवृत्त** होवैहैं, ऐसै जे श्रोत्रादिक इंद्रिय, तिनकूं जातैं **हनन करता भया,** तातैं इंद्रियका अभिमानी ज्ञाता

---

५५ पूर्व अनादि अविद्यारूप प्रतिबंध कहा था, अब आगंतुक (सादि) प्रतिबंधके दिखावने अर्थ, आगिली चतुर्थवल्लीका आरंभ करियेहै । ऐसैं इहां दोनूं वल्लीनका संबंध कहेहैं ।

५६ जैसैं चक्रवर्त्ती राजा, कोई खंडाधिपतिकूं अंतरके देशतैं निकासिके बाहिरका देश देदेवै, सो ताका हनन किया कहियेहै। तैसैं परमात्मा इंद्रियनकूं अंतर आत्माके दर्शनतैं विमुख करिके बाह्यविषयनके दर्शन-

पुरुष बाहिर-के अनात्मारूप शब्दादिक विषयन-कूं देखता है, अंतरात्माकूं देखता नहीं ॥ ऐसैं लोकके स्वभावके होते बी कोइक विवेकी पुरुष अपने स्वभावरूप प्रत्यगात्माकूं देखताहै ॥ कैसैं देखताहै ? तहां कहियेहैः—सर्व विषयतैं रोक्या है चक्षु औ श्रोत्रादिरूप इंद्रियनका समूह जिसनैं, ऐसा इंद्रियके निरोधवाला संस्कारी हुया प्रत्यगात्माकूं देखता है। जातैं बाह्य विषयके देखनेमैं तत्पर होना, औ अंतरात्माका देखना; एक पुरुषकूं संभवै नहीं; यातैं आत्माके दर्शन अर्थ इंद्रियनका निरोध करना चाहिये ॥ ॥ ऐसा कौंन बडा लाभ है कि जिसकी इच्छासैं विवेकी पुरुष ऐसैं बडे श्रमसैं स्वभावसैं सिद्ध इंद्रियनकी प्रवृत्तिका निरोध करिके अंतरात्माकूं देखताहै ? तहां कहियेहैः—आपके मरण धर्मसैं रहितपनैरूप नित्यस्वभावके होने-कूं इच्छता हुया प्रत्यगात्माकूं देखता है ॥ १ ॥

---

विषै प्रवृत्त होनेवाले बहिर्मुख सृजता भया, यह तिनका हनन किया है। यह अर्थ है।

५७ लोकविषै आत्मशब्द जो है, सो प्रत्यगात्मा ( अंतरात्मा ) विषैहीं रूढ है, अन्यव्युत्पत्तिके पक्षविषै रूढ नहीं; यातैं तहांहीं आत्मशब्द वर्त्तता है। काहेतैं, " जातैं व्याप्त होता है, औ जातैं धारता ( संहार करता ) है, औ जातैं इहां विषयनकूं भोगता है, औ जातैं इसका निरंतर सद्भाव है; तातैं ' आत्मा ' ऐसैं कहिये हैं " इसप्रकार आत्मशब्दकी सुत्पत्तिकूं मनुस्मृतिविषै कथन करी होनेतैं। याका यह अर्थ हैः—व्यापक जो है सो आत्मशब्दका अर्थ है। जातैं सर्वकूं आपविषैहीं धारता है औ संहार करता है, या व्युत्पत्तितैं जगत्का उपादान आत्मा जानिये है। औ विषयनकूं भोगता है, सो आत्मा है; या व्युत्पत्तिसैं आप चैतन्यके आभासैं जो उपलब्धापना ( ज्ञानका कर्त्तापना ) है, सो आत्मशब्दका अर्थ है। जिस कारणसैं इस आत्माका निरंतर भाव है; यातैं सो आत्मा है। कल्पित वस्तुकी अधिष्ठानकी सत्ताविना सत्ताके अभावतैं आत्माका निरंतर भाव है, जैसैं रज्जुमैं अध्यस्त सर्पविषै रज्जुसैं स्वरूपवान्ता हैं, तैसैं जिसकरि सर्व कल्पितवस्तु स्वस्वरूपवाला होवैहै, सो आत्मा है।

**पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥**

**येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्। एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत् ॥ ३ ॥**

---

**टीकाः**—जो प्रथम स्वाभाविक बाहिरहीं अनात्मवस्तुका दर्शन है, सोआत्माके दर्शनके प्रतिबंधका कारण अविद्या है। काहेतैं, आत्माके दर्शनविषै प्रतिकूल होनेतैं। औ जो दूसरी बाहिरहीं अविद्यानैं समीप दिखाये जे या लोक अरु परलोकके भोग तिनविषै तृष्णा है, तिन अविद्या औ तृष्णा दोनूंसैं प्रतिबंधकूं पाया है आत्माका दर्शन जिनोंका, ऐसै जे अल्पबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे बाहिरकूं प्राप्त भयेहीं विषयनके तांई जाते हैं। ता कारणसैं वे सर्व ओरतैं व्याप्त जो अविद्या काम औ कर्मका समुदायरूप मृत्यु ताके देह औ इंद्रिय आदिकके संयोग औ वियोगस्वरूप औ निरंतर वर्त्तमान जन्ममरण जरा औ रोग आदिक अनेक अनर्थके समूहरूप पाशकूं पावतेहैं ॥ जातैं ऐसैं है, तातैं विवेकी ब्राह्मण, देवता आदिकके अनित्य अमरभावतैं विलक्षण जो अंतरात्माके स्वरूपकी स्थितिरूप नित्य-अमरभाव "आत्मा कर्मसैं बढता नहीं, औ छोटा होवै नहीं" या श्रुतितैं सिद्ध है। ता ऐसैं निर्विकार अचल अमरभावकूं जानिके अनर्थरूप या संसारमैं विद्यमान अनित्य-रूप सर्व पदार्थनविषै किसीवी वस्तुकूं इच्छते नहीं। काहेतैं, ता अनित्य वस्तुकी इच्छाकूं प्रत्यगात्माके दर्शनविषै प्रतिकूल होनेतैं। अर्थ यह जो;—पुत्र वित्त औ लोक इन तीनकी एषणा (इच्छा)तैं रहितहीं होवैहैं ॥ २ ॥

**टीकाः**—ब्रह्मके जाननेवाले जे ब्राह्मण हैं, वे जाके ज्ञानतैं किसीवी

अन्यवस्तुकूं इच्छते नहीं; ता ब्रह्मका ज्ञान [५८]कैसैं होवैहै ? तहां कहियेहैः—सर्व लोक जा ईसीहीं ज्ञानस्वभाववाले आत्मा-सैं रूपकूं रसकूं गंधकूं शब्दनकूं स्पर्शनकूं औ मैथुन-रूप निमित्तसैं भये सुखके ज्ञानों-कूं स्पष्ट जानताहै ॥ ॥ ननु, देहादिकतैं विलक्षण आत्मासैं, "मैं जानता हूं" ऐसैं लोकविषै प्रसिद्ध नहीं है; किंतु "देहादि संघातरूप मैं जानता हूं" ऐसैं तो सर्व लोक जानता है ? तहां कहै हैंः—[५९]ऐसैं देहादिकके संघातकूं बी शब्दादिकके स्वरूपताके तुल्य होनेतैं, औ ज्ञानकी विषयताके तुल्य होनेतैं, ज्ञातापना युक्त नहीं है ॥ [६०]जब देहादिकनका संघातरूप आदिक विषय स्वरूप हुया रूपादिकनकूं जानता है, ऐसैं कहोगे; तब वाहिरके रूपादिक बी परस्परके औ आपआपके रूपकूं जानेंगे ! वह कहना उचित नहीं । तातैं देहादिकके स्वरूप रूपादिकनकूं, लोक इसीहीं देहादिकतैं भिन्न ज्ञानस्वभाववाले आत्मासैं जानता है, ऐसैं कहा । जैसैं जिस करि लोह जलावता

---

५८ इहां जो यह प्रश्न है, ताका यह अभिप्राय हैः—ब्रह्मकूं वैदिक होनेतैं क्या धर्मकी न्याईं परोक्षपनैकरि ताका ज्ञान होवै है, किंवा घटादिकको न्याईं सिद्ध होनेतैं अपरोक्षपनैकरि वी ताका ज्ञान होवैहै ? तहां ब्रह्मकूं आत्मारूप होनेतैं अपरोक्षपनैकरिहीं जो ताका ज्ञान है, सो सम्यक् ज्ञान है । ऐसैं उत्तर कहियेहै ।

५९ मूढ पुरुषनकूं देहादिकसैं भिन्न आत्माकरि देहादिकके जाननेकी योग्यता यद्यपि प्रसिद्ध नहीं, तथापि विचारवान्‌पुरुषनकूं देहादिकतैं भिन्नकरिहीं देहादिकके जाननेकी योग्यता प्रसिद्ध है, तातैं इहां "जिसकरि" या यत्-शब्दसैं अविचारवान्‌पुरुषनकूं प्रसिद्ध जो संघातरूप आत्मा है, ताकी न्याईं ग्रहण नहीं है । ऐसैं समाधान करैहैं ।

६० देहगत जे शब्दादिक हैं, वे आपकूं वा अन्यकूं जानते नहीं हैं, शब्दादिरूप होनेतैं औ दृश्य होनेतैं, बाहिरके शब्दादिककी न्याईं । ऐसैं न माननेविषै दोष कहैहैं ।

**स्वप्नान्तं जागरितान्तञ्चोभौ येनानुपश्यति। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥४॥**

**य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्। ईशानम्भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥ ५ ॥**

---

है, सो अग्नि है; तैसैं जिसकरि लोक जानता है, सो आत्मा है। औ या लोक-विषै आत्माकूं न जाननेयोग्य क्या अवशेष रहता है, कछुबी अवशेष रहता नहीं; किंतु सर्व वस्तुहीं आत्मासैं जाननयोग्य है ॥ जा आत्माकूं न जाननेयोग्य कछु बी वस्तु शेष रहता नहीं, सो आत्मा सर्वज्ञ है। यहहीं सो ब्रह्म है। सो कौन है? जो नचिकेतानैं पूंछ्या औ देवता आदिकोंनैं बी संशयका विषय किया औ धर्म आदिकतैं अन्य विष्णुका परमपद है, यातैं पर नहीं है, सोई यह ब्रह्म ब्राह्मणोंनैं जान्या है। यह अर्थ है ॥ ३ ॥

टीकाः—जातैं ब्रह्म ऐसा है, यातैं सूक्ष्म होनेतैं दुःखसैं जाननेयोग्य है, ऐसैं मानिके इसीहीं अर्थकूं फेरि फेरि कहैहैं:—फेर सो आत्मा कैसा है? स्वप्नके मध्य जाननेयोग्य वस्तु औ जाग्रत्के मध्य जानैयोग्य वस्तु; इन दोनूं स्वप्न औ जाग्रत्के मध्यवर्त्ती वस्तु-कूं लोक जिस आत्मा-सैं देखता है, यहहीं सो ब्रह्म है। तिस महान् औ विभु आत्माकूं, "साक्षात् परमात्मा मैं हूं" ऐसैं आत्मभावसैं जानिके बुद्धिमान् पुरुष शोककूं पावता नहीं ॥ ४ ॥

टीकाः—किंवा, जो कोई या कर्मफलके भोक्ता औ समीपवर्ती तीनकालके नियामक ईश्वर, प्राण आदिकके समूहके धारनेवाले जीव-रूप आत्माकूं जानता है, ता ज्ञान भये पीछे आपकूं रक्षण करनेकूं इच्छता नहीं, काहेतैं, अभयकूं प्राप्त होनेतैं।

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्व्वमजायत। गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत। एतद्वै तत् ॥ ६ ॥

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत। एतद्वै तत् ॥ ७ ॥

---

जहांलगि भयके मध्य स्थित हुया आपकूं अनित्य मानता है, तहांलगि आपकूं रक्षण करनेकूं इच्छता है । जब आपकूं नित्य अद्वैतरूप जानता है, तब किसकूं कौंन किसतैं वा रक्षण करनेकूं इच्छे। किसीकूं बी नहीं । यह हीं सो ब्रह्म है ॥ ५ ॥

टीकाः—जो प्रत्यगात्मा ईश्वरभावसैं कह्या, सो सर्वका आत्मा है, ऐसैं दिखावैहैं:—जो कोइक मुमुक्षु जल-सहित पंचभूतन-तैं पूर्व भया जो हिरण्यगर्भ, ज्ञानादि लक्षणवाले तप-रूप ब्रह्म-तैं उत्पन्न भया है, ता प्रथम उत्पन्न भये हिरण्यगर्भकूं देखता है । कैसा सो हिरण्यगर्भ है ? जो देव आदिक शरीरकूं उपजायके सर्व प्राणिनकी हृदयाकाशरूप गुहाके तांई प्रवेश करिके शब्दादिकनकूं अनुभव करता हुया कार्य्यकारणरूप भूतनकरिसहित स्थित भया है। ता-कूं जो ऐसैं देखता है, सो तिस प्रसंगविषै प्राप्त भये इसीहीं ब्रह्म[६१]-कूं देखता है ॥ ६ ॥

टीकाः—अब हिरिण्यगर्भकेहीं अन्यविशेषणकूं कहैहैं:—किंवा, जो सर्वदेवता-रूप है औ हिरण्यगर्भरूप प्राण-स्वरूप-करि परब्रह्मतैं उपजती है ॥ औ जो भूतनकरि सहित उत्पन्न भई है।

---

६१ जातैं लोकविषै सुवर्णतैं उपज्या कुंडल सुवर्णहीं है, तैसैं ब्रह्मतैं उपज्या हिरण्यगर्भ बी ब्रह्मरूपहीं है । तातैं ता हिरण्यगर्भकूं जो देखता है, सो ब्रह्मकूंहीं देखता है । यह अर्थ है ।

**अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः । दिवे दिव ईड्यो जाग्रवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वै तत् ॥ ८ ॥**

**यतश्चोदेति सूर्य्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तं देवाः सर्व्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ ९ ॥**

---

औ शब्दादिकनके अदन ( भोगने )तैं अदिति कहियेहै । ऐसी सर्व प्राणिनकी हृदयाकाशरूप गुहाके तांई प्रवेश करिके स्थित भई अदिति है ता-कूं जो देखता है सोई तिस प्रसंगविषै प्राप्त भये इसीहीं ब्रह्म-कूं देखता है ॥ ७ ॥

टीकाः—किंवा, जो [६२]अधियज्ञरूप हुया मथन करनेके निमित्त भये नीचे उंचेके काष्ठनविषै स्थित औ सर्व होम किये द्रव्यनका भोक्ता हुया अध्यात्म[६३]रूप है, औ गर्भवती स्त्रीयां जैसें शुद्धअन्नके भोजन आदिकसैं या गर्भ-रूप लोक-कूं धारण करैहैं ऐसैंहीं यज्ञक्रियाके कर्त्ता ऋत्विक् औ योगी-पुरुष जाकूं धारण करैहैं; किंवा, दिनदिनविषै घृतआदिक होम द्रव्यवाले कर्मिष्ठ मनुष्यनसैं औ जागरणके स्वभाववाले प्रमादरहित ऐसै ध्यानकी भावनावाले योगी मनुष्यनसैं यज्ञविषै औ हृदयविषै क्रमतैं स्तुति करनेयोग्य औ वंदना करनेयोग्य है । ऐसा जो जातवेदा नामवाला अग्नि देव है । सोई यह प्रसंगविषै प्राप्त भया ब्रह्म है ॥ ८ ॥

टीकाः—किंवा, जा प्राण-तैं सूर्य्यउदय होवैहै, औ अस्तकूं पावता है, औ जा प्राणविषै दिनंदिन-विषै चलता है औ स्थितिकालविषै

---

६२ दोनूं काष्ठनके मध्य स्थित भया जो अग्नि, सो अधियज्ञरूप है ।

६३ यज्ञकुंडविषै स्थापन किया हुया होमद्रव्यका भोक्ता जो अग्नि सो अध्यात्मरूप है ।

**यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥**

---

अधिदैवतरूप औ अध्यात्मरूप ता प्राणरूप आत्मा-के तांईं अग्नि आदिकरूप औ वाक्इंद्रिय आदिकरूप सर्वदेव प्रवेशकूं पावते हैं, सो प्राण वी ब्रह्महीं है ॥ ता सर्वरूप ब्रह्म-कूं कोई बी पुरुष लंघता नहीं ॥ कहिये, ताके स्वरूपभावकूं छोडिके तातैं अन्य भावके तांईं जाता नहीं । यहहीं सो ब्रह्म है ॥ ९ ॥

**टीकाः**— [६४] जो वस्तु ब्रह्मासैं आदिलेके स्थावरपर्यंत पदार्थनविषै वर्त्तमान हुया तिस तिस उपाधिवाला होनेतैं अब्रह्मकी न्याईं भासता है, सो परब्रह्मतैं अन्य संसारी जीव है, ऐसी आशंका किसी-कूं बी मति होहू; या अभिप्रायसैं यह कहैहैंः—**जोई** ब्रह्म इहां कार्य्यकारणरूप उपाधिकरि युक्त हुया अविवेकी पुरुषनकूं संसाररूप धर्मवाला भासता है, **सोई** स्वस्वरूपविषै स्थित ब्रह्म, उहां नित्य ज्ञानघनस्वभाववाला सर्व संसारधर्मतैं रहित है । औ जो ब्रह्म **उहां** या आत्माविषै स्थित है, **सोई** ब्रह्म **इहां** नामरूप कार्य्य औ कारणरूप उपाधिके **अनुसार** भासता है, अन्य नहीं। तहां ऐसैं हुये अंतःकरण आदिक उपाधिका स्वभाव औ भेददृष्टि इन दोनूं कार्य्यनसैं तिनका कारण होनेकरि लक्षणासैं जानियेहै, ऐसी जो अविद्या, तासैं मोहकूं पाया हुया जो पुरुष इस अनानारूप ब्रह्म-विषै "मैं परब्रह्मतैं अन्य हूं औ परब्रह्म मेरेतैं अन्य है" ऐसैं नाना ( भिन्न ) की [६५] न्याईं देखता है, सो पुरुष मरणतैं

---

६४ सर्वात्मारूप जो ब्रह्म कहा, सो बनै नहींः काहेतैं; उपाधिविशिष्ट चैतन्यरूप जीवकूं संसारी होनेतैं औ ब्रह्मकूं असंसारी होनेतैं, विरुद्धधर्मवाले तिन दोनूंकी एकताका असंभव है । यह आशंकाकरि, विरुद्धधर्मवानपनैकूं उपाधिका किया होनेतैं स्वभावकी एकताविषै कछु बी असंभव नहीं है; ऐसैं कहैहैं ।

६५ जैसैं स्वप्नविषै नानापनैंके अभाव हुये बी नानापनैकूं आरो

**मनसैवेदमाप्तव्यन्नेह नानाऽस्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युङ्गच्छति य इह नानेव पश्यति ११**

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥ १२ ॥**

---

मरणकूं पावता है। कहिये फेरि फेरि जन्ममरणभावकूं पावताहै। तातैं ज्ञानरूप एकरस औ निरंतरपनैकरि आकाशकी न्यांई परिपूर्ण वस्तुविषै तैसैं ( भिन्नकी न्यांई ) देखना नहीं; किंतु "ब्रह्मही मैं हूं" ऐसैं देखना। यह वाक्यका अर्थ है ॥ १० ॥

**टीका:**–प्रथम[66], आचार्य्य औ शास्त्रके संस्कारसहित **मनसैंहीं** एकताके अनुभवतैं यह ब्रह्म एकरस **प्राप्त करनें योग्य है,** औ आत्माहीं यह ब्रह्म है, तातैं अन्य नहीं है "ऐसैं प्राप्त किये हुये नानाभावकी फेरि उपजावनेवाली अविद्याकूं निवृत्त होनेतैं, इस ब्रह्म-**विषै कछु** ( अणुमात्र ) **वी नाना** ( भेद ) **नहीं हैं**। औ जो पुरुष फेर अविद्यारूप तिमिर ( कोइक नेत्रके रोग )वाली दृष्टिकूं छोडता नहीं; औ इस ब्रह्म-**विषै नानाकी न्यांई देखता है,** सो अल्प भेदकूं वी कल्पता हुया **मरणतैं मरणकूं पावताहीं** है। यह अर्थ है ॥ ११ ॥

**टीका:**–फेर[67] बी तिसीहीं प्रसंगविषै प्राप्त भये ब्रह्मकूं क-

---

करिके सत्यताके आग्रहसैं जो व्यवहार करता है, तैसैं जाग्रत्‌विषै बी नानापनैकूं आरोप करिके सत्यताके आग्रहसैं जो व्यवहार करता है, ता पुरुषकूं निंदित होनेतैं, "एकरस ब्रह्महीं मैं हूं" ऐसैं जानना योग्य है। यह भावार्थ है।

६६ ब्रह्म, जब एकरस है, तब "मैं ज्ञाता हूं, औ यह ज्ञेय है" ऐसा विभाग कैसैं भासता है ? यह आशंका करिके, अज्ञानीके प्रति कल्पित भेदसैं ऐसा विभाग भासता है; ऐसैं कहैहैं।

६७ अंगुष्ठपरिमाणवाले जीवका अनुवाद करिके, ताके ब्रह्मभावके वि-

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः । ई-
शानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः । ए-
तद्वै तत् ॥ १३ ॥

यथोदकन्दुर्गे वृष्टम्पर्व्वतेषु विधावति । एवं
धर्म्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥

हैहैं:–हृदयकमल जो है सो जातैं अंगुष्ठ जैसै परिमाणवाला है, तातैं
ताके छिद्रविषै वर्त्तमान जो अंतःकरण, सो बी अंगुष्ठपरिमाण हो-
वैहै । यातैं जिसकरि सर्व जगत् पूर्ण है, ऐसा जो पुरुष है; सोबी
ता अंतःकरणरूप उपाधिवाला हुया अंगुष्ठ जैसै परिमाणवाले बां-
सके पर्व (नलिका)के मध्यवर्त्ती आकाशकी न्यांई आरोपसैं अंगुष्ठ-
मात्र (अंगुष्ठ जैसै परिमाणवाला) कहियेहै । ऐसा जो अंगुष्ठ-
मात्र पुरुष शरीरके मध्य स्थित है, औ तीन कालका निया-
मक ईश्वर है; ता तीन कालके नियामक ईश्वररूप आत्माकूं जा-
निके ता ज्ञान-तैं पीछे आत्माकूं रक्षण करनेकूं इच्छता नहीं।
यहहीं सो ब्रह्म है ॥ १२ ॥

टीकाः–किंवा जो अंगुष्ठमात्र पुरुष, धूमरहित अग्निके प्रका-
शकी न्यांई योगी जनोंनैं हृदयविषै लक्षणासैं जान्या है औ जो भूत
भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनकाल-का नियामक ईश्वर है, सोई
नित्य कूटस्थ (निर्विकार)पुरुष अब प्राणिनविषै वर्त्तमान है औ
सोई कल बी वर्त्तेगा, अन्य नहीं । अर्थ यह जोः-ताके समान
अन्य पुरुष उत्पन्न होनेका नहीं, यहहीं सो ब्रह्म है ॥ १३ ॥

टीकाः–पूर्व कथन करी प्रथम वल्लीकी बीसवी ऋचाविषै "केइक
वादी कहतेहैं किः–"मनुष्यके मृतक भये यह आत्मा नहीं है"

धानतैं औ विधान किये वस्तुके विरोधतैं, अंगुष्ठमात्र पुरुषकूं कहनेकूं अभि-
च्छित होनेतैं, यह वाक्य ब्रह्मपरहीं है; ऐसै कहैहैं ।

**यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तन्तादृगेव भवति। एवम्मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम! ॥१५॥**

**इति चतुर्थ वल्ली ॥ ४ ॥**

---

यह युक्तितैं प्राप्त भया बी पक्ष श्रुतिनैं अपनैं वचनसैं निषेध किया। तैसैं आत्मा क्षणभंगुर है; यह पक्ष बी निषेध किया। [६८]फेर बी ब्रह्मके भेदज्ञानके निषेधकूं श्रुति कहैहैः-जैसैं जल जो है सो पर्वतकी न्यांई ऊंचे देशविषै वृष्टिद्वारा पतन हुया विस्तारकूं पायके नाश होवैहै, ऐसैं आत्माके धर्मनकूं शरीर शरीरके प्रति भिन्न भिन्न देखता हुया, तिन पीछे पीछे वर्त्तमान शरीरके भेदन-कूं फेरि फेरि पावता है। यह अर्थ है ॥ १४ ॥

टीकाः—फेर जिस उपाधिकृत भेददृष्टिसैं रहित औ शुद्धज्ञानघन एकरस अद्वैत आत्माकूं जाननेंवाले औ मनन करनेके स्वभाववाले विद्यावानूका आत्मस्वरूप कैसैं संभवैहै? तहां कहियेहैः— हे गौतम (नचिकेता)! जैसैं शुद्ध औ सरल देश-विषै पतन हुया जल शुद्ध एकरस जैसैका तैसाहीं होवैहै, विपरीतभावकूं पावता नहीं; ऐसैं-हीं एकताकूं जाननेंहारे औ मननस्वभाववाले मुनिका आत्मा जैसैका तैसाहीं होवैहै। विपरीतभावकूं पावता नहीं ॥ तातैं कुतर्ककर्त्ता पुरुषनकी भेददृष्टिकूं औ नास्तिक पुरुषनकी दृष्टिकूं छोडिके सहस्रमाता पितातैं बी हितके इच्छनेवाले वेद पु-

---

६८ पुनरुक्तिदोषकूं दूरी करते हुये त्र्यासीवीं औ चौरासीवीं कंडिकाके संबंधकूं कहैहैं। इहां इस अवतरणिकारूप वाक्यका यह भाव हैः—"पथ्य (निर्दोष)रूप वस्तु फेर बी कहनेंयोग्य है" इस न्यायसैं, अन्य उपायकरि ब्रह्म जनाइयेहै, तहां उपायहीं भेदकूं पावतेहैं; परंतु जिसकेवास्ते उपाय करियेहै, तिस उपेय वस्तुका भेद नहीं है।

अथ पंचम वल्ली ॥ ५ ॥

**पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥ १ ॥**

रुषनैं उपदेश किया जो आत्माकी एकताका ज्ञान, सो गर्वरहित पुरुषनकूं आदर करनेंयोग्य है । यह अर्थ है ॥ १९ ॥

इति श्रीकठोपनिषद् द्वितीयाध्यायगत प्रथमवल्ली भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ४ ॥

## अथ द्वितीयाध्यायगत द्वितीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका ॥ ५ ॥

**टीकाः**—अब ब्रह्मकूं दुःखसैं जाननेयोग्य होनेंतैं फेर बी अन्यप्रकारसैं ब्रह्मतत्त्वके निर्धार करनेंरूप अर्थवाले इस पंचमवल्लीरूप ग्रंथका आरंभ करियेहैः—यह शरीर जो है सो पुर (नगर)की न्यांई पुर है । प्रसिद्ध पुर जैसें द्वार औ द्वारपाल औ अधिपतिआदिक अनेक सामग्रीकरि संपन्न होवैहै, तैसें या शरीरविषै द्वार औ द्वारपाल औ अधिपति आदिक अनेकपुरकी सामग्रीकी संपत्तिके देखनेंतैं यह शरीररूप पुर, सामग्रीसहित है । प्रसिद्ध पुर जैसें आपके स्वरूपसैं [69]अमिलित औ [70]स्वतंत्र स्वामी(राजा)के अर्थ देख्या है, तैसें पुरके समान होनेंतैं यह शरीररूप पुर अनेकसामग्रीसहित है, औ अपनें स्वरूपसैं अमिलित औ स्वतंत्र राजास्थानी आत्मारूप स्वामीके अर्थ होनेंकूं योग्य है । सो यह शरीर नामवाला पुर दोकर्णछिद्र दोनासिकाके छिद्र दोनेत्र औ मुख, ये सात ऊपरके द्वार औ नाभि, शिश्न अरु गुद, ये तीन नीचेके द्वार औ एक म-

६९ पुरके घटने बढनेसैं ताके स्वामीके घटनेंबढनेका अभाव है, यातैं ताके स्वरूपसैं ताके स्वामीका अमिलितपना है ।

७० पुरके सत्ताकी प्रतीति विना जो स्वामीकूं अपनी सत्ताकी प्रतीतिकरि युक्तपना है, सो पुरके स्वामीका स्वतंत्रपना है ।

**हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ २ ॥**

---

त्वकका छिद्ररूप द्वार, इन द्वारनसैं एकादश द्वारवाला ॥ सो यह पुर किस राजाका है? तहां कहैहैं:—पुरके धर्मनतैं विलक्षण औ वक्रतारहित सूर्य्यके प्रकाशकी न्यांई नित्यहीं स्थित एकरूप ज्ञानवाला जन्मादि विकाररहित ब्रह्मसैं अभिन्न आत्मा-रूप राजाका यह शरीररूप **एकादश द्वारवाला पुर** है । जाका यह पुर है ता समान सर्वभूतविषै स्थित पुरके स्वामी परमेश्वरकूं **अनुष्ठान करिके,** कहिये सम्यक् ज्ञानपूर्वक ध्यानकरिके सर्व एषणातैं रहित हुया पुरुष **शोककूं पावता नहीं** । काहेतैं, ताके ज्ञानकरि अभयकी प्राप्तितैं, शोकके अवसरके अभावतैं । औ इहां ( जीवन-दशाविषै ) हीं अविद्याके किये काम औ कर्मरूप बंधनोंतैं नित्य **मुक्त हुया बी मुक्तिकूं पावता है** । कहिये फेरि शरीरकूं ग्रहण करता नहीं, यातैं शोककूं पावता नहीं ॥ १ ॥

**टीकाः**—सो आत्मा एक शरीररूप पुरवर्त्तीहीं नहीं; किंतु सर्व शरीररूप पुरवर्त्ती है ॥ सो कैसा है? तहां कहैहैं:—सो गमन करैहै, यातैं **हंस** कहिये—है । पवित्र आकाशरूप देशविषै सूर्य्यरूपसैं गति करै है, यातैं **शुचिषत्** कहिये—है । सर्वकूं निवास करावता है, यातैं **वसु** कहिये-है । वायुरूपसैं आकाशविषै गति करैहै, यातैं **अंतरिक्षसत्** कहिये-है । अग्निरूप है, यातैं **होता** कहिये-है; "अग्नि जो है सो निश्चयकरि होता (होमकर्ता) है" या श्रुतितैं । वेदि जो पृथिवी, ताविषै (अग्निरूपसैं) स्थिति करैहै, यातैं **वेदिषत्** कहिये-है । "यह वेदि ( यज्ञकुंड ) पृथिवीका परममध्य है" इत्यादि वेदमंत्रके वर्णनतैं । **अतिथि** जो जल, तिसरूप हुया कलशविषै स्थित होवैहै, यातैं **दुरोणसत्** कहिये-है । वा ब्रह्मके

**ऊर्द्ध्वम्प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति । मध्ये वामनमासीनम्विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥**

अतिथिरूपसैं गृहनविषै गमन करैहै, यातैं दुरोणसत् कहिये-है। औ मनुष्यविषै स्थित होवैहै, यातैं नृषत् कहिये-है । औ श्रेष्ठ जे देव तिनविषै स्थित होवैहै, यातैं वरसत् कहिये-है । औ ऋत जो सत्य वा यज्ञ तिसविषै स्थित होवैहै, यातैं ऋतसत् कहिये-है । औ आकाशविषै स्थित है, यातैं व्योमसत् कहिये-है। औ जलविषै शंख शुक्ति औ मकर आदिक रूपसैं उपजेहै, यातैं अब्जा कहिये-है । औ गो जो पृथिवी, ताविषै तंदुल औ यव-आदिक अन्नरूपसैं उपजता है, यातैं गोजा कहिये-है । औ यज्ञके साधनरूपसैं उपजता है, यातैं ऋतजा कहिये-है । औ पर्वतनतैं नदीआदिक रूपतैं उपजता है, यातैं अद्रिजा कहिये-है । सर्वका आत्मा हुया बी सत्यस्वभाववाला है, यातैं ऋत कहिये-है। सर्वका कारण होनेतैं बृहत् (वडा) कहिये-है । यद्यपि या मंत्रसैं सूर्य्यहीं कहियेहै; तथापि सूर्य्यके आत्मस्वरूपवान्पनैंकूं अंगीकार किया होनेंतैं, या मंत्रतैं ब्रह्मके व्याख्यानविषै बी अविरोध है। सर्व प्रकारसैं बी जगत्का आत्मा एकहीं है । आत्माका भेद नहीं; यह या मंत्रका अर्थ है ॥ २ ॥

**टीका:**—अब देहतैं भिन्न आत्माके स्वरूपके जाननेविषै लिंग (चिह्न) कहियेहै:—जो प्राण-वृत्तिरूप वायु-कूं हृदयदेशतैं ऊपर चलावता है; तैसैं अपान वायु-कूं नीचे चलावता है, ता हृदयकमलके आकाशरूप मध्यविषै स्थित औ बुद्धिविषै प्रगट ज्ञा-

७१ " जो यह मृतक मनुष्यविषै संशय है " इसरीतिका यह अपूर्व संशय, प्रथमवल्लीकी वीशवीं कंडिकाविषै प्रश्नरूप होनेंकरि प्रकट किया था, सोबी निर्मूल है; यह दिखावनेकूं, अब देहतैं भिन्न आत्माके सद्भावकूं साधतेहैं ।

**अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः। देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ४ ॥**

**न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५ ॥**

नरूप प्रकाशवाले सम्यक् भजनें योग्य **वामनजीकूं** सर्व चक्षु आदिक इंद्रियरूप देव, राजाकूं वैश्यनकी न्यांई, रूप आदिकके ज्ञानरूप वलिदानकूं देते हुये **उपासतेहैं** । कहिये रूपादिकके ज्ञानरूप व्यापारकूं ता आत्मारूप राजाके अर्थ होनेंकरि ताके सेवकरूप इंद्रिय व्यापारसैं रहित होते नहीं । जाके अर्थ औ जाकी प्रेरणासैं हुये सर्व वायु औ इंद्रियनके व्यापार हैं, सो आत्मा, देहतैं अन्य सिद्ध भया । यह वाक्यका अर्थ है ॥ ३ ॥

**टीकाः**–किंवा, इस शरीरविषै स्थित देहवाले आत्माकूं देहतैं मुक्त होयके भ्रष्ट हुये इस देह विषै प्राण आदिकका समूह क्या शेष रहता है । कोइ बी शेष रहता नहीं । यहहीं सो ब्रह्म है ॥ ॥ जैसैं पुरके स्वामीके निकसे हुये पुरके वासी निर्बल होयके नाशकूं पावतेहैं; तैसैं जिस आत्माके देहतैं निकसे हुये क्षणमात्रतैं सर्व यह कार्य औ कारणका समूह निर्बल होयके नाशकूं पावता है । सो आत्मा देहतैं अन्य सिद्ध होवैहै ॥ ४ ॥

**टीकाः**–अब प्राण औ अपानादिकके निकस जानेतैंहीं यह इंद्रिय आदिकका समूह नाश होवैहै; तिनतैं भिन्न आत्माके निकस जानेतैं नहीं । यातैं प्राणआदिकनसैंहीं इहां मनुष्य जीवतेहैं, यह

७२ इहां यह अनुमान हैः–प्राण औ इंद्रियनके जे व्यापार हैं, वे सर्व चेतनके अर्थ औ चेतनके किये होनेकूं योग्य हैं; जडकी चेष्टा होनेतैं रथके चेष्टाकी न्यांई ।

कितनैंक वादिनका मत है। सो वनै नहीं, ऐसैं कहैहैं:-किंवा, कोइ वी देहवाला मनुष्य प्राणकरि जीवता नहीं, औ अपानकरि जीवता नहीं, वा चक्षु आदिककरि जीवता नहीं, परके अर्थ होनेंवाले इन प्राण आदिकनकूं मिलिके कार्य्यके करनेंवाले होनेंतैं जीवनकी हेतुता बनै नहीं ॥ किंवा, अपनेंअर्थ होनेंवाले स्वतंत्र औ समुदायरूपकूं अप्राप्त भये दूसरे किसी वी चेतनकी प्रेरणाकूं न पायी हुयी मिलित (समुदायरूपकूं प्राप्त) भये पदार्थनकी स्थिति देखी नहीं। जैसैं लोकविषै गृहादिकनकी स्थिति है, तैसैं प्राणादिकनकूं बी मिलित (संघातरूप) होनेंतैं तिनकी बी स्थिति अन्य उक्तलक्षणवाले चेतनकी करी हुयी होनेंकूं योग्य है; यातैं पराधीन स्थितिवाले प्राणादिकनसैं जीवन बनै नहीं; किंतु मिलित भये प्राणादिकनतैं विलक्षण अन्य आत्मा-सैं-हीं सर्व संघातरूप हुये मनुष्य जीवतेहैं। कहिये प्राणनकूं धारतेहैं। औ जिस संघातसैं विलक्षण परब्रह्मरूप आत्मा-के होते चक्षुआदिकसैं मिलित भये ये प्राण औ अपान स्थितिकूं पावतेहैं॥ अभिप्राय यह है किः—जिस अमिलित आत्माके अर्थ प्राण औ अपानआदिक मिलित भये सर्व व्यापारकूं करते हुये वर्त्ततेहैं, सो आत्मा तिनतैं अन्य सिद्ध है ॥ ९ ॥

---

७३ ननु, "जीवधातु, प्राणधारणरूप अर्थविषै वर्त्तताहै" इस धातुके स्मरणतैं पात्रविषै दधिके धारणकी न्यांई शरीरविषै जो प्राणका धारण (संयोग) है, सोई शरीरका जीवन प्रसिद्ध है। तहां प्राणकूंही संयोगका आश्रय होनेतैं जीवनका हेतुपना प्रसिद्ध है। ऐसैं होते आप प्राणादिकनकूं जीवनका हेतुपना संभवै नहीं, यह कैसैं कहतेहो ? तहां कहैहैं। इस इस समाधानरूप वाक्यका यह अर्थ है:—कदाचित् होनेवाले प्राण औ शरीरके संयोगका स्वभावतैं असंभव है औ लोकविषै परकी प्रेरणासैं भये संयोगसैं मिलितवस्तुनके समुदायके देखनेतैं, समुदायकूं समुदायके प्रयोजनवाले अन्य चेतनसैं होनेकी योग्यता है।

**हन्त त इदम्प्रवक्ष्यामि गुह्यम्ब्रह्म सनातनम् ।**
**यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ! ॥६॥**
**योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।**
**स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म्म यथा श्रुतम् ७**

---

**टीकाः**—हे गौतम (नचिकेता)! तुजकूं ब्रह्मविद्याका पात्र देखिके मुजकूं बडा हर्ष भया है, यातें अब फेर बी तेरे तांई इस पुरातन गोप्य ब्रह्मकूं कहताहूं। जाके ज्ञानतैं सर्व संसारकी निवृत्ति होवैहै, औ जाके अज्ञानतैं मरणकूं पायके आत्मा जैसें होवैहै, औ जैसें संसारकूं पावता है, तैसें कहताहूं; सो श्रवण कर ॥ ६ ॥

**टीकाः**—अन्य केइक अविद्यावान् औ देहअभिमानी जे मूढपुरुष हैं, वे जंगम शरीरके ग्रहण अर्थ रजवीर्य्यकरि सहित हुये माताकी योनिके द्वारके तांई प्रवेशकूं पावतेहैं। औ अन्य जे अत्यंत अधमपुरुष हैं, वे मरणकूं पायके स्थावर–भावकूं पावतेहैं। जिनोंनैं या जन्मविषै जैसा कर्म किया है, वे तिस कर्मके वशतैं ताके अनुसार शरीरकूं पावतेहैं। तथा जिनोंनैं शास्त्रसैं जैसा ज्ञान (उपासन) संपादन किया है, वे ता ज्ञानके अनुसारहीं शरीरकूं धारते हैं। "जैसी बुद्धि है, तैसे जन्म होवैहैं" या अन्यश्रुतितैं बी यह अर्थ सिद्ध है ॥ ७ ॥

---

७४ "जो यह मृतक भये मनुष्यविषै संशय है" ऐसें प्रथम वल्लीकी वीशवीं कंडिकाविषै पूछनैंवाले नचिकेताकूं परलोकके सद्भावविषै भी संदेह भया था, विशेषकरि ताकी निवृत्तिअर्थ कहियेहै; ऐसें कहैहैं।

य एष सुप्तेषु जागर्त्ति कामं कामं पुरुषो निर्म्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्व्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्व्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९ ॥

---

टीकाः—अब "जो गोप्य ब्रह्म है, सो तुजकूं कहताहूं" ऐसें पूर्व प्रतिज्ञा किया जो ब्रह्म, ताकूं कहैहैंः—जो यह पुरुष स्वप्नविषै प्राणादिकनके सोये हुये तिस तिस वांच्छित स्त्री आदिक विषयकूं अविद्यासैं रचता हुया जागता है, सोवता नहीं; सोई सो शब्दब्रह्म है; अन्य गोप्यब्रह्म नहीं है । सोई ब्रह्म सर्व शास्त्रविषै अविनाशि कहियेहै । किंवा, पृथ्वीआदिक सर्व लोक तिसीहीं ब्रह्म-विषै आश्रयकूं प्राप्त भयेहैं । काहेतैं, ताकू सर्व लोकनका कारण होनेतैं, ता ब्रह्म-कूं कोई बी पुरुष लंघता नहीं। कहिये, ब्रह्मभावकूं छोडिके तातैं अन्यभावकूं पावता नहीं। यहहीं सो ब्रह्म है ॥ ८ ॥

टीकाः—अब [75]अनेकतर्कवाली बुद्धिसहित पुरुषनसैं चलायमान

---

७५ जनोंके जन्म औ मरणोंके साधनोंकी नियमतैं एककालविषै प्रवृत्तिका अभाव है, यातैं पुरुषनका नानाभाव सिद्ध है औ पुरुषनके चित्तविषै वर्त्तमान तीन गुणोंका विपरीतपना है, यातैं बी नानाआत्मा स्थित हैं; ऐसी अनेकतर्कवाली बुद्धिनके विरोधतैं "सर्व शरीररूप पुरवर्त्ती आत्मा एकहीं है" या अर्थविषै चित्तकी स्थिरता संभवै नहीं? यह आशंकाकरि। आत्माके उपाधिके किये भेदके साधनेविषै सिद्ध वस्तुका साधनरूप दोष

**वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्व्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥**

---

भये अंतःकरणवाले औ सरलतारहित बुद्धिवाले जे ब्राह्मण हैं, तिनके चित्तविषै प्रमाणकरि प्राप्त औ वारंवार उपदेश किया वी आत्माकी एकताका ज्ञान स्थिर होता नहीं, यातैं ता ज्ञानके प्रतिपादनविषै आदरवाली जो श्रुति, सो फेरि फेरि कहैहैः—जैसैं एकहीं अग्नि प्रकाशरूप हुया जिसविषै भूत होतेहैं, ऐसा भुवन जो यह लोक, ता-के तांई प्रवेशकूं प्राप्तभया काष्ठ आदिक जलावनें योग्य वस्तुन-के भेदके तांई, तहां तहां प्रतिरूप होता भया । कहिये, काष्ठके भेदसैं बहुत प्रकारका होता भया । तैसैं सर्वभूतनका जो अंतरआत्मा है, सो एक हुया वी अतिसूक्ष्म होनेकरि काष्ठ आ-दिकविषै अग्निकी न्यांई सर्व देहके तांई प्रवेशकूं पाया होनेंतैं प्रतिरूप ( वहुतप्रकारका ) होता भया; औ आकाशकी न्यांई अपनें निर्विकाररूपसैं सर्वदेहनतैं सो वाहिर है ॥ ९ ॥

**टीकाः**—तैसैं अन्यदृष्टांत कहियेहैंः—जैसैं एकहीं वायु, लोकके तांई प्राणरूपसैं देहनविषै प्रवेशकूं पाया हुया देहभेदके तांई प्रतिरूप होता भया, तैसैं एकहीं सर्वभूतनका अंतरात्मा देहदे-हके प्रतिरूप होता भया; औ तिनतैं वाहिर है ॥ १० ॥

---

होवैहै औ स्वाभाविक भेदके साधनेंविषै व्यभिचार होवैहै; यह दिखावनेकूं यमराजा आरंभ करैहैं; ऐसैं श्रीशंकराचार्य कहैहैं ।

७६ टेढे सूधे छोटे वडे चारकोणवाले उज्ज्वल मलिन इत्यादि भि-न्नभिन्न धर्मवाले अनेक काष्ठरूप उपाधिनविषै एकहीं अग्नि वी तिसतिस रूपवाला देखियेहै; तैसैं देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक भिन्न धर्मवाले अनेकशरीररूप उपाधिनविषै एकहीं आत्मा अध्यासतैं तिस तिस रूपवाला देखियेहै । यह अर्थ है ।

**सूर्य्यो यथा सर्व्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्व्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥**

**टीकाः**—एकहींकूं सर्वके आत्मापनेके हुये लोककूं जो संसारके दुःखसैं युक्तपना है, सो तिस परब्रह्मकूंहीं प्राप्त भया? यह आशंका भई, यातैं यह कहियेहैः—जैसैं सूर्य्य मल मूत्र आदिक अपवित्र पदार्थनके प्रकाश करनेंसैं चक्षुकूं उपकार करता हुया तिन अपवित्र पदार्थनके देखनेंवाले सर्व लोकका चक्षु हुया बी अपवित्र आदिक पदार्थनके दर्शनरूप निमित्तसैं भये भीतरके पापरूप चक्षुके दोषनसैं औ बाहिरके अपवित्रादिक पदार्थनके संबंधके दोषनसैं लेपकूं पावता नहीं; तैसैं एक औ बाहिर किया जो सर्वभूतनका अंतरात्मा है; सो लोकके दुःखसैं लेपकूं पावता नहीं ॥ इहां यह भावहैः—लोक[७७] जो है सो स्वस्वरूपविषै अध्यस्त अविद्या करि काम औ कर्मसैं उत्पन्न भये दुःखकूं अनुभव करैहै, सो अविद्या, परमार्थतैं स्वस्वरूपविषै नहीं है । जैसैं रज्जुशुक्तिका ऊषरभूमि औ आकाश, इनविषै सर्प रूपा जल औ मल भासते हैं, वे रज्जु आदिकनके स्वरूपतैं दोषरूप नहीं किंतु रज्जु आदिकके संबंधि सर्प आदिकविषै विपरीतबुद्धिके अध्यासके निमित्ततैं, तिस तिस रज्जु आदिकके दोषकी न्याईं भासतेहैं । औ जातैं वे रज्जु आदिक विपरीतबुद्धिके अध्यासतैं बाहिर कियेहैं, यातैं

७७ अविद्याविषै प्रतिबिंबकूं पाया चिदात्मा (जीव), अज्ञानी औ भ्रांत होवैहै, औ भ्रांत होयके कामादि दोषकरि युक्त हुया कर्म करता है, औ कर्मरूप निमित्तसैं भये दुःखकूं स्वस्वरूपविषै मानता है, ब्रह्मरूप परमात्मा तो निर्दोष होनेतैं दुःखके साधनसैं रहित है, यातैं दुःखी होता नहीं; तातैं एकहीं परब्रह्मकूं सर्वात्मा होनेतैं संसारके दुःखकरि युक्तपना होवैगा, यह जो तैंनैं हेतु कहा, सो व्यभिचारी है; ऐसैं कहैहैं।

**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपम्बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषाम् ॥ १२ ॥**

---

तिन सर्प आदिकके दोषनसैं तिन रज्जु आदिकनकूं लेप बी नहीं है, तैसैं सर्वलोक, सर्पादिस्थानी क्रिया कारक औ फलरूप विपरीतज्ञानकूं आत्माविषै अध्यासकरिके तिस निमित्तसैं भये जन्ममरणरूप दुःखकूं अनुभव करैहै, आत्मा नहीं । आत्मा तो सर्व लोकनका स्वरूप हुया बी जातैं सो रँज्जुआदिककी न्यांईहीं विपरीत बुद्धिके अध्यासतैं बाहिर किया है, यातैं विपरीत अध्यारोपरूप निमित्तनसैं भये लोकके दुःखकरि लेपकूं पावता नहीं ॥ ११ ॥

**टीकाः**—किंवाँ, सोई सर्वगत स्वतंत्र जो परमेश्वर एक है, ताके समान वा अधिक अन्य नहीं है । औ सर्वजगत् याके वश वर्त्तता है, यातैं वशी है, । काहेतैं कि, जातैं सर्वभूतनका अंतरात्मा है । ऐसा बी काहेतैं है कि, जातैं जो परमात्मा अपनी सत्तासैं अचिंत्यशक्तिवाला होनेतैं एक रस हुये शुद्धज्ञान-रूप आप-कूं नामरूप आदिक अशुद्ध उपाधिके भेदके वशतैं बहुत प्रकारसैं करता है । तिस अपनें

---

७८ जैसैं रज्जु आदिककूं स्वरूपसैं भ्रांतिका अविषयपना है, सोई ताकां विपरीत बुद्धिके अध्यासतैं बाहिरपना है । तैसैं चैतन्यकूं उपाधिके स्वरूपसैं अध्यासके आश्रयपनैके हुये बी निरुपाधिक बिंबके तुल्य ब्रह्मरूपसैं अध्यासका अनाश्रय होनेतैं विपरीतबुद्धिके अध्यासतैं बाहिरपना है, यातैं ताकूं सर्वात्मा हुये बी संसारके दुःखकरि युक्तपनैकी प्राप्ति नहीं है । यह अर्थ है ।

७९ अन्यके उत्कर्षका दर्शनरूप औ परतंत्रतारूप जो अपना हीनपना है, सो दुःखका कारण प्रसिद्ध है । ताके अभावतैं परमात्मा दुःखी नहीं है, तातैं ताकी प्राप्तिहीं परमपुरुषार्थ होवैहै; ऐसा इहां कहैहैं ।

**नित्योऽनित्यानाश्चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् १३**

---

शरीरके हृदयाकाशगत बुद्धि-विषै चैतन्यआकारसैं प्रकट इस ईश्वररूप आत्मा-कूं जे बाह्यवृत्तिसैं रहित विवेकी-पुरुष, आचार्य औ शास्त्रके उपदेशकूं पायके साक्षात् अनुभव करैहैं, तिन परमेश्वररूप हुये पुरुषन-कूं आत्मानंदरूप नित्य सुख होवैहै। अन्य जे बाह्यविषयनमैं आसक्तबुद्धिवाले अविवेकी पुरुष हैं, तिन-कूं स्वस्वरूप हुया बी यह सुख अविद्याके आवरणतैं प्रतीत होता नहीं ॥१२॥

टीकाः—किंवा, जो परमेश्वर अनित्य वस्तु-नका नित्य है औ

---

८० यह मूलविषै जो "आत्माविषै स्थित" ऐसा पद है ताका अर्थ है:—इहां आत्मशब्दकरि शुद्ध आत्माका ग्रहण नहीं, काहेतैं आपविषै आपकी स्थितिके असंभवतैं; किंतु, शरीररूप आत्माकाहीं ग्रहण है, तिस शरीरकूं घटादिककी न्यांई तामस होनेतैं, केवल तिसविषै आत्माकी प्रतीति होवै नहीं, यातैं लक्षणासैं शरीरके भीतर विद्यमान हृदयाकाशगत बुद्धिकाहीं ग्रहण है। तहांहीं आत्माका आविर्भाव है। तिस बुद्धिविषै आविर्भावकूं प्राप्त भये आत्माकूं जे जानतेहैं, तिनकूं नित्य सुख होवैहै; ऐसैं १३ वें मंत्रविषै बी "आत्मस्थ" पदका अर्थ जानना।

८१ अब परमात्माविषै अनुभवके दिखावनेअर्थ कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—"विधाता, जैसै पूर्वकल्पविषै थे तैसै—सूर्य औ चंद्रकूं कल्पता भया" इत्यादि श्रुतितैं। औ ऐसैं प्रपंचकूं प्रवाहरूपसैं अनादि नहीं माने हुये जीवनके किये कर्मके फलकी प्राप्तिसैं विना नाशके प्रसंगके अनिवारणतैं, प्रलयविषै लीन भये पूर्वकल्पके पदार्थनकी अन्य कल्पविषै सजातीयरूपसैं उत्पत्ति प्रतीत होवैहै। सो उत्पत्ति तब होवै जब विनाशी पदार्थनकी शक्तिका शेषरूप लय होवै; यातैं प्रलयविषै विनाशकूं पाया जगत् जिस शक्तिके शेषविषै विलीन होवैहै, सो शक्तिका शेष मानना योग्य है।

**तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यम्परमं सुखम्। कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा १४**

---

चेतनाके करनेंवाले जे ब्रह्मादिक प्राणीरूप चेतन हैं, तिनका चेतन है। जैसैं दाहशक्तिरहित जल आदिकनका जो दाहकपना है, सो अग्निरूप निमित्तका कियाहीं है; तैसैं प्राणीनका धर्म जो चेतनाका करनेंपना है, सो चैतन्यरूप निमित्तका कियाहीं है ॥ किंवा, सो परमेश्वर सर्वका ईश्वर सर्वज्ञ है। काहेतैं, जे एक हुया बहुत कामनावाले संसारीजीव-नके तांई कर्मके अनुसार कर्मके फलरूप भोगनकूं औ अपनें अनुग्रहरूप निमित्तसैं भये भोगनकूं श्रमसैं विना देता है; तिस आत्माविषै स्थित ईश्वररूप आत्मा-कूं जे विवेकी पुरुष अनुभव करैहैं, तिनकूं स्वस्वरूपभूत नित्य शांति होवैहै; अन्य विवेकादि गुणरहित पुरुष-नकूं नहीं ॥ १३ ॥

**टीका:**— "जो यह कहनेंकूं अशक्य उत्कृष्ट औ प्राकृतपुरुषनकें वाणी औ मनका अविषय हुया बी आत्मज्ञानरूप सुख है, ता-कूं तीन

---

८२ बुद्धिवाले ब्रह्मा औ इंद्र आदिकनकी बी जो परमानंदकी सन्मुखताकूं छोडिके बहिर्मुख चिदाभासयुक्त बुद्धिवृत्तिरूप चेतना देखियेहै, सो बी सर्व जीवनके नियामक परमेश्वरकूं सूचन करैहै, ऐसैं कहैहैं। इहां यह अर्थ है:—ब्रह्मादिकशब्दनके वाच्य जे संघात हैं, तिनकूं चेतनाका कर्त्तापना जिस चैतन्यरूप निमित्तसैं है, सो चैतन्य परमात्मा है।

८३ विवादका विषय जो कर्मका फल, सो ताके स्वरूपके जाननेवालेकरि दिया हुया होवैहै, अंतरायसहित फलरूप होनेतैं, सेवाके फलकी न्यांई। इस अनुमानकूं मनमैं ल्यायके अब कहैहैं।

८४ इहां "आत्माविषै स्थित" यह जो पद है, ताका अर्थ द्वादश १२ वीं कंडिकाके व्याख्यानमैं कहा है, सो जानि लेना।

८५ विद्वानोंका अनुभव बी परमानंदविषै प्रमाण है; ऐसैं अब कहैहैं।

**न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकन्नेमा वि-द्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभा-ति सर्व्वन्तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति ॥१५॥**

इति पंचमवल्ली ॥ ५ ॥

एषणातैं रहित जे ब्राह्मण हैं, वे "सो यह प्रत्यक्ष है" ऐसैं मानते हैं ॥ [८६]जैसैं तीन एषणातैं रहित संन्यासी जानतेहैं, तैसैं, तिस सुख-कूं मैं कौनप्रकारसैं जानूं। कहिये, "सो यह है" ऐसैं आपकी बुद्धिका विषय करूं ॥ औ सो ब्रह्म कैसैं प्रकाशता है? जातैं सो ब्रह्म प्रकाशरूप है, यातैं सो हमारी बुद्धिका विषय होनें-करि स्पष्ट देखियेहै वा नहीं? यह कहो ॥ १४ ॥

**टीका:**—तहां यह उत्तर है:—यह ब्रह्म प्रकाशता है औ स्पष्ट देखिये है ॥ कैसैं देखियेहै? तहां कहेहैं:—तिस अपनें आत्मारूप ब्रह्म-विषै सर्वका प्रकाशक सूर्य्य बी भासता नहीं; कहिये, ता ब्रह्मकूं प्रकाशता नहीं। तैसैं चंद्रमासहित तारा-गण बी प्रकाशता नहीं, औ यह बीजलियां बी प्रकाशतियां नहीं, तब यह हमारी दृष्टिका विषय अग्नि कहांसैं प्रकाशेगा! बहुत कहनेंसैं क्या है, परंतु जो यह सूर्य्यआदिक सर्व-जगत् भासता है, सो तिसीहीं प्रकाशमान परमेश्वर-के पीछेहीं भासता है। जैसैं जल औ अर्द्धदग्ध काष्ठ आदिक जो है, सो जलावनेंवाले अग्निके पीछे अग्निके संयोगतैं जलावताहै, आपतैं नहीं; तैसैं तिसीहीं ब्रह्म-के प्रकाशसैं सूर्य्यादिरूप यह सर्व जगत् भासता है, आपतैं नहीं। जातैं ऐसैं है, यातैं सोई ब्रह्म प्रकाशता है, औ स्पष्ट देखियेहै; यातैं कार्य्यगत अनेकप्रकारके प्रकाशसैं ता ब्रह्मका आपतैं प्रकाशरूपपना

८६ जातैं परमात्माका ज्ञान ऐसा है, तातैं सो संशययुक्त होनेकरि त्यागनेकूं योग्य नहीं, किंतु श्रद्धाके अधीन होनेकरि विचारकूं योग्यहीं है, ऐसैं कहेहैं।

अथ षष्ठवल्ली ॥ ६ ॥

**ऊर्द्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्व्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ १ ॥**

---

जानियेहै । आपतैं प्रकाशमान जो वस्तु है, सो अन्यका प्रकाश करनेंकूं शक्य नहीं । काहेतैं प्रकाशरूप घटादिकनकूं अन्यके प्रकाशकपनैंके न देखनेतैं, औ प्रकाशरूप सूर्य्य आदिकनकूं तो अन्यके प्रकाशकपनैंके देखनेंतैं ॥ १९ ॥

इति श्रीकठोपनिषद् द्वितीयाध्यायगत द्वितीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ५ ॥

---

## अथ द्वितीयाध्यायगत तृतीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

**टीकाः**—जैसैं लोकविषै तूल (कार्य)के निश्चयसैंहीं वृक्षके मूलका निश्चय करियेहै, ऐसैं संसारवृक्षरूप कार्यके निश्चयतैं ताके मूलरूप

---

८७ जैसैं सापेक्ष प्रकाशरूप सूर्य्यादिक ज्योति, अन्य घटादिकके प्रकाशनेंकूं समर्थ हैं; ऐसैं निरपेक्ष प्रकाशरूप जो ब्रह्म है, सो सूर्य्यादिक ज्योतिरूप औ घटादिक अज्योतिरूप सर्व जगत्के प्रकाश करनेंकूं समर्थ है, यह अर्थ है ।

८८ जैसैं शाल्मलिआदिक वृक्षरूप कार्यके देखनेंतैं, नहीं देख्या बी वृक्षका मूल "है" ऐसैं निश्चय करियेहै; तैसैं संसार वृक्षरूप कार्यके देखनेंसैं न देखे हुये बी ब्रह्मरूप मूलके निश्चय करावने अर्थ, अब कहनेंका आरंभ करैहैं; ऐसैं कहैहैं । यद्यपि "तूल" शब्दका अर्थ कोशनविषै कपास आदिकके वृक्षका कार्य कपास आदिक है, कार्यमात्र नहीं; तथापि कार्यपनैंरूप धर्मकूं दोनूंविषै तुल्य होनेंतैं कार्यमात्र औ कपास आदिक

ब्रह्मके स्वरूपके निश्चयके करावनेंकी इच्छासैं या षष्ठवल्लीका आरंभ करियेहैः—जो यह अज्ञानसैं आदिलेके स्थावर योनिपर्यंत संसार-वृक्ष है, सो विष्णुके परमपदरूप ऊंचेमूलवाला है, यातैं ऊर्द्ध्वमूल कहियेहै औ जंन्म मरण जरा अरु शोकआदिक अनेक अनर्थरूप है, औ क्षणक्षणविषै विपरीतस्वभाववाला है औ इंद्रजालकी माया मरुजल अरु गंधर्वनगर आदिककी न्यांई दृष्टनष्ट ( देखतेंहीं नाश हुये ) स्वरूपवाला होनेंतैं छेदन होवैहै; यातैं वृक्ष कहियेहै। अथवा, अंतविषै वृक्षकी न्यांई अभावरूप है औ केलेके स्तंभकी न्यांई असार है, औ प्रसिद्ध वृक्ष, जैसैं ठोंठ है वा पुरुष है, ऐसैं विकल्पका विषय देख्या है; तैसैं यह संसार वी समुदायरूप है, वा परिणामरूप है, वा आरंभ किया है, वा सत् है वा असत् है; इत्यादि अनेक सैंकडनकी संख्यासैं पाखंडयुक्त बुद्धिवाले पुरुषनके विकल्पनका विषय है, औ तत्त्वके जिज्ञासुपुरुषनसैं जिसके स्वरूपका नि-र्धार होवै नहीं ऐसा है, औ वेदांतशास्त्रविषै निर्धार किये परब्र-ह्मरूप सारभूत मूलवाला है, औ अविद्या काम अरु कर्मरूप अ-स्पष्टवीजतैं उत्पन्न भया है, औ परब्रह्मकी प्रथमअवस्थारूप ज्ञा-नशक्ति औ क्रियाशक्तिमय हिरण्यगर्भरूप अंकुरवाला है, औ सर्व प्राणिनके नाना लिंगशरीररूप स्कंध( अनेक पेड )वाला है,

---

कार्यका सादृश्य है। या अभिप्रायसैं इहां "तूल" शब्दसैं वृक्षरूप कार्यका ग्रहण किया है।

८९ वृक्षशब्दकी प्रवृत्तिके निमित्त छेदनकी योग्यताकूं औ ताविषै यु-क्तिकूं कहैहैं।

९० अथवा प्रसिद्ध वृक्षकी तुल्यतातैं संसारविषै वृक्षशब्दका व्यवहार है। या अभिप्रायसैं अब कहैहैं।

९१ जैसैं किस नामवाला यह वृक्ष है, ऐसै निश्चयका अविषय कोइक वृक्ष देख्या है; तैसैं यह संसारवृक्ष वी है। ऐसैं इस संसारवृक्षविषै प्रसिद्ध वृक्षकी अन्य समताकूं कहैहैं।

औ तृष्णारूप तलावके जलके सेचनसैं उत्पन्न भये गर्भवाला है, औ ज्ञानइंद्रियनके शब्दादिक विषयरूप कोपर ( पत्रके अंकुर )-वाला है, औ श्रुति स्मृति युक्ति अरु विद्याके उपदेशरूप पत्रोंवाला है, औ यज्ञ दान अरु तपआदिक अनेक क्रियारूप सुंदरपुष्पवा-ला है, औ सुखदुःखमय प्राणीनकी वेदनारूप अनेक रससंयुक्त अरु प्राणीनकी उपजीविका करनेयोग्य अनंतफलवाला है, औ तिस फलकी तृष्णारूप जलके सेचनसैं आरूढ भये औ सात्विक आदिक भावसैं मिश्रित भये कर्म अरु वासना आदिकरूप दृढ-बंधन हुये वटवृक्षकी न्यांई अवांतरमूलवाला है, औ सत्यआदिक सप्त लोकनविषैं ब्रह्मादि प्राणीरूप पक्षीनके किये आलयवाला है, औ प्राणीनके सुखदुःखसैं उत्पन्न भये हर्ष औ शोकसैं उपजे नृत्य, गीत, वादित्र, खेल, शस्त्रोंका घासना, हसित, खीचना औ रोदन हाहा छोड छोड, इत्यादि अनेक शब्दनके किये कुलाहलरूप भये महा-शब्दवाला है; औ वेदांतविषै प्रतिपादित ब्रह्म औ आत्माके ज्ञा-नरूप असंगशस्त्रसैं किये छेदनवाला है; यातैं वृक्ष कहियेहै। यह संसाररूप वृक्ष, पिप्पलके वृक्षकी न्यांई काम औ कर्मरूप वायुकी प्रेरणाकूं पाया हुया सदा चंचलस्वभाववाला है; यातैं अश्वत्थ कहियेहै। औ स्वर्ग नरक तिर्यक् ( पशुपक्षी ) अरु प्रेतयोनि आदिक नीचीशाखावाला है, औ अनादि होनेतैं चिरकालका प्रवृत्त भया है, ऐसा यह संसाररूप पिप्पलका वृक्ष है। या सं-सारवृक्षका जो मूल है, सोई शुद्ध चैतन्य आत्मारूप प्रकाशके स्वभाववाला कहिये-है, औ सोई सर्वसैं बडा होनेतैं ब्रह्म कहिये-है औ सोई सत्य होनेतैं अविनाशी—स्वभाववाला कहियेहै। "वाणीसैं आरंभ किया विकार ( कार्य ) नाममात्र है" औ "या ब्रह्मतैं अन्य वस्तु मिथ्या औ मरणके योग्य है" या श्रुतितैं। तिस परमार्थसैं सत्यब्रह्म-विषै गंधर्वनगर मरीचिजल औ इंद्रजा-लकी मायाके समान औ परमार्थरूप वस्तुके अज्ञानतैं प्रतीयमान

**यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २ ॥**

---

सर्वलोक, उत्पत्ति स्थिति औ प्रलयविषै आश्रयकूं पावतेहैं। औ जैसैं घटादिक कार्य, मृत्तिका आदिकके स्वरूपकूं छोडिके वर्त्तता नहीं; तैसैं कोई बी कार्य, तिस ब्रह्म-कूं लंघिके वर्त्तता नहीं। यहहीं सो ब्रह्म है ॥ १ ॥

नैनु, जाके ज्ञानतैं पुरुष मरणभावसैं रहित होवैहै, सोई जगत्का मूल ब्रह्म है; ऐसैं जो आप कहते हो, सो असंगत है। काहेतैं, जगत्का मूलरूप जो ब्रह्म, सोई नहीं है; किंतु असत् हुयाहीं यह जगत् निकस्या है? यह आशंका भई, तहां सो 'वैने नहीं; ऐसैं कहैहैं:—जो यह कछु सर्व जगत् है सो प्राण-रूप परब्रह्मके होते चलता है, औ ताहीसैं निकस्या हुया नियमसैं चेष्टा करता है। ऐसा जो जगत्की उत्पत्ति आदिकका कारण ब्रह्म है, सोई बडा है, औ जिसतैं सर्व जगत् भयकूं पावता है, ऐसा भय-रूप है; औ वज्रकूं उद्यम करनेहारेकी न्यांई है। जैसैं वज्रके उद्यम करनेवाले स्वामीकूं सन्मुख भया देखिके किंकर जे हैं, वे नियमसैं ताकी आज्ञाविषै वर्ततेहैं। तैसैं यह चंद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र औ तारा आदिकरूप जगत् इंद्रादिरूप अधिपतिसहित नियमसैं क्षणमात्र बी विश्रामरहित हुया वर्त्तता है ॥ जे पुरुष इस अपने

---

९२ शून्यभावपर्यंत नाश भये कार्यका असद्भावपूर्वकहीं जन्म है, तातैं जगत्का मूल नहीं है, ऐसैं शंका करैहै।

९३ इहां याका यह अर्थ है; शशशृंग आदिक असत्वस्तुकी उत्पत्तिकूं न देखनेतैं औ कार्यकी उत्पत्तिकूं सत्पूर्वक होनेकी प्रसिद्धितैं, सत्रूप वस्तु जगत्का मूल है, सो प्राणकी प्रवृत्तिका बी हेतु होनेतैं प्राणपदका लक्ष्य है

**भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः ।**
**भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥**
**इह चेदशकद्बोद्धुम्प्राक् शरीरस्य विस्रसः ।**
**ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥**

---

शरीरादिकके प्रति साक्षीरूप एक ब्रह्म-कूं जानतेहैं, वे मरण-धर्मसैं रहित होवैहैं ॥ २ ॥

टीकाः—कैसैं तिसके भयतैं जगत् वर्त्तता है? तहां कहैहैंः—इस परमेश्वर-के भयतैं अग्नि तपता है, औ भयतैं सूर्य तपता है, औ भयतैं इंद्र वर्षता है औ भयतैं वायु चलता है औ भयतैं पांचवा मृत्यु दौडता है। जगत्के ईश्वर औ समर्थ हुये लोकपालनका जब वज्रके उद्यम करनेहारे राजाकी न्यांईं नियामक न होवै, तब स्वामीके भयतैं भयकूं प्राप्त भये किंकरनकी न्यांईं तिनकी नियमित प्रवृत्ति बनै नहीं; यातैं लोकपालनका नियामक परमेश्वर है, यह जानियेहै ॥ ३ ॥

टीकाः—तिसैं इस भयके कारण ब्रह्मकूं इहां जीवते हुयेहीं जब शरीरके पतनतैं पूर्व जाननेकूं समर्थ हुया जानता है, तब संसारके बंधनतैं छूटता है। औ जब जाननेकूं असमर्थ होवैहै, तब तिस न जानने-तैं प्राणीनकी उत्पत्तिके आश्रय पृथिवीआदिक लोकनविषै शरीरभावके अर्थ समर्थ होवैहै। कहिये शरीरकूं धारता है ॥ तातैं शरीरके पतनतैं पूर्व आत्माके बोधअर्थ यत्न किया चाहिये। जातैं दर्पणगत मुखके दर्शनकी न्यांईं आत्माका दर्शन या मनुष्यलोकविषैहीं स्पष्ट बनैहै, औ ब्रह्मलोकतैं अन्य लोक-

---

९४ नियमकर्त्ताविना सूर्य्यादिकनकी नियमित प्रवृत्तिके असंभवतैं नियामक होनेकरि परोक्ष निश्चय किया जो परमेश्वरका रूप, ताके अपरोक्षज्ञानअर्थहीं इस जन्मविषै प्रयत्न करना योग्य है; ऐसैं कहैहैं।

**यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके । यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके । छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥**

**इन्द्रियाणाम्पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् । पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६ ॥**

---

नविषे नहीं । सो ब्रह्मलोक दुर्लभ है, यातैं इहांहीं यत्न किया चाहिये ॥ ४ ॥

**टीकाः**—सर्व लोकनविषे आत्माका दर्शन कैसैं होवैहै ? तहां कहियेहैः—जैसैं लोक, दर्पणविषे प्रतिबिंबरूप आपकूं अत्यंत स्पष्ट देखता है, तैसैं या लोकमैं दर्पणकी न्यांई निर्मल हुयी बुद्धिविषै आत्माका दर्शन स्पष्ट होवैहै, यह अर्थ है । औ जैसैं स्वप्नविषै जाग्रत्‌की वासनासैं उपज्या जगत् अस्पष्ट है,तैसैं पितृलोकविषै आत्माका दर्शन अस्पष्टहीं होवैहै । काहेतैं, तिन पितृदेवनकूं कर्मफलके भोगविषै आसक्त होनेतैं । औ जैसैं जलविषै अस्पष्टअंगनवाला आपका रूप देखियेहै; तैसैं गंधर्वलोकविषै आत्माका दर्शन अस्पष्टहीं होवैहै । ऐसैं अन्य लोकनविषै बी आत्माका दर्शन अस्पष्ट होवैहै, यह शास्त्रके प्रमाणतैं जानियेहै । औ एक ब्रह्मलोकविषैहीं छाया औ धूपकी न्यांई अत्यंत स्पष्ट आत्माका दर्शन होवैहै । सो ब्रह्मलोक, अत्यंत श्रेष्ठ कर्म औ उपासनाका फल होनेतैं दुर्लभ है । तातैं आत्माके दर्शन अर्थ इहांहीं यत्न करना योग्य है । यह अभिप्राय है ॥ ५ ॥

**टीकाः**—यह आत्मा कैसैं जानने योग्य है औ तिसके बोधविषै क्या प्रयोजन है ? तहां कहियेहैः—अपनें अपनें विषयके ग्रहण करनेरूप प्रयोजनसैं अपनें कारण आकाशादिकतैं भिन्न उत्पन्न भये इंद्रियनकी अत्यंत शुद्ध केवल चिन्मात्र आपके स्वरूपतैं स्वभावसैं विलक्षण रूपताकूं औ भिन्न उत्पन्न भये तिनहीं इंद्रियनके

**इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।**
**सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥७॥**
**अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।**
**यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वञ्च गच्छति ॥ ८ ॥**

जो जाग्रत् औ सुषुप्ति अवस्थाकी अपेक्षासैं उत्पत्ति औ प्रलय होवैहै, आत्माकी अपेक्षासैं नहीं । तिनकूं ऐसैं विवेकतैं जानिके बुद्धिमान्-पुरुष शोककूं पावता नहीं । काहेतैं, आत्माकूं नित्य एकतास्वभाववाला होनेकरि अव्यभिचारतैं शोकादिककी कारणताके असंभवतैं ॥ तैसैं अन्य श्रुति कहती हैः–"आत्मवेत्ता शोककूं तरता है" ॥ ६ ॥

**टीकाः–इंद्रियनतैं मन पर है** [ननु इस, वीं कंडिकातैं समीपवर्ती पूर्वकी ६ वीं कंडिकाविषै जातैं आत्मातैं इंद्रियनका पृथक्भाव (विलक्षणपना) कहा, औ जातैं यह आत्मा किसीतैं बाहिर जाननेयोग्य नहीं, यातैं इहां पूर्व कहे इंद्रियनतैं परअर्थनकूं छोडिके "इंद्रियनतैं मन पर है" इत्यादिरूप या वाक्यसैं जो आत्माका सर्वात्मापना कहते हो, सो कैसैं संभवैगा? तहां कहियैहैः–ईहां शब्दादिक विषयरूप अर्थनकूं अनात्मभावकरि इंद्रियनके तुल्य जातिवाले होनेंतैं इंद्रियनके ग्रहणसैंही अर्थनका ग्रहण किया जानना । अन्यअर्थ पूर्वकी न्यांई है] **औ मनतैं सत्त्व (बुद्धि) उत्तम (पर) है, औ बुद्धितैं महत्तत्त्व पर है, औ महत्तत्त्वतैं अव्यक्त (अज्ञान) उत्तम (पर) है ॥ ७ ॥**

**टीकाः–अव्यक्ततैं तौ पुरुष पर है, व्यापक है,** काहेतैं व्यापक हुये आकाशादिक सर्वका बी कारण होनेंतैं । औ जिसतैं,

९५ "इंद्रियनतैं अर्थ पर हैं" ऐसैं पूर्व [ ३ वल्लीकी १० वीं कंडिकाविषै ] कहाथा औ इहां तो अर्थ(विषय)नके ग्रहणतैं सर्वका प्रत्यगात्मापना संभवै नहीं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ।

**न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। हृदा मनीषा मनसाऽभिकृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥**

---

जानिये है ऐसा जो बुद्धि आदिक सो लिंग है, तातैं रहित होनेतैं यह पुरुष अलिंगहीं है। औ सर्व संसारके धर्मनतैं रहित है। ऐसैं जिसके रूप-कूं आचार्य्यतैं औ शास्त्रतैं जानिके जंतु जो है, सो जीवता हुयाहीं अविद्याआदिक हृदयकी ग्रंथिनसैं मुक्त होवैहै, औ शरीरके पतन हुये वी अमरभावकूं पावता है। सो अलिंग-पुरुष अव्यक्ततैं पर है। ऐसैं पूर्वार्द्धसैं संबंध है ॥ ८ ॥

टीकाः–तैवँ तिस अलिंगपुरुषका दर्शन कैसैं संभवै? तहां कहियेहैः–इस प्रत्यगात्मा-का रूप, दर्शनके विषयविषै स्थित नहीं है;

---

९६ बुद्धि सुख औ दुःख आदिक जे हैं, वे आश्रयसहित होनेकूं योग्य हैं, गुण होनेतैं. रूपगुणकी न्यांई। ऐसैं वैशेषिकमतवाले जो अनुमान करतेहैं, सो असत् है, काहेतैं तिन बुद्धि आदिकनके आश्रयसहितपनेमात्रके साधनेविषै पीसे हुये चूर्ण(आटा)के फेरि पीसनेकी न्यांई, सिद्ध वस्तुके साधनेरूप दोषके होनेतैं औ मनकूंहीं कामादिगुणवाला श्रुतिविषै सुन्या है, यातैं बुद्धि आदिक गुण, आत्माके आश्रय रहतेहैं, इस कल्पनाविषै आत्माके निर्गुणभावके प्रतिपादक शास्त्रसैं विरोधके होनेतैं औ सुषुप्ति आदिकविषै बुद्धि आदिक गुणके अभावकरि आत्माके साथि बुद्धिआदिक गुणकी व्याप्ति( अव्यभिचार )के अग्रहणतैं, अग्निके लिंग धूमकी न्यांई बुद्धिआदिक गुण आत्माका लिंग नहीं है, ऐसैं कहैहैं।

९७ अब "तिसका दर्शन कैसैं संभवैहै ?" ऐसैं पूंछनेवालेका कौन अभिप्राय हैः–क्या किसीका विषय होनेकरि आत्माका दर्शन कहनेयोग्य है, अथवा आत्माकूं अविषय होनेकरि ताके दर्शनअर्थ उपाय कहनेयोग्य है ? यह विचारिके प्रथमविकल्पके प्रति उत्तर कहैहैं। या उत्तरवाक्यका यह अर्थ हैः–जो वस्तु रूपादि गुणवाला है, ताका विशेषण दर्शनका विषय होनेयोग्य होवैहै; तिस रूपादिगुणके अभावतैं इस प्रत्यगात्माका रूप, दर्शनके विषयनविषै स्थित नहीं है।

यातैं कोई वी पुरुष इस आत्मा-कूं चक्षु इंद्रिय ( सर्व इंद्रिय )सैं देखता नहीं ॥ तब सो कैसैं देखियेहै? तहां कहियेहैः-हृदयविषै स्थित जो मनकी संकल्पादिरहित करनेकरि नियामक बुद्धि है, ता-सैं सम्यक् दर्शनस्वरूप मनन ( विचार )रूप मनंकरि प्र-काशित हुया आत्मा जाननेकूं शक्य है। तिस आत्माकूं यह ब्रह्म है, ऐसैं जे जानते हैं; वे मरण धर्मरहित होवैहैं ॥ ९ ॥

---

९८ अब दूसरे विकल्पके प्रति उत्तर कहैहैं।

९९ बाह्यइंद्रियनके उपराम हुये बी जब मन विषयनकूं चितवता है. तब मुमुक्षुकी बुद्धि इसप्रकारसैं तिस मनकी नियामक होवैहैः—हे मन! तूं किस प्रयोजनके अर्थ पिशाचकी न्याईं दौडता हैं? जो कहै, मैं अपनें प्र-योजनअर्थ दौडता हूं? सो बनै नहीं:—काहेतैं, तुजकूं जड होनेंतैं तेरा, किसी प्रयोजनके साथि संबंध संभवै नहीं औ क्षय होनेंके स्वभाव आदिक दोषकरि दुष्ट जे विषय हैं, तिनसैं संबंधकरि तेरे प्रयोजनका असंभव है। जो कहै, चेतनके अर्थ मैं दौडता हूं? सो बनै नहीं:—काहेतैं, ताकूं असंग होनेंतैं औ परमानंदस्वभाववाला होनेंतैं, ताके अर्थ तेरा दौडना संभवै नहीं। ऐसैं बुद्धि, मनकी नियामक है। यातैं बुद्धि शास्त्रविषै "मनीट" औ "म-नीषा" इस नामसैं कहियेहै; ऐसैं कहैहैं। इहां "विषयकी कल्पनासैं रहित मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं अविषयपनैंकरि ब्रह्मभावकी प्रकाशक औ महावाक्यसैं उत्पन्न भई जो बुद्धिवृत्ति है, तासैं आत्मा जाननेकूं शक्य है; ऐसैं संबंध है।

१०० सो आत्मा किसप्रकारका हुया जाननेंकूं शक्य है? यह आशंका भई। तहां कहैहैः—मनकरि प्रकाशित हुया आत्मा जाननेंकूं शक्य है ॥ इहां यह अर्थ हैः—मुजकरि जो जो घटादिरूप बाह्यवस्तु देखियेहै सो सो वस्तु जैसें मैं नहीं हूं, तैसें इस संघातविषै बी जो जो देखियेहै, सो मैं नहीं हूं; किंतु, इस संघातविषै जो ज्ञानरूप अंश है, सो सर्व शरीरनविषै एक लक्षणकरि लक्षित होनेतैं एकहीं है; ऐसैं विचारकरि प्रथम निश्चित किया हुया जाननेकूं शक्य है।

**यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।**
**बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमाङ्गतिम्॥ १०॥**
**तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।**
**अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ ११॥**

---

**टीकाः**— यहँ मनकी नियामक बुद्धि कैसैं प्राप्त होवैहै ? तहां तिसकी प्राप्तिके अर्थ योग कहियेहैः—जिस कालविषै श्रोत्र आदिक पांच ज्ञान-इंद्रिय जें हैं वे जिसके पीछे आप चलतेहैं, तिस संकल्पआदिक व्यापारवाले अंतःकरणकरि सहित अपनें विषयनतैं निवर्त्त हुये आत्माविषैहीं स्थित होवैहैं, औ निश्चयरूप जो बुद्धि, सो अपनें व्यापारनविषै चेष्टा करै नहीं, ता (अवस्था)कूं योगीजन परमगति कहतेहैं ॥ १० ॥

**टीकाः**—ता ऐसी तिन इंद्रिय आदिकनकी अवस्था-कूं वियोगरूपहीं हुये, योग ऐसैं मानतेहैं । जातैं [102]सर्व अनर्थके संयोगकी

---

१०१ केईक वेदांतके सुननेंवाले पुरुषनकूं बी "मैं ब्रह्म हूं" इस बुद्धिकी स्थिरताके न देखनेंतैं, कोईक अन्यप्रतिबंध है; ऐसैं जानियेहै। ताके निवारण अर्थ अन्य उपाय बी कहनेंकूं योग्य है; इस अभिप्रायकरि अब कहैहैं। इहां इस अवतरणिकारूप वाक्यका यह अर्थ हैः—श्रवण औ मननसैं क्रमकरि प्रमाण औ प्रमेयगत संशयकी निवृत्तिके हुये बी चित्तकी अनेकाग्रतादोषरूप प्रतिबंध संभवैहै, ताके निवारण अर्थ योगका अनुष्ठान करना योग्य है; ऐसैं उपदेश करियेहै।

१०२ उक्त मनके निरोधरूप योगकूं इहांसैं स्पष्ट करैहैं । इहां यह अर्थ हैः—व्यवहारतैं उपराम हुया मन जब सुषुप्तिकूं जाता है, तब सो अनर्थकी बीजरूप अवस्था होवैहै; तब मनकूं तिस अवस्थाके निवारणअर्थ "मैं पूर्ण

वियोगरूप यह योगीकी अवस्था है, यातैं इस अवस्थाविषै अविद्याके आरोपसैं रहित स्वरूपकी स्थितिवाला आत्मा जब स्थिर बाहिर औ अंतरके इंद्रियकी धारणके तांई प्रमादरहित होवैहै, कहिये जिस कालविषै इंद्रिय औ अंतःकरणकी एकाग्रताके तांई नित्यप्रयत्नवाला होवैहै, तिस कालविषै योगविषै प्रवृत्त होवैहै ॥ जातैं बुद्धि आदिककी चेष्टाके अभाव हुये प्रमादका संभव नहीं है, तातैं बुद्धि आदिकके चेष्टाकी निवृत्तितैं पूर्वहीं प्रमादके अभावका विधान करियेहै ॥ अथवा जबहीं इंद्रियनकी धारणा स्थिर होवै है, तबहीं निरंकुश प्रमादरहितपना होवैहै; यातैं तब प्रमादरहित होवैहै ऐसै कहियेहै । काहेतैं जातैं योग जो है सो उत्पत्ति औ लयरूप धर्मवाला है, यातैं लयके निवारणअर्थ प्रमादका अभाव करनें योग्य है । यह अभिप्राय है ॥ ११ ॥

---

ब्रह्म हूं" इस आवृत्ति (अभ्यास)विषै जोडना । आवृत्तिविषै जोड्या हुया मन जब विषयविषै विक्षेपकूं पावै तब विषयविषै दोषके दर्शनसैं ताकूं निवारण करै । तातैं निवारण हुया बी मन जब तटस्थ (बाहिर भीतर प्रवृत्तिरहित) होवै, सो बी कषायरूप अवस्था है; तातैं रोक्या हुया मन, जब न जागता है, न सोवता है, न दोनूंके बीचमैं स्थित होवैहै; किंतु पूर्ण ब्रह्मका प्रकाशक होनेंकरिहीं क्षीण होवैहै । तब सो सर्वअनर्थकी वियोगरूप अवस्था होवैहै ।

१०३ इहां मूल श्रुतिविषै "होवैहै" यह जो क्रियापद है, ताके बलतैं योगविषै प्रवृत्त होवैहै; यह अधिकअर्थ जानियेहै ।

१०४ योगके आरंभकालविषै जो प्रमादका त्याग विधान किया है, ऐसैं व्याख्यान करिकै, अब ताही वाक्यकूं प्रमादके त्यागके अनुवादपर होनेंकरि औररीतिसैं व्याख्यान करैहैं ।

**नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।**
**अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १२॥**

---

**टीकाः**– [105]जैसैं बुद्धिआदिककी चेष्टाका विषय ब्रह्म है, तब "यह" "सो" ऐसैं ताका विशेषपना ग्रहण होवै है, औ बुद्धि आदिकके उपराम (विलय) भये ग्रहणके कारणके अभावतैं अप्रतीयमान हुया ब्रह्म नहीं है, ऐसैं सिद्ध होवैगा। जातैं लोकविषै जो वस्तु करणका विषय होवै, सो है; औ जो तातैं विपरीत है, सो असत् है, ऐसैं लोकविषै प्रसिद्ध है, यातैं योग अनर्थकर है। अथवा योगकालविषै अप्रतीयमान होनेतैं ब्रह्म नहीं है, ऐसैं जाननें योग्य है; इस प्रकार प्राप्त भये, यह कहियेहैः–हे शिष्य! यह आत्मा **नहीं वाणीसैं, न मनसैं, न चक्षुसैं,** न अन्य इंद्रियनसैं बी पावनेकूं शक्य है, यह तेरा कथन सत्य है, तथापि (सर्व विशेषसैं रहित हुया बी) जगत्का मूल है, ऐसैं जान्या होनेंतैं औ कार्य्यके विलयकूं अस्ति (है)पनैंविषै स्थित होनेंतैं आत्मा विद्यमानहीं ह॥[106]तैसैं दिखावैहैः–यह कार्य्य जो है सो सूक्ष्म वस्तुके अ-

---

१०५ अब आगिलेमंत्रके प्रकट करनेंके लिये शंकाकूं उठावतेहैं।

१०६ "घट है" ऐसैं निश्चय किये घटका मुद्गरके प्रहारसैं नाश किये हुये, घटका आकारहीं लय होवैहै; परंतु "घट है" ऐसा जों घटविषै अस्तित्वअंश था सो लय नहीं होवैहै; काहेतैं, तिस अस्तिपनैंकी कपाल आदिकविषै बी अनुवृत्ति (पीछे वर्तनें)के देखनेतैं। यातैं कार्यके लयकूं अस्तिपनैंविषै स्थित होनेंतैं, शून्य (अभाव)रूप अंतवाला कार्यका लय नहीं है। ऐसैं जो प्रथम कहा; याकूं अर्थ स्पष्ट करैहैं। इहां यह अर्थ हैः–स्थूलकार्यके विलय हुये सूक्ष्मरूप ताका कारण अवशेष होवैहै। ताके बी विलय हुये तातैं सूक्ष्मवस्तु शेष रहैहै। ऐसैं जहांलगि दर्शनकी व्याप्ति है, तहांलगि देखिके, जहां नहीं देखियेहै तहां बी मूर्त्त (सावयव) वस्तुके विलयकूं अवश्य होनेतैं, सत्मात्र वस्तुहीं अमूर्त्त होवैहै; ऐसैं कार्यहीं सूक्ष्मपनैके अधिकन्यूनभावकी परंपराका अनुसारी हुया पुरुषकी बुद्धिकी स्थितिकूं जनावता है।

धिकन्यूनपनैकी परंपरासैं जान्या हुया बुद्धिकी स्थितिकूंहीं जनावै है औ जंबँ बुद्धि वी अपने विषयके विलयसैं विलयकूं प्राप्त होवैहै, तब बी सो बुद्धि, "ब्रह्म है" ऐसी सत्वृत्तिरूप गर्भसहित भईहीं लय होवैहै ॥ [१०७]जांतैं हम मनुष्यनकूं सत् औ असत् वस्तुके यथार्थ स्वरूपके जाननेविषै बुद्धिहीं प्रमाण है, यातैं सो सत्वृत्तिरूप गर्भवाली हुयीहीं लय होवैहै । जंबँ[१०८] जगत्का मूलहीं न होवै, तब असत्के अन्वयकरि युक्त भयाहीं यह कार्य्य, असत् ( नहीं है ) ऐसैं ग्रहण करियेगा; परंतु ऐसैं ग्रहण नहीं करियेहै; किंतु "सत् (है)" ऐसैंहीं ग्रहण करियेहै ( जानियेहै ) । जैसैं मृत्तिका आदिकका कार्य्य जो घटादिक, सो मृत्तिकाके अन्वयकरि युक्त हुया, सत्, ऐसैं ग्रहण करियेहै; असत् नहीं, तैसैं जगत् बी जानना । तातैं जगत्का मूल आत्मा "है," ऐसैंहीं जाननेंयोग्य है ॥ [११०]कांहेतैं कि,

---

१०७ ननु, "जो दृश्य है सो असत् है" जैसै स्वप्नका दर्शन है ॥ इस व्याप्तिके देखनेंतैं हैपनैंकरि दृश्य जो वस्तु है, ताकूं असत् होनेंतैं सत्बुद्धि वी नहीं है । यह आशंकाकरि कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—"सत्बुद्धि वी नहीं है" इस प्रतीतिसैं, "अवश्य है" ऐसैं मानी चाहिये । काहेतैं ऐसैं नहीं माने हुये निषेध व्यवहारका असंभव होवैहै । यातैं अंतभावकूं जायके सद्बुद्धि माननी होवैगी ।

१०८ तिस बुद्धिके अंगीकारसैं क्या सिद्ध भया? तहां कहैहैं । ईहां यह अर्थ है;—व्यभिचारिविषयनविषै बी "है" ऐसी सत्मात्रकी बुद्धिके अव्यभिचारके देखनेंतैं, औ बुद्धिकूं आपहींतैं प्रमाणरूप होनेंतैं, बुद्धिके अंगीकारसैं सत्मात्र वस्तु अंगीकार करना योग्य है ।

१०९ इस आगे कहनेके तर्कतैं बी सत्वस्तुहीं जगत्का मूल कहा चाहिये, ऐसैं कहैहैं ।

११० ननु, "जगत्का मूल जो ब्रह्म, सो नहीं है," ऐसैं जाने हुये बी विपरीतपनैंकरि ब्रह्मज्ञानका संभव है; यातैं ब्रह्मज्ञानकी इच्छावाले मुमुक्षुकरि "ब्रह्म है" ऐसैंहीं काहेकूं जाननें योग्य है? इस प्रकारकी वादीकी शंकाकूं "काहेतैं" या पदसैं सूचन करैहैं ।

**अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।**
**अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति॥१३॥**

---

[१११]आत्मा "है" ऐसैं कहनेंवाले वेद अर्थके अनुसारी श्रद्धावान् अस्तित्ववादी-तैं अन्यविषै कहिये जगत्का मूल आत्मा नहीं है; किंतु कारणके अन्वयसैं रहित भयाहीं यह अभावपर्य्यंत कार्य्य लय होवैहै, ऐसैं माननेंवाले विपरीतदर्शी नास्तिकवादीविषै, सो ब्रह्म यथार्थस्वरूपसैं कैसैं जाननेंमैं आवै! किसी प्रकार बी जाननेंमैं आवता नहीं । यह अर्थ है ॥ १२ ॥

टीकाः—तातैं असुरभावरूप असत्वादीके पक्षकूं छोडिके, सत् कार्यरूप बुद्धि आदिक उपाधिवाला आत्मा "है" ऐसैंही जाननें योग्य है ॥ [११२]जब तिस उपाधितैं रहित निर्विकार आत्मा है, औ "वाणीसैं आरंभ किया विकार ( घटरूप कार्य ) नाममात्र है, औ मृत्तिकाहीं सत्य है" यां श्रुतितैं कार्य्य जो है सो कारणतैं भिन्न नहीं है । तब तिस निरुपाधिक अलिंग औ सत् असत् आदिक वृत्तिनके विषयभावसैं रहित आत्माका तत्त्वभाव ( ज्ञातअज्ञाततैं भिन्न अद्वैत स्वभाव) होवैहै । तिस तत्त्वभाव-रूप-सैं आत्मा जाननेंमैं आवता है, ऐसैं पूर्वमंत्रसैं संबंध है ॥ [११३]तहां बी सोपाधिक

---

१११ विपरीतपनैकरि ज्ञानकूं निषेध करनेंकेयोग्य होनेंसैं, आत्मापनैकरि ब्रह्मका ज्ञान होवै नहीं; यातैं ब्रह्मज्ञानकी इच्छावाले मुमुक्षुकरि "जगत्का मूल ब्रह्म है", ऐसैंहीं जानना योग्य है । ऐसैं कहैहैं ।

११२ सोपाधिकआत्माके ज्ञानतैं मुक्तिके असंभवतैं निरुपाधिक आत्माके ज्ञानअर्थ बी प्रयत्न करनेंकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

११३ सोपाधिक आत्माविषै प्रथम स्थिर भये चित्तकूं तिसद्वारा लक्ष्यपदार्थके ज्ञान भये, क्रमसैं वाक्यार्थका ज्ञान संभवैहै ऐसैं कहैहैं;

**यदा सर्व्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः**
**अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥**

---

औ निरुपाधिकरूप जो अस्तिपना (हैपना) औ तत्त्वभाव है, इन दोनूंके मध्य, प्रथम "है" ऐसैं सत्कार्यरूप बुद्धि आदिक उपाधिके किये अस्तिपनैंकी वृत्तिसैं प्रतीत भये आत्मा-का पीछे सर्व उपाधिरहित स्वरूपवाला, औ "ऐसैं (कार्यरूप) नहीं अरु ऐसैं (कारणरूप) नहीं" "जाडा नहीं, पतला नहीं, ठूंका नहीं, लंबा नहीं" अरु "अदृश्य (इंद्रिय अगोचर), अनात्म्य (ममताका अविषय), अनिलय (आधाररहित)" इत्यादि श्रुतियोंनैं कथन किया जो ज्ञात औ अज्ञात वस्तुतैं अन्य अद्वैतस्वभावरूप तत्त्वभाव है, सो आत्माके प्रकाश करनेंअर्थ, प्रथम आत्मा "है" ऐसैं जाननेंवाले पुरुषके तांई सन्मुख होवैहै ॥ १३ ॥

**टीकाः**—जातैं कामनाकी आश्रय [114] बुद्धि है, आत्मा नहीं, "काम संकल्प [इत्यादि सर्व मनहीं है]" इत्यादि अन्य श्रुतिनतैं । यातैं बोधतैं पूर्व या विद्वान्-की बुद्धिविषै स्थित जे [115] काम हैं, वे स-

---

११४ कामनाका आश्रय आत्मा है, ऐसा जो वैशेषिकवादीनका मत है, सो श्रुतितैं बाहिर होनेतैं आदर करनेंके योग्य नहीं; ऐसैं कहैहैं ।

११५ प्रवृत्त भये फलवाले कर्मके उद्भव हुये, शरीरकी स्थितिके निमित्त अन्न पान आदिकविषै प्रवृत्ति करनेंकी इच्छातैं भिन्न जो "मैं ज्योतिष्टोमआदिक काम्यकर्मसैं स्वर्गकूं पावूंगा औ त्रिपुराधनरूप कर्मसैं जनोंकूं वश करूंगा" इत्यादिरूप सर्व काम हैं; वे, "स्वर्गआदिक देहविषैं मैं सर्वका साक्षी मैंही स्थित हूं औ तिनके भोग मुजकूं प्राप्तहीं हैं औ यह अप्राप्त विषयका काम व्यर्थ अरु मिथ्या है" इस विचारसैं नाश होवैहैं । यह अर्थ है ।

**यदा सर्व्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।**
**अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥ १५ ॥**

---

र्वे जिसकालविषै ऐसैं परमार्थके दर्शी पुरुषके कामना करनेंयोग्य अन्यवस्तुके अभावतैं **नाश होवैहैं;** **तिसकालविषै** बोधतैं पूर्व मरनेंयोग्य जो **मनुष्य** था सो बोधके उत्तरकालविषै अविद्या काम औ कर्मरूप मृत्युके विनाशतैं, अथवा अन्यलोकविषै गमनके कारणरूप मृत्युके विनाशतैं **मरणरहित होवैहै** । औ गमनके असंभवतैं इहांहीं ( इसीहीं देहविषै ) दीपके निर्वाणकी न्यांई सर्व बंधनोंकी निवृत्तितैं **ब्रह्मकूं पावता है,** कहिये ब्रह्महीं होवैहै ॥ १४ ॥

**टीकाः**—कामनाका[११६] मूलतैं विनाश कब होवैहै ? तहां कहियेहै:—**जब** इहां जीवते पुरुषकेहीं ग्रंथिकी न्यांई दृढ बंधनरूप जे " मैं यह शरीर हूं, मेरा यह धन है, मैं सुखी हूं; औ दुःखी हूं;" इत्यादिरूप अविद्याकी वृत्तिस्वरूप **बुद्धिकी ग्रंथियां हैं, वे सर्व,** " मैं असंसारी ब्रह्म हूं " ऐसी तिनतैं विपरीत, ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माके वृत्तिकी उत्पत्तिसैं **विनाशकूं पावैहैं, तब** ( अविद्याकी ग्रंथिनके नाश भये ) तिन ग्रंथिरूप कारणवाले जे काम हैं, वे मूलतैं नाश होवैहैं । पीछे मरनेंयोग्य **मनुष्य मरणरहित होवैहै** । **इतना-मात्र-हीं** सर्व वेदांतनका **उपदेश है;** यातैं अधिक उपदेश होवैगा, ऐसी शंका करनेंयोग्य नहीं है ॥ १५ ॥

---

११६ कामके विलयका सुषुप्तिवान् पुरुषविषै बी सद्भाव है, यातैं सो विलय बी अमरभावका चिन्ह होवैगा, ऐसैं मानिके प्रश्नकूं कहैहैं।

**शतञ्चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासाम्मूर्द्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥ १६ ॥**

---

टीकाः—[117]सर्व विशेष (उपाधि)सैं रहित व्यापक ब्रह्मरूप आत्माके ज्ञानसैं सर्व अविद्या आदिक ग्रंथिनके विनाशवाले जीवते हुयेहीं ब्रह्मभूत विद्वान्का लोकांतरविषै वा इसलोकगत अन्यशरीरविषै गमन नहीं होवैहै; काहेतैं "इहांहीं ब्रह्मकूं पावता है" ऐसैं कथन किया होनेंतैं, औ "ता ज्ञानीके प्राण गमन करते नहीं" औ "ब्रह्महीं हुया बी ब्रह्मकूं पावता है" इस अन्यश्रुतितैं । ऐसैं पंचदश(१५)वीं ऋचापर्यंत कहा । अब मंदबोधवाले ब्रह्मवेत्ता औ अन्यविद्याकरि युक्त जे ब्रह्मलोकके भागी पुरुष हैं, औ तिनतैं विपरीत जे संसारके भागी पुरुष हैं, तिनकी यह कोईकगति प्रसंगविषै प्राप्त उत्तम ब्रह्मवेत्ताकी विद्याके फलकी स्तुतिअर्थ कहियेहै ॥ किंवा ओर जो अग्निविद्या नचिकेतानैं पूंछीथी औ तिसका यमराजानैं उत्तर दिया था, ता अग्निविद्याके फलकी प्राप्तिका प्रकार कहना योग्य है । या अभिप्रायसैं इस षोडश(१६)वें मंत्रका आरंभ हैः—तहां एक शत औ एक ( सुषुम्ना नामवाली ) इतनीं पुरुषके हृदयतैं निकसी हुयी नाडियां हैं, तिनके मध्य मस्तककूं

---

११७ प्रकरणके भंगसैं उक्त अर्थके संबंधकूं दिखावैहैं । इहां पूर्वमीमांसाके वार्तिककार भट्टके शिष्य भास्करनैं जो कहा हैः—ब्रह्मविद्याके प्रसंगतैं ब्रह्मवेत्ताकीहीं यह गति है । सो बनै नहीं । काहेतैं, ब्रह्मवेत्ताके असंबंधके श्रवणरूप लिंगसैं औ अप्रमाणके योग्य इस गतिके संबंधी वेदवाक्यविषै दुर्बलप्रसंगसैं प्रसंगविषै प्राप्त ब्रह्मवेत्ताके संबंधका असंभव है औ अन्यनाडीनके बी तिससैं संबंधके प्रसंगतैं औ श्रुतितै विरुद्धप्रसंगतैं । याका विस्तार प्रकट अर्थविषै देखलेना ।

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्य्येण । तं विद्याच्छुक्रममृतमिति तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥**

---

भेदन करिके निकसी हुयी एक सुषुम्ना नाम नाडी है, तिस नाडी-सैं अंतकालमैं हृदयविषै मनकूं वश करिके जोडे औ तिस नाडीसैं ऊपर जाता हुया सूर्यरूप द्वारसैं आपेक्षिक मरणधर्मसैं रहितभावकूं पावता है । काहेतैं "सर्व भूतनके प्रलय पर्य्यंत जो ब्रह्मलोकरूप स्थान है, सो अमरभाव कहियेहै" या स्मृतितैं । वा ब्रह्मलोकगत उपमासैं रहित भोगनकूं भोगिके ब्रह्मदेवके साथि कालांतरकरि मुख्य अमरभावकूं पावता है । औ चारि औरतैं नानाप्रकारकी गतिवाली जे अन्य नाडियां है, वे प्राणके गमनविषै निमित्त होवैहैं । कहिये, संसारकी प्राप्ति अर्थहीं होवैहैं ॥१६॥

टीकाः—अब सर्व वल्लीनकी समाप्तिअर्थ कहैहैः—अंगुष्ठमात्र पुरुष जो अंतरात्मा है, सो सदा जनोंके संबंधि हृदयविषै थित है । सो जैसा है तैसा पूर्व [ ४ वल्लीके १२ औ १३ वें मंत्रविषै ] व्याख्यान कियाहै, ताकूं मुंज नामक तृणतैं ईषिका ( सलाका ) की न्यांई धैर्य्य ( अप्रमाद )सैं अपनें शरीरतैं निकासिके भिन्न करना । औ तिस शरीरतैं निकसे चेतनमात्र वस्तु-कूं शुद्ध औ अमृतरूप ( कथन किया ब्रह्म ) जानना, तिसकूं शुद्ध औ अमृतरूप जानना । इहां ऐसैं दो वार जो कथन है सो उपनिषद्की समाप्तिअर्थ है ॥ १७ ॥

**मृत्युप्रोक्तान्नचिकेतोऽथ लब्ध्वा। विद्यामेतां योगविधिश्च कृत्स्नम्। ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्समेव ॥ १८ ॥**

**सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ हरिः ॐ ॥ १९॥**

इति द्वितीयाध्याये तृतीयवल्ली ॥ ६ ॥

इति श्रीयजुर्वेदीयकठोपनिषत् समाप्ता ॥ ३ ॥

---

**टीकाः**—अब विद्याकी स्तुतिअर्थ यह यम औ नचिकेताकी आख्यायिकाके अर्थकी समाप्ति कहियेहैः—पीछे यम-राजा-नैं कथन करी इस ब्रह्म-विद्याकूं औ सामग्रीसहित अरु फलसहित संपूर्ण योगके विधिकूं नचिकेता यमके वरदानसैं पायके विद्याकी प्राप्तिसैं धर्म अधर्मसैं रहित मृत्युरहित औ कामना अरु अविद्यासैं रहित हुया पूर्व ब्रह्मकूं प्राप्त ( मुक्त ) होता भया। केवल नचिकेताहीं मुक्त भया ऐसैं नहीं, किंतु अन्य बी जो पुरुष ऐसैं नचिकेताकी न्यांई निरामय तिसीहीं अध्यात्म[११८] ( प्रत्यक् स्वरूप )कूं उक्तप्रकारसैं जानता है, सो ऐसैं जाननेंवाला बी पुण्यपापसैं रहित हुया ब्रह्मकी प्राप्तिसैं मृत्युरहित होवैहै ॥ १८ ॥

**टीकाः**—अब शिष्य औ आचार्यके प्रमादसैं किये अन्यायकरि विद्याके ग्रहण अरु प्रतिपादनरूप निमित्तसैं भया जो दोष, ताकी

---

११८ देहरूप आत्माका आश्रय होयके वर्त्तता है, ऐसा जो प्रत्यक्स्वरूप ब्रह्म है, सो अध्यात्म है। ऐसा जो अध्यात्म ताहींकूं पायके मृत्युरहित होवैहै, अन्य अर्चि आदिक मार्गसैं पावनेंयोग्यरूपकूं पायके नहीं; कातें, संयोगकूं वियोगकी वासना ( अपेक्षा )वाला होनेंतैं। यह अर्थ है।

निवृत्तिअर्थ यह शांति कहियेहै:—जो उपनिषद्विषै प्रकाश किया परमेश्वर है, सोई विद्याके स्वरूपके प्रकाशसैं हम शिष्य अरु गुरु दोनूं-कूं पालन करहु। किंवा, सोई परमेश्वर हम दोनूंकूं तिस ब्रह्मविद्याके फलके प्रकाशसैं पालन करहू। औ सोई हम दोनूंके ताईं विद्याके किये सामर्थ्यकूं संपादन करहू। किंवा, तेजस्वी भये हम दोनूंका जो अध्ययन किया है, सो सम्यक् अध्ययन किया होहु। अथवा, हम दोनूंनैं जो अध्ययन किया है सो अध्ययन तेजस्वि (सामर्थ्यवाला) होहू। औ सो परमेश्वर हम शिष्य औ आचार्यके ताईं परस्पर प्रमादसैं किये अन्यायकरि पढनें औ पढावनेके दोषरूप निमित्तवाले द्वेषकूं मति करहु ॥ हमकूं शांति होहु, शांति होहू, शांति होहू। इहां ऐसैं तीनवार जो शांतिशब्दका उच्चारण है, सो सर्व दोषकी निवृत्तिअर्थ है, औ इति शब्द जो है सो उपनिषद्की समाप्ति अर्थ है ॥ १९ ॥

इति श्रीकठोपनिषद् द्वितीयाध्यायगत तृतीयवल्ली भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ६ ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजिकाचार्य बापुसरस्वतिपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा श्रीमद्भगवत्पादकृत भाष्यानुसारेण विरचिता कठोपनिषद् भाष्यभाषादीपिका समाप्ता॥३॥

---

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

॥ ॐ ॥

# अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् ॥ ४ ॥

## अथ प्रथमप्रश्नः ॥ १ ॥

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैव्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्व्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

---

श्री

## अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाः ४

अथ प्रश्नोपनिषद्गत प्रथमप्रश्न भाष्य भाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ १ ॥

टीकाः—अथर्वणवेदके [2]मंत्रनसैं उक्त जो अर्थ है, ताका वि-

---

१ या उपनिषद्विषै कबंधी आदिक छे शिष्योनैं प्रश्न कीयेहैं, तिनका पिप्पलाद नामक आचार्यनैं उत्तर दिया है। यातैं याका नाम प्रश्नउपनिषद् है।

२ परिमित अक्षरवाला वेदका वाक्य मंत्र, कहियेहै।

स्तौरकरि अनुवादतैं यह प्रश्नोपनिषद्रूप ब्राह्मण आरंभ करियेहै। यामैं ऋषिनके प्रश्न औ उत्तररूप जो आख्यायिका है, सो विद्याकी स्तुतिअर्थ है। सो ब्रह्मविद्या, ऐसैं आगे कहनेके प्रकारसैं संवत्सरपर्यंत ब्रह्मचर्यसैं गुरुकुलविषै वास औ तप आदिक साधनोंकरि युक्त अधिकारीनकरि ग्रहण करनेयोग्य है औ पिप्पलाद आदिक मुनिकी न्यांई सर्वज्ञके तुल्य आचार्यनकरि कहनेंयोग्य है, जिसकिसकरि नहीं; ऐसी वि-

---

३ अथर्वणवेदविषै "ब्रह्म देवनकूं" इत्यादिक मंत्रनसैंहीं आत्मतत्त्वकूं निर्णय किया होनैंतैं, तिसीहीं अथर्वणवेदविषै या उपनिषद्रूप ब्राह्मणभागसैं, जो फेर तिस आत्मतत्त्वका कथन है, सो पुनरुक्तिदोष है? यह आशंका मनमैं ल्यायके मंत्रनसैं संक्षेपतैं कथन किया जो आत्मतत्त्व, ताहीका इहां इस ब्राह्मणभागकरि विस्तारसैं प्राणकी उपासना आदिक साधनकरिसहित होनेसैं कथन है; यातैं पुनरुक्तिदोष नहीं है। ऐसैं कहतेहुये आचार्य, इस ब्राह्मण भागकूं प्रकट करैहैं ॥ इहां यह विशेष है:—मंत्ररूप जे विद्या हैं, वे पर औ अपर भेदतैं दोभांतिकी हैं। तिनमैं ऋग्वेद आदिक नामवाली अपरविद्या है, सो कर्मरूप औ उपासनारूप अविद्या है। तिनमैं दूसरी जो उपासना है, सो द्वितीय औ तृतीय प्रश्नसैं वर्णन होवैगी। प्रथम जो कर्मरूप है, सो कर्मकांडविषै वर्णन करी है, यातैं इहां वर्णन नही करियेहै। दोनूंका फल तो तिसतैं वैराग्य अर्थ प्रथमप्रश्नविषै स्पष्ट करियेहै। प्रथम उक्त पर अपर दोनूं विद्याविषै दूसरी परविद्या जो है, सो "अब जासैं सो अक्षर जानियेहै, सो परविद्या है" ऐसैं आरंभ करिके सारी मुंडकउपनिषद्सैं प्रतिपादन करी है। तहां बी "जैसैं प्रज्वलित अग्नितैं" इत्यादि दोनूं मंत्रनसैं उक्त अर्थके विस्तारअर्थ चतुर्थ प्रश्न है। "ॐकार धनुष है" इस मंत्रविषै उक्त अर्थके स्पष्ट करने अर्थ षष्ठ प्रश्न है। इसरीतिसैं यह प्रश्नउपनिषद्रूप ब्राह्मण, तिनमंत्रनके विस्तारके अनुवादका करनेवाला है। याहीतैं याके विषय औ प्रयोजन आदिक अनुबंध तहांहीं कहेहैं, यातैं इहां फेर नहीं कहिये हैं। ऐसैं जानना।

४ अपरिमित अक्षरवाला वेदका वाक्य, ब्राह्मण कहियेहै।

द्याकी स्तुति करैहैं। ब्रह्मचर्य आदिक साधनोकी सूचनासैं तिनके करनेकी योग्यता सिद्ध होवैहैः—भरद्वाजका पुत्र सुकेशा नामवाला मुनि औ शिबि ऋषि-का पुत्र सत्यकाम नामवाला मुनि औ अश्वल ऋषिका पुत्र कौशल्य नामवाला मुनि, औ सूर्यके पुत्र सौर्य मुनि-का पुत्र गर्गगोत्रविषै उत्पन्न भया गार्ग्य-नामवाला मुनि औ विदर्भदेशका निवासी भृगुके गोत्रविषै उत्पन्न भया भार्गव नामवाला मुनि, औ कत्यके पुत्र कात्यायन ऋषिरूप विद्यमान प्रपितामह (बडेदादे) वाला कबंधी नाम मुनि; ये प्रसिद्ध छे मुनीश्वर अपरब्रह्मकूं तत्पर होनेंकरि प्राप्त भये हैं, यातैं ब्रह्मपर हैं, औ तिसके अनुष्ठानविषै निष्ठावाले हैं, यातैं ब्रह्मनिष्ठ हैं। वे "जो नित्यवस्तु जाननेंयोग्य है सो क्या है? ताकी प्राप्ति अर्थ हम इच्छाके अनुसार यत्न करेंगे" इस अभिप्रायसैं परब्रह्मकूं खोजते हुये तिसके जाननें अर्थ "यह आचार्य निश्चयकरि सो सर्व कहेगा, ऐसैं विचारिके वे समिधनका भारा ग्रहण कियाहै हाथमैं जिनोनें, ऐसै समित्पाणि हुये भगवान् (पूजावान्) पिप्पलाद मुनिरूप आचार्य्य-के तांई समीप जाते भये ॥ १ ॥

---

५ इस ऋषिनकी आख्यायिकाका पूर्व कल्पविषै विद्यमान साधनोके स्वरूपसैं ब्रह्मचर्य औ तप आदिक साधनका विधानरूप अन्य प्रयोजन है। ऐसैं कहैहैं।

६ इहां समिधनका जो ग्रहण है, सो यथायोग्य दंतकाष्ठ आदिक आचार्यके उपयोगी सामग्रीके ग्रहण अर्थ है। सूके काष्ठरूप जे समिध हैं, वे बी ऋषिनकूं अग्निहोत्रादिकविषै उपयोगी होवैहैं, यातैं तिनके ग्रहणकी विधि है। परंतु मुमुक्षुकूं आचार्यके उपयोगी पदार्थरूप भेटा हाथमैं लेके शरण होना चाहिये। यह तात्पर्य है।

७ प्रिय वस्तुकी भेटा लेके गुरुके पास जायके ताके पादका ग्रहण करिके, "हे भगवन्! मुजकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करो" इत्यादि वचनके उच्चारणपूर्वक साष्टांगनमस्कार करनेरूप उपसत्तिकूं करते भये। यह अर्थ है।

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ । यदि विज्ञास्यामः सर्व्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥ २ ॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ। भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त ? इति॥३॥

---

टीकाः—ऐसैं समीप प्राप्त भये तिन छे ऋषिन-कूं सो पिप्पलाद-ऋषि स्पष्ट कहता भया। पिप्पलाद उवाचः-यद्यपि तुम तपस्वीहीं हो तथापि इहां फेर बी विशेषतैं इंद्रियनके संयमरूप तपसैं औ ब्रह्मचर्य्यसैं औ आस्तिकभावकी बुद्धिरूप श्रद्धासैं आदरवान् हुये संवत्सर (एकवर्षके काल) पर्य्यंत सम्यक् गुरुकी सेवाविषै तत्पर हुये वास करो; ताके पीछे जैसी जिसकूं इच्छा होवै तिस-के अनुसार जाकूं जिस विषयविषै जिज्ञासा होवै तिस विषयके संबंधी प्रश्नोंकूं पूंछो। जब हम तिस तुमारे पूंछे हुये वस्तुकूं जानते होवैंगे तब तुमारे पूंछे हुये सर्व वस्तु-कूं स्पष्ट कहैंगे ॥ २ ॥

टीकाः—तब एक वर्षके पीछे कात्यायन ऋषिका प्रपौत्र (परपोता) कबंधी नामवाला। मुनि समीप जायके पूंछता भयाः-हे भगवन्! ये प्रसिद्ध ब्राह्मण आदिक प्रजा किस कारणतैं उपजे हैं? मिलित औ अमिलितरूप जो अपरब्रह्मकी विद्या औ कर्म ये

---

८ इहां यदिशब्दका पर्यायरूप जो जब शब्द है, सो निरभिमानताके दिखावने अर्थ है. अज्ञान औ संशयके अर्थ नहीं। यह सर्व प्रश्नोके निर्णयतैं जानियेहै।

९ वे छे मुनीश्वर परब्रह्मकूं खोजते हुये पिप्पलाद मुनिके पास गये, ऐसैं आरंभ किये इस ब्रह्मके प्रकरणविषै प्रजापतिकृत प्रजाकी सृष्टिक

**तस्मै स होवाच । प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिश्च प्राणश्चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥ ४ ॥**

---

दो हैं, तिनका जो कार्य्य है, औ जो गति है, सो आपकरि कहनें योग्य है । तिस अर्थवाला यह प्रश्न है ॥ ३ ॥

**टीकाः**—तिस ऐसें पूंछनेंवाले कवंधी मुनि-के तांई सो पिप्पलादमुनि ताकी शंकाके निवारण अर्थ कहते भये । पिप्पलाद उवाचः—हे कबंधिन् ! आपकी प्रजाके सृजनेंकी इच्छावाला जो प्रजापति ( ब्रह्मदेव ) सो सर्वात्मा, औ "जगत्कूं मैं सृजूं" ऐसै

---

विषय करनेवाले प्रश्न औ उत्तरका कथन असंगत है ? यह आशंका मनमैं ल्यायके प्रश्नउत्तररूप श्रुतिका तात्पर्य कहैहैं । इहां यह भाव हैः—" तिनकूं यह निर्मल ब्रह्मलोक होवैहै " ऐसें उपासनाके समुच्चयकरि युक्त कर्मके कार्य ब्रह्मलोककूं, औ " अब उत्तरायणसैं " ऐसें तिस ब्रह्मलोककीं गतिरूप देवयानमार्गकूं आगे प्रथम प्रश्नविषै कथन किया होनेतैं यह अर्थ बनैहै । यह उपासनाकरि युक्त कर्मका कथन केवल कर्मोका उपलक्षण है, ऐसैं बी जानना, काहेतैं, केवल कर्मके कार्य इंद्रलोककूं औ तिस इंद्रलोककी गतिरूप पितृयानमार्गकूं बी "तिनकूंहीं यह ब्रह्मलोक (चंद्रमंडलविषै भया इंद्रलोक) होवैहै," "प्रजाकी कामनावाले दक्षिणायनमार्गकूं पावते हैं"; ऐसैं आगे प्रथमप्रश्नविषैहीं कथन किया होनेतैं ॥ यद्यपि परब्रह्मकी जिज्ञासाके अवसरविषै यह कथन बी असंगतहीं है, तथापि केवल कर्मके कार्यतैं औ उपासनारूप कर्मके कार्यतैं विरक्तकूंहीं तहां अधिकार है । यातैं तिस कर्मउपासनाके फलतैं वैराग्य अर्थ यह कहियेहै । यद्यपि मुखतैं सृष्टि प्रतीत होवै है, तथापि तिस सृष्टिके कथनविषै प्रयोजनके अभावतैं सृष्टिके कथनके मिषकरि परब्रह्मकी विद्याका फलहीं इहां कहियेहै ।

ज्ञानवाला, औ ज्ञान कर्मके समुच्चयका कर्त्ता, औ पूर्वकल्पसंबंधी हिरण्यगर्भभावकी भावनाकरि युक्त, औ इस कल्पकी आदिविषै हिरण्यगर्भरूपसैं सुखकूं प्राप्त भया औ स्त्रजी हुयी स्थावरजंगमरूप प्रजाका पति हुया, पीछे प्रजाकी कामनावाला हुया, जन्मांतरविषै भावना किये औ श्रुतिविषै प्रकाश किये अर्थकूं विषय करनेवाले ज्ञानरूप तपकूं तपता भया; कहिये चित्त आदिकसैं ताके संसारकूं जगायके उत्पन्न करता भया। [10]पीछें सो प्रजापति ऐसैं श्रुतिउक्त अर्थके ज्ञानरूप तपकूं तपिके (देखिके) सो सृष्टिके साधनरूप [11]रयि (अन्नरूप) चंद्र औ अन्नके भोक्ता [12]प्राणरूप अग्नि (सूर्य) इस युगलकूं उत्पन्न करता भया ॥ [क्या चिंतन करिके करता भया? तहां कहैहैं:-] ये दोनूं अन्न औ अन्नके भोक्तारूप चंद्र औ अग्नि (सूर्य), "मेरी अनेक प्रका-

---

१० तहां प्रथम सूर्य औ चंद्रकी उत्पत्तिसैं तिनके भावकूं पायके पीछे चंद्र औ सूर्यसैं साधनेयोग्य संवत्सरभावकूं पायके, ऐसैंहीं तिस संवत्सरके अवयवरूप दो अयन, मास, पक्ष, औ दिन रात्रके भावकूं पायके, ताके पीछे तिन अयन आदिककरि साधनेयोग्य तंडुल आदिक अन्नभावकूं औ रेतभावकूं पायके, ता रेतसैं प्रजाकूं सृजूं; ऐसैं निश्चय करिके प्रथम रयि (अन्न) औ प्राणशब्दके वाच्य चंद्र औ सूर्यकूं सो प्रजापति उत्पन्न करता भया; ऐसैं अब कहैहैं।

११ इहां धनके वाची रयिशब्दसैं भोज्यपदार्थनके समूहकूं लखायके भोज्य (अन्न)कूं चंद्रमाके किरणोके अमृतकरि युक्त होनेंतैं तिसद्वारा चंद्रमा लखियेहै; या अभिप्रायसैं कहैहैं।

१२ ऐसैं "मैं वैश्वानर (जठराग्नि)रूप होयके प्राणिनके देहके प्रति आश्रयकूं पाया हूं औ प्राण अपान वायुकरि युक्त हुया च्यारी प्रकारके अन्नकूं पकावता हूं" या गीतास्मृतिके वाक्यतैं अग्निकूं प्राणके संबंधतैं प्राणशब्दसैं बी अग्निरूप भोक्ता लखियेहै; या अभिप्रायसैं इहां कहैहैं।

**आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्च तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः५**

**अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान्रश्मिषु सन्निधत्ते। यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्द्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥**

---

रकी प्रजाकूं करेंगे" ऐसें चिंतन करिके ब्रह्मांडकी[13] उत्पत्तिके क्रमसैं सूर्य औ चंद्रकूं कल्पता भया ॥ ४ ॥

टीकाः—तिन दोनूंमैं सूर्य्य जो है सो निश्चयकरि प्रसिद्ध प्राणरूप अन्नका भोक्ता अग्नि है, औ अन्न-रूप-हीं चंद्रमा है। यह एक भोक्ता औ अन्नरूप युगल एकहीं प्रजापति है; तिसका गौण[14] मुख्यभावका किया भेद है ॥ कैसें भेद है? तहां कहैहैं:— जो स्थूल औ सूक्ष्मरूप मूर्त्त औ अमूर्त्त जगत् है, सो यह सर्व अन्न-रूप-हीं है। तातैं[15] भिन्न किये अमूर्त्ततैं जो अन्य मूर्त्त(स्थूल) मूर्त्ति है, सोई अन्न है। काहेतैं अमूर्त्त ( सूक्ष्म ) प्राणरूप भोक्ता-करि भोग्या हुया होनेतैं ॥ ५ ॥

टीकाः—तैसें अमूर्त्त प्राण ( सूर्य्य )रूप अन्नका भोक्ता बी जो

---

१३ अग्नि औ चंद्रकूं ब्रह्मांडके अंतर्गत होनेकरि ब्रह्मांडकी उत्पत्तिके अनंतर तिनकी उत्पत्ति होवैहै; या अभिप्रायसैं इहां कहैहैं।

१४ ननु, चंद्र औ सूर्य, इस युगलकूं जब प्रजापतिभावसैं एकता है, तब एककूं भोक्ता औ अन्न, यह भेद कैसें बनै? यह आशंका करिके तिस एकहीं प्रजापतिकूं गुणभावके कहनेकी इच्छासैं अन्नपना है, औ प्रधानभावके कहनेकी इच्छासैं भोक्तापना है, यह भेद है; ऐसें कहैहैं।

१५ ननु, मूर्त्तरूप अन्न औ अमूर्त्तरूप भोक्ता, इन दोनूंकूं बी जब

**स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते। तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ॥ ७ ॥**

---

अन्न (भोज्य) है, तिस सर्वरूपहीं है ॥ कैसैं सो सर्वरूप है? तहां कहैहैंः—अब सूर्य उदय हुया जो पूर्वदिशाके तांई प्रवेश करता है, तिसकरि ता प्राचीदिशाके तांई अपने प्रकाशकरि व्यापता है। तिस अपनी व्याप्ति-सैं प्राची ( पूर्व ) दिशाके अंतर्गत सर्व प्राणीनके तांई अपने प्रकाशरूप व्यापक किरणोंविषै व्याप्त होनेंतैं प्रवेश करता है। कहिये अपनें रूप करता है। तैसैंही जो दक्षिण दिशाके तांई औ जो पश्चिम दिशाके तांई औ जो उत्तर दिशाके तांई प्रवेश ( प्रकाश ) करता है औ जो नीचेकूं अरु जो ऊंचेकूं औ जो बीचकी अवांतर दिशारूप अग्नि आदिक कोणकी दिशाके तांई प्रवेश करता है औ जो अन्य सर्व जगत्-कूं प्रकाशता है, तिस अपने प्रकाशकी व्याप्ति-सैं सर्व दिशाविषै स्थित सर्व प्राणीकूं किरणोंविषै प्रवेश करता है॥६॥

टीकाः—सो यह भोक्ता प्राण वैश्वानर सर्वात्मा विश्वरूप है औ विश्वका आत्मा होनेंतैं प्राण औ अग्निरूप है। सोई भोक्ता दिन दिनविषै सर्व दिशाकूं अपना रूप करता हुया उदय होवैहै। सो यह कथन किया वस्तु आगिले अष्टम वाक्यमय वेदके मंत्ररूप ऋचानैं वी कहाहै ॥ ७ ॥

---

अन्नमय चंद्ररूपता है, तब "अन्नहीं चंद्रमा है" ऐसैं जो पूर्व कहा सो कैसैं बनैगा? यह आशंका करिके, मूर्त्त औ अमूर्त्तपनैंके विभागकूं न करिके सर्वकूं गुणभावमात्रके कहनेकी इच्छासैं "सर्व अन्न है" ऐसैं कहाहै। जब दोनूं, विभाग करिके गुण औ प्रधानभावसैं कहनेकूं इच्छित होवैं, तब अमूर्त्तरूप प्राणसैं मूर्त्तद्रव्यकूं भुक्त होनेंतैं मूर्त्तकूंहीं अन्नपना है; ऐसैं इहां कहैहैं।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ॥ ८ ॥

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च । तद्ये वै तदिष्टापूर्त्ते कृतमित्युपासते । ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते । त एव पुनरावर्त्तन्ते । तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते । एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥

---

टीकाः—सर्वरूप किरणोंवाला, ज्ञानवान्; सर्व प्राणका आश्रय, सर्व प्राणीका चक्षुरूप ज्योति अद्वितीय, औ ताप क्रिया-के करनेवाले अपने आत्मारूप सूर्य-कूं ब्रह्मवेत्ता पंडित जानते भये॥ ८ ॥

टीकाः—जो यह मूर्त्तिमय अन्नरूप चंद्रमा है औ अमूर्त्तिमय अन्नका भोक्ता प्राणरूप सूर्य है, सो यह एक युगल सर्वरूप है । ये दोनूं मेरी बहुत प्रकारकी प्रजाकूं करैंगे ॥ कैसैं करैंगे? [१६] तहां सोई कहिये हैः—संवत्सररूप जो काल है, सोई प्रजापति है । काहेतैं संवत्सरकूं तिस प्रजापतिकरि निर्वाह किया होनेतैं । जातैं चंद्र औ सूर्य (इन दोनूं प्रजापतिन) करि निर्वाह करनेयोग्य तिथि दिवस औ रात्रिनका समुदायरूप जो संवत्सर है, सो तिन चंद्र औ सूर्यसैं अभिन्न होनेतैं, चंद्र औ सूर्यरूप है । यातैं सो संवत्सर तिस युगलरूपहीं है, ऐसैं कहियेहै ॥ सो कैसैं है? तहां कहियेहैः—तिस संवत्सररूप प्रजापति-के दक्षिण औ उत्तररूप प्रसिद्ध षट्मास स्वरूप दोनूं अयन (मार्ग) हैं । जिन दक्षिण औ उत्तर भागकरि सूर्य जो है सो क्रमतैं केवल कर्मिष्टजनोके औ उपासना-

---

१६ चंद्रसूर्यरूप अन्न औ प्राणकूं संवत्सर आदिकद्वारा प्रजाकी उत्पत्तिका कर्त्तापना है ऐसैं इहां कहैहैं ।

**अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १० ॥**

---

संयुक्त कर्मवाले जनोके लोकनकूं पालन करता हुया जाता है। सो कैसें है ? तहां कहैहैं:—तिनमैं ब्राह्मण आदिकनविषै जे जन ऐसैं निश्चयकरि ता इष्ट[17] औ पूर्त्त[18] इत्यादि रूप कृत(कर्म)कूंहीं नित्य उपासते हैं ॥ अकृत(अकार्य)कूं नहीं। वे जन, चंद्रमाविषै भये युगलरूप प्रजापतिके अंशमय अन्न(भोज्य)रूप लोककूंहीं पावतेहैं। काहेतैं, चंद्रमाविषै भये लोककूं कर्मरूप होनेंतैं । सोई जन पुण्य कर्मके क्षयतैं फेर आवृत्ति ( जन्ममरणकी परंपरा )कूं पावतेहैं। कहिये अतिशय हीन या लोकके ताई प्रवेश करतेहैं। जातैं ये स्वर्गके द्रष्टा ऋषि औ प्रजाकी कामनावाले गृहस्थ, ऐसैं अन्नमय प्रजापतिरूप चंद्रकूं फलरूप होनेकरि इष्ट औ पूर्त्तरूप कर्मसैं निर्वाह करैहैं; तातैं अपनें पुण्यकर्मरूपहीं दक्षिणायन-सैं लक्षणासैं जाने हुये चंद्र-कूं पावतेहैं। यह जो पितृयान-मार्गकरि लक्षणासें जान्या हुया चंद्रमा है, सो निश्चयकरि प्रसिद्ध अन्न है॥९॥

टीकाः—औ दूसरे उत्तर अयन (मार्ग)सैं इंद्रियनके जयरूप तपकरि औ विशेषतैं ब्रह्मचर्यकरि औ श्रद्धाकरि औ प्रजापतिके तादात्म्यकूं विषय करनेवाली उपासनारूप विद्यासैं स्थावरजंगमके

---

१७ अग्निहोत्र, तप, सत्य, देवनका आराधन, अतिथिभोजन, औ वैश्वदेवरूप जो कर्म; सो इष्ट कहियेहै ।

१८ वापी कूप तडाग आदिक औ देवमंदिर अन्नदान औ देवताके निमित्त बाग करना इत्यादिरूप जो कर्म, सो पूर्त्त कहियेहै ।

**पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् । अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥ ११ ॥**

आत्मा औ प्राणरूप सूर्य-कूं "यह मैं हूं" ऐसैं जानिके युगल प्रजापतिके अंश प्राणमय अन्नके भोक्तारूप सूर्यकूं पावतेहैं, यहहीं सर्व प्राणोंका सामान्य ( समष्टिरूप ) आश्रय है, औ यह अविनाशी है, याहीतैं भयरहित है; चंद्रकी न्याई क्षय औ वृद्धिके भयवाला नहीं । यह केवल उपासनावाले औ कर्म उपासनाके समुच्चयवाले जनोकी परमगति है, यातैं जैसैं अन्य केवल-कर्मवाले जन पुनरावृत्तिकूं पावतेहैं, तैसैं इसतैं पुनरावृत्तिकूं पावते नहीं । जातैं सूर्यतैं रोके हुये ये अविद्वान् जन आत्मा औ प्राण-मय संवत्सररूप सूर्यकूं पावते नहीं, तातैं ऐसैं सोई यह कालरूप संवत्सर अविद्वानोका निरोध है । तिसीहीं इस अर्थ-विषै सो यह आगिला ग्यारवे वाक्यमय श्लोक-रूप वेदका मंत्र प्रमाण है ॥१०॥

**टीका:**—इस संवत्सररूप सूर्यके पंचऋतु पादकी न्याई पाद हैं । तिन ऋतुनसैं यह सूर्य पादनसैं पुरुषकी न्याई वर्त्तता है । यातैं यह पंचपादवाला है । तिस संवत्सररूप सूर्यकूं सर्वका जनक होनेतैं पितापना है, यातैं यह पिता है । औ द्वादशमासमय षट्-ऋतुरूप अवयववाला है, यातैं यह द्वादशाकृति है । अथवा द्वादशमासनसैं इस संवत्सररूप सूर्यके अवयवीभावका करना होवैहै, यातैं द्वादशमासमय ऋतुरूप इसके अवयवीभावका करना है, यातैं यह द्वादशाकृति है । औ आकाशरूप अंतरिक्षलोकतैं पर अरु ऊंचे स्थानरूप तीसरे स्वर्गविषै स्थित है औ जलवाला है । ऐसैं ताकूं

१९ दोदो मासके ऋतु यद्यपि षट् हैं, तथापि इहां पंचऋतुनका कथन जो है सो हेमंत औ शिशिरकी एकरूपताके अभिप्रायसैं है ।

२० "सूर्यतैं वृष्टि होवैहै" या स्मृतितैं सूर्य जलवाला है, यह जानि-

**मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुल्कः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुल्क इष्टिं कुर्व्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥ १२ ॥**

---

अन्य कालके वेत्ता कहतेहैं ॥ औ ये दूसरे तो ता सर्वज्ञकूं सप्त अश्वरूप औ षट्ऋतुवाले इस निरंतर गतिवाले कालरूप चक्रविषै रथकी नाभिमैं अराकी न्याई यह सर्व जगत् स्थित है, ऐसैं कहतेहैं। जब प्रथमपक्षविषै पंचपादवाला औ द्वादश आकृतिवाला है, औ जब द्वितीयपक्षविषै सप्त अश्वरूप अरु षट्ऋतुवाला है; [२१] सर्व प्रकारसैं बी संवत्सरमय कालरूप औ चंद्र सूर्य स्वरूप हुया बी प्रजापति जगत्का कारण है ॥ ११

टीकाः–जिसविषै यह विश्व स्थित है, [२२] सोई संवत्सर नामवाला प्रजापति अपने अवयवरूप मासविषै सारा पूर्ण होवैहै। मास जो है सो अन्न औ अन्नका भोक्ता इस युगलस्वरूप संवत्सररूप प्रजापतिहीं है। युगलस्वरूप तिस मासरूप प्रजापति-का एकभाग कृष्णपक्ष-

---

ये है। सूर्य जब बहुत तपता है, तब जलकूं वर्षता है; यह प्रसिद्धहै, यातैं बी सूर्य जलवाला है, यह निश्चय होवैहै।

२१ इहां यह भाव है:–पूर्वमतविषै ऋतुनके पादपनैंकी कल्पनासैं मासनके अवयवपनैंकी कल्पनासैं, सूर्यरूपकरि संवत्सररूप कालहीं कहा। दूसरे मतविषै तो हेमंत औ शिशिर ऋतुकूं भिन्न करिके षट्ऋतुनके रथचक्रगत अनेकवक्रकाष्ठरूप अरपनैंकी कल्पनासैं संवत्सरकूं चक्रकी न्याईं भ्रमणरूप गुणके योगसैं चक्रपनैंकी कल्पनासैं औ कालके मुख्यभावसैं सर्वका आश्रय होनेकरि सोई संवत्सररूप काल कहा। दोनूं पक्षविषै बी गुणके भेदसैं औ कल्पनाके भेदसैं भेद है; कालरूप धर्मीका भेद नहीं।

२२ संवत्सरकूं बी मास औ दिन रात्रिरूप हुये विना औषधि आदिकको जनकताका अभाव है, तातैं ताकी मास आदिकरूपताकूं अब कहैहैं।

**अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति । ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥**

---

हीं है, सो अन्न-रूप चंद्रमा है । औ दूसरा भाग शुक्ल-पक्ष है, सो प्राण औ अग्निमय भोक्ता सूर्य है । जातैं शुक्लपक्षरूप प्राणकूं सर्वरूपहीं देखते हैं औ जातैं प्राणतैं भिन्न कृष्णपक्षकूं वे नहीं देखते हैं, तातैं देखनेवाले ये ऋषि, इच्छित यागकूं कृष्णपक्षविषै करते हुये बी शुक्ल-पक्षविषैहीं करतेहैं । औ अन्य-ऋषि तो शुक्लपक्षकूं सर्वात्मा प्राणरूप देखते नहीं, किंतु प्राणरूपसैं न देखनेरूप कृष्णपक्षके भावकूं प्राप्त भये शुक्लपक्षकूंहीं देखतेहैं । वे इच्छित यागकूं शुक्लपक्षविषै करते हुये बी अन्य (कृष्ण)पक्षविषैहीं करतेहैं॥१२॥

**टीकाः**—सो मासरूप प्रजापति बी आपके अवयवरूप दिन औ रात्रिविषै पूर्ण होवैहै, यातैं सो दिनरात्र, प्रजापति है । ता दिनरात्ररूप प्रजापति-का बी दिवसहीं प्राण औ अग्निरूप अन्नका भोक्ता सूर्य है औ रात्रिहीं अन्न-रूप चंद्रमा है । मूढपुरुष, दिनविषै प्रीतिकी कारण स्त्रीके साथि मैथुनकूं आचरतेहैं, ये पुरुष दिवसरूप प्राणकूं गमावतेहैं; वा अपने स्वरूपतैं काटिके गमावतेहैं । जातैं ऐसैं है, तातैं दिनविषै सो मैथुन, करने योग्य नहीं । ऐसैं यह दिनके मैथुनका निषेध प्रसंगसैं कहा औ जो रात्रिविषै ऋतुकालमैं स्त्रीके साथि मैथुनकूं आचरतेहैं, सो ब्रह्मचर्यहीं है । जातैं सो श्रेष्ठ है यातैं रात्रिविषै ऋतुकालमैं भार्याका गमन करनेयोग्य है । यह ऋतुगमनका विधि बी प्रसंगसैं कहा । अब चलता प्रसंग कहियेहैः—सो दिवस औ रात्रिरूप प्रजापति, चावल औ यव आदिक अन्नरूपसैं स्थित भया है ॥ १३ ॥

**अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १४ ॥**

**तद्ये ह तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥**

---

**टीकाः**—ऐसैं क्रमकरि दिनरात्ररूप प्रजापति, अन्नविषै परिणामकूं पावता है, यातैं अन्न-रूप भया प्रजापति है ॥ ताकूं प्रजाका जनकपना कैसैं है ? तहां कहैहैंः—भक्षण किये ता अन्न-तैं प्रसिद्ध मनुष्यका बीजरूप रेत[23] ( वीर्य ) होताहै, सो प्रजाका कारणहै। स्त्रीविषै सिंचन किये तिस रेत-तैं ये मनुष्य आदिकरूप प्रजा उत्पन्न होवैहैं । हे कबन्धिन् ! तैंनैं पूंछया था जो " किसतैं प्रजा उपजेहैं ?" ॥ सो ऐसैं दिनरात्रपर्यंत चंद्रसूर्यरूप युगल आदिकके क्रमसैं अन्नरूप रेतद्वारा वे प्रजा उपजेहैं ऐसैं निर्णय किया १४

**टीकाः**—तहां ऐसैं हुये, जे प्रसिद्ध गृहस्थ तिस ऋतुकालविषै भार्याके गमनरूप प्रजापतिके व्रतकूं करतेहैं, वे पुत्र औ पुत्रीरूप युगलकूं उपजावतेहैं । जिनैंकूं तप औ द्वादश वर्षपर्यंत पढे वेदकी समाप्तिस्वरूप स्नातकव्रत आदिरूप ब्रह्मचर्य औ ऋतुविषै औ अन्यकालविषै मैथुनका असमान आचरणरूप ब्रह्मचर्य है। औ जिनविषै जूठका त्यागरूप सत्य अव्यभिचारी होनेंकरि वर्त्तता है, ऐसैं इष्ट पूर्त्त अरु दानके करनेवाले तिन ऋतु गमनकारि

---

२३ इहां पुरुषके वीर्यका वाची जो रेत शब्द है, सो स्त्रीके रजरूप रक्तके बी ग्रहण अर्थ है, काहेतैं वीर्यरूपताकरि दोनूंकूं तुल्य होनेंतैं ।

२४ प्रजापतिव्रतके आचरणमात्रसैं जब चंद्रलोकरूप अदृष्ट फल प्राप्त होवै, तब उक्त व्रतवाले मूर्खनकूं बी उक्त फलकी प्राप्ति होवैगी; यातैं प्रजापति व्रतके साथि अन्य साधनकूं मिलायके कहैहैं ।

**तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्म-मनृतं न माया चेति ॥ १६ ॥**

**इति श्रीप्रश्नोपनिषदि प्रथमप्रश्नः समाप्तः ॥ १ ॥**

---

पुरुषन-कूं हीं यह जो [25]चन्द्रमंडलविषै पितृयानरूप ब्रह्मलोक है, सो अदृष्ट फल है ॥ १९ ॥

**टीकाः**—औ जो फेर शुद्ध है औ चंद्रमाके ब्रह्मलोककी न्यांई मल-सहित अरु वृद्धि क्षय आदिककरि युक्त नहीं, ऐसा जो सूर्यसैं उपल-क्षित उत्तरायणरूप प्राण (अपरब्रह्म)का आत्मभाव है, यह तिनका है। किनका है ? तहां कहियेहैः—जैसैं ग्रहस्थनकूं अनेक विरुद्ध व्यवहारके प्रयोजनवाला होनेतैं कुटिलभाव अवश्य होवैहै; तैसैं जिनविषै कुटिलभाव नहीं, औ जैसैं ग्रहस्थनकूं क्रीडा आ-दिकका निमित्त, जूठ, वर्जना करनेयोग्य नहीं; तैसैं जिनविषै सो जूठ नहीं, औ जिनविषै ग्रहस्थनकी न्यांई [26]मॉया नहीं है; ऐसैं जिन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ औ [27]संन्यॉसीरूप अधिकारीनविषै निमि-त्तके अभावतैं मायाआदिक दोष विद्यमान नहींहैं, तिनका यह साधनोंके अनुसारसैंहीं निर्मल ब्रह्मलोक है। [28]ऐसी यह उपासनायुक्त कर्मवाले जनोकी गति है। पूर्व कहा जो चंद्रलोक-रूप ब्रह्मलोक (स्वर्ग), सो केवल कर्मवाले जनोकी गति है ॥ १६ ॥

**इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गत प्रथमप्रश्न भाष्यभाषादीपिका समाप्त १**

---

२५ अपर ब्रह्मरूप प्रजापतिका अंश होनेतैं अन्नरूप चंद्रकूं ब्रह्मलोक-पना है, ताहीकूं चंद्रलोक औ इंद्रलोक बी कहैहैं।

२६ इहां माया ( कपट )का जो ग्रहण है, सो ताके तुल्य अन्य दो-षनके ग्रहण अर्थ है।

२७ इहां संन्यासीपदसैं परमहंसनतैं भिन्न कुटीचक नामक संन्यासी-नका ग्रहण है। काहेतैं, तिन परमहंस नामक संन्यासीनकूं ब्रह्मलोकतैं बी विरक्त होनेकरि तिस ब्रह्मलोकविषै इच्छारहित होनेतैं।

२८ अब मूलविषै जो इतिशब्द है, ताके अर्थकूं कहैहैं।

अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीयः प्रश्नः ॥ २ ॥

**अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ । भगवन्! कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते । कतर एतत् प्रकाशयन्ते । कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥**

---

## अथ प्रश्नोपनिषद्गत द्वितीयप्रश्न भाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ २ ॥

**टीकाः**–[२९]प्रथम प्रश्नविषै "प्राण जो है सो भोक्ता औ प्रजापति है" ऐसैं कहा। अब ताका प्रजापतिपना औ भोक्तापना इसी शरीरविषै निश्चय करनेंकूं योग्य है, इस अर्थके जनावनेंअर्थ इस द्वितीय प्र-

---

२९ इहांसैं अन्य प्रश्नका इस प्रथम प्रश्नसैं संबंध कहैहैं । इहां यह अर्थ है:–"भोक्ता जो है सो विश्वका श्रेष्ठ पति है" इस याके एकादशवें वाक्यसैं प्राणके भोक्तापनैंके कथनतैं औ "यह अग्निरूप हुया तपता है" इस पंचम वाक्यसैं आरंभ करिके "रथकी नाभिविषै अराकी न्याई प्राणविषै सर्व स्थित है" इस षष्ठ वाक्यसैं औ "प्रजापतिरूप तूंहीं गर्भविषै विचरता हैं औ माता पिताके तुल्य हुया जन्मता हैं" इस सप्ताम वाक्यसैं प्राणके प्रजापतिपनैंकूं आगे द्वितीयप्रश्नविषै कथन किया होनेतैं, प्राणका प्रजापतिपना औ अन्नका भोक्तापना निश्चय करनेंकूं योग्य है । यह प्रजापतिपनैं औ भोक्तापनैंका कथन, प्राणके अन्य गुणोका उपलक्षण है । इहां यह भाव है:–प्रथम प्रश्नविषै उक्त कर्म उपासनाकी गतिके श्रवणसैं विरक्त भये पुरुषकूं बी चित्तकी एकाग्रताविना आगे कहनेके स्वरूपकी असिद्धितैं तिसके अर्थ, औ मंदपुरुषनकूं फलविशेषके अर्थ, प्राणकी उपासनाके लिये अब दोनूं प्रश्नोका आरंभ है । तिनमैं बी प्राणके श्रेष्ठपनैं भोक्तापनैं औ प्रजापतिपनैं आदिक गुणोके निर्धारण अर्थ द्वितीय प्रश्न है । तिस प्राणकी उत्पत्ति आदिकके निर्धारणपूर्वक तिसकी उपासनाके विधान अर्थ तृतीय प्रश्न है; यह बी जानना ।

**तस्मै स होवाचाऽऽकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वा मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥ २ ॥**

---

श्नका आरंभ करियेहैः—पीछे इस पिप्पलादमुनि-कूं विदर्भदेशका निवासी भार्गव-ऋषि प्रसिद्ध पूंछता भया । हे भगवन् ! कितनैहीं[30] देव इस शरीररूप प्रजाकूं[31] विशेषकरि धारतेहैं ? औ ज्ञान इंद्रिय औ कर्म इंद्रियरूपसैं विभागकूं प्राप्त भये तिन देवनके मध्य कौंनसे देव इस अपनें मौहात्म्यके[32] प्रकट करनेंरूप प्रकाश-कूं करतेहैं ? औ फेर[33] इन कार्यकरणरूप देवन-के मध्य जो मुख्य है, यह कौंन है ॥ १ ॥

**टीकाः**—ऐसैं पूछनेंवाले तिस भार्जवऋषि-के ताईं सो पिप्प-

---

३० आकाश आदिक पांच महाभूत, पांच ज्ञानेंद्रिय, पांच कर्मेंद्रिय, मन, औ प्राण; इन सप्तदश तत्त्वनके अभिमानी जे सप्तदश देव हैं, तिनके मध्य कितनैं देव इस शरीरकूं धारण करतेहैं; यह अर्थ है ।

३१ इहां प्रजाशब्दसैं शरीरहीं ग्रहण करियेहै, जीव नहीं; काहेतैं; ता जीवकूं प्राणोका धारक होंनैकरि ताकूं तिन इंद्रिय आदिक देवरूप प्राणोकरि धारण होनेकी योग्यताके अभावतैं । या अभिप्रायसैं प्रजाशब्दका इहां शरीररूप अर्थ कहा है ।

३२ "पाककूं पकावता" है याकी न्याईं अवकाशके देणे आदिक औ अवलोकन आदिक जो आकाश आदिक भूत औ इंद्रियरूप देवनका अपना अपना कार्यरूप माहात्म्य है, तिसका लोकनके ताईं प्रकट करनेरूप प्रकाशकूं कौनसे देव करतेहैं ? यह अर्थ है ।

३३ इन सप्तदश देवनके मध्य अधिक कीर्तिवाला औ याहींतैं श्रेष्ठ (मुख्य) देव कौन है ? यह तीसरा प्रश्न है ।

लाद नामा मुनीश्वर प्रसिद्ध कहते भयेः—हे भार्गव! आकाश प्रसिद्ध [३४]यह देव है, वायु यह देव है, अग्नि यह देव है, जल यह देव है, पृथिवी यह देव है, वाक् (पांच कर्मइंद्रिय) यह देव है, मन यह देव है, चक्षु औ श्रोत्र ( पांच ज्ञानइंद्रिय ) यह देव है। शरीरके आरंभक पांच महाभूत औ वाक् मन चक्षु औ श्रोत्र इ- त्यादिक (पांच कर्मइंद्रिय औ पांच ज्ञानइंद्रियरूप) देव, शरीरकूं धारतेहैं। तिनके मध्य पांच कर्मइंद्रिय औ पांच ज्ञानइंद्रियरूप जे देव हैं; वे अपने माहात्म्यके प्रकट करनेरूप कार्यकूं करतेहैं। औ [३५]कार्यरूप अरु [३६]करणरूप वे देव आपके माहात्म्यकूं [३७]प्रकाश करिके श्रेष्ठता अर्थ स्पर्धा (ईर्ष्या)कूं करते हुये प्रासाद नामवाले बडे ग्र- हकूं स्तंभआदिककी न्याई, हम इस कार्यकारणके संघातरूप श- रीरकूं अशिथिल करिके स्पष्ट धारते हैं, ऐसैं कहतेहैं॥ मुज- एकसैंहीं यह संघात धारण करीता है, ऐसा एक एक इंद्रियरूप देवका अभिप्राय है॥ ३॥

---

३४ आगे कहनेके कथन आदिक व्यवहारकी सिद्धि अर्थ चेतनपनेकी संभावनाके लिये, इहां "देव" ऐसा विशेषण है। देवपदसैं अभिमा- नीका कथन तो आकाश आदिकके अभिमानी देवताके ग्रहण अर्थ है, अन्य देवनके ग्रहण अर्थ नहीं। तिस "देव" ऐसै विशेषणका वायु आ- दिकसैं बी संबंध है।

३५ देहके आकारसैं परिणामकूं प्राप्त भये आकाश आदिक, कार्य- रूप देव हैं।

३६ ज्ञानेंद्रिय औ कर्मेंद्रिय जे हैं, वे करणरूप देव हैं।

३७ आकाश आदिक देवनका जो अवकाशके देने आदिक, शरीर धारणके एकदेशरूप प्रकाश करनेयोग्य अपना अपना कार्य है, ताकूं सर्व लोकनके ताईं प्रकट जैसैं होवै तैसैं करिके, सर्व औरतैं सारे शरीरका धारण एक एक हमहीं करतेहैं, ऐसैं कहतेहैं; यह अर्थ है।

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथाऽहमेवैतत् पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति ॥ ३ ॥

तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व्वं एवोत्क्रामन्ते । तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वं एव प्रातिष्ठन्ते ॥ तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते । तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥ ४ ॥

---

टीकाः—ऐसैं अभिमानवाले तिन इंद्रियरूप देवन-के तांई मुख्य देव जो प्राण है, सो कहता भयाः— ऐसैं मोहकूं मति प्राप्त होहू; कहिये अविवेकभावसैं अभिमानकूं मति करहू । जातैं मैंहीं आपकूं पांच प्रकारसैं विभाग करिके ( अपनें प्राणआदिक वृत्तिनके भेदकूं करिके ) इस शरीरकूं अशिथिल करिके इसकूं स्पष्ट धारताहूं ॥ ३ ॥

टीकाः—ऐसैं इस प्राणके कहते हुये, वे इंद्रिय, यह ऐसैं कैसैं होवैगा, इस रीतिसैं अप्रतीतिकूं प्राप्त होते भये । तब सो प्राण तिनके अप्रतीतिकरि युक्तपनैंकूं देखिके अभिमानतैं ऊंचे गमन करते हुयेकी न्याईं होता भया ( शरीरतैं बाहिर निकसता भया ) । अर्थ यह जोः—सो प्राण अन्यइंद्रियकी अपेक्षासैं रहित हुया रोषतैं इस शरीरकूं त्यागता भया । तिसके शरीरतैं बाहिर निकसी जाते हुये जो वृत्तांत भया ताकूं अब दृष्टांतसैं स्पष्ट करैहैंः— तिसके हुये

**एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतञ्च यत् ॥ ५ ॥**

---

(शरीरतैं बाहिर निकसे हुये) पीछेहीं अन्य सर्व चक्षु आदिक इंद्रिय जाते भये (शरीरतैं निकसते भये)। औ फेर तिस प्राणके चुप होयके स्थित भये सर्वेहीं इंद्रिय चुप होयके स्थित होते भये॥ सो जैसैं अनेक मधुमक्षिका, ऊंचे गमन करते हुये अपने मुख्य मक्षिकारूप मधुकरके राजाके प्रति सर्वेहीं गमन करतेहैं औ तिसके स्थित हुये सर्वेहीं स्थित होवैहैं। जैसैं यह दृष्टांत है, ऐसैं वाणी मन चक्षु औ श्रोत्र इत्यादिक वे देव अप्रतीतिकूं छोडिके प्राणके माहात्म्यकूं जानिके प्रसन्न हुये प्राणकी स्तुति करैहैं ॥ ४ ॥

टीकाः—कैसैं स्तुति करैहैं? सो दिखावैहैंः—यह प्राण अग्नि हुया तपता है। तैसैं यह सूर्य हुया प्रकाशता है। तैसैं यह मेघ हुया वर्षता है। किंवा यह इंद्र हुया प्रजाकूं पालन करता है। औ असुर अरु राक्षसनकूं मारता है। औ यह आँवह अरु प्रवाह आदिक सप्त गुणके भेदवाला वायु हुया मेघनकूं औ तारामंडल आदिककूं चलावता है। औ यह देव, पृथिवी हुया सर्व जगत्का धारणकर्त्ता है। औ चंद्रमा हुया सर्वकूं पोषण करता है। बहुत क्या कहैं, स्थूल सूक्ष्म-रूप जगत् औ देवनकी स्थितिका कारण जो अमृत है, सो सर्व यह प्राणहीं है ॥ ५ ॥

---

३८ चलके जो लेजाना, सो आवह कहियेहै। वेगसैं जो चलना सो प्रवाह कहियेहै। इनसैं आदिलेके वायुके सात गुण प्रसिद्ध हैं। गुणोके भेदतैं तिनके आश्रय वायुरूप गुणीका बी भेद कहियेहै।

**अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।**
**ऋचो यजूꣳषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥६॥**
**प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे।**
**तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ ७ ॥**

---

**टीकाः**—रथकी नाभिविषै अरा (टेढेकाष्ठ)की न्याईं [39]श्रद्धासैं आदि लेके नामपर्य्यंत सर्व शरीर, स्थितिकालमैं प्राणविषै स्थित हैं, तैसैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद; औ सामवेद ये तीन प्रकारके मंत्र औ तिन मंत्रनसैं साधनेयोग्य यज्ञ औ सर्वकी पालनकर्त्ता क्षत्रिय-जाति औ यज्ञादि कर्मके कर्त्ता होनेविषै अधिकारी ब्राह्मण-जाति, ये सर्वहीं यह प्राण है ॥ ६ ॥

**टीकाः**—किंवाः—हे प्राण! जो प्रजापति (विराट्) है, सो वी तूंहीं हैं। औ पिताके गर्भविषै रेतरूपसैं अरु माताके गर्भविषै पुत्ररूपसैं जो विचरता है औ इन मातापिता-केहीं सदृश हुया जो जन्मता है, सो तूंहीं जन्मता हैं। औ सर्वरूप प्रजापति होनेंतैं तेरा पितापना पूर्वहीं सिद्ध है। यातैं तूं [40]सर्व देह औ देहवालेके आकारनसैं ढांप्या हुया एक प्राणरूप सर्वात्मा हैं; यह अर्थ है। हे प्राण! ये मनुष्य आदिक प्रजा तो तेरे अर्थ चक्षु आदिक द्वारनसैं बलि-दान-कूं देतेहैं। जो तूं चक्षु आदिकनके साथि सर्व शरीरनविषै स्थित हैं, यातैं तेरे अर्थ बलिकूं देतेहैं, यह युक्त

---

३९ "प्राणतैं श्रद्धा आकाश वायु तेज जल [आदिककूं सृजता भया]" इत्यादिक षष्ठ प्रश्नके वाक्यसैं आगे कहनेकी षोडश कलारूप यह प्राण है; यह अर्थ है।

४० ननु, प्राणकूं पुत्ररूपताहीं कही, पिता औ मातारूपता तो नहीं कही; सो कैसैं होवैगी? तहां कहैहैं।

**देवानामसि वन्हितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा।**
**ऋषीणाञ्चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥ ८ ॥**

**इन्द्रस्त्वं प्राण। तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।**
**त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषाम्पतिः॥९॥**

---

है ॥ इहां यह निष्कर्षरूप अर्थ है:—जातैं जो तूं भोक्ता हैं, यातैं तेराहीं अन्य सर्व भोज्य है ॥ ७ ॥

**टीकाः**—किंवा, इंद्र आदिक **देवनके मध्य तूं वह्नितम हैं;** कहिये अतिशयकरि होम किये द्रव्यका प्राप्त करनेवाला हैं। औ पितृनके नांदीमुख श्राद्धविषै जो स्वधा-रूप अन्न है, सो देवनके होम द्रव्यके देनेकी अपेक्षासैं प्रथम होवैहै। यातैं **पितृनकी प्रथम जो स्वधा सो तूं हैं।** कहिये ताका बी पितृनके तांई प्राप्त करनेवाला तूंहींहैं। किंवा चक्षुआदिक इंद्रियरूप अंगिरसरूप अथर्वण नामवाले भये बी तिन ऋषिनका **चरित** औ देहधारण आदिकविषै उपकार करने रूप सत्य तूंहीं हैं॥८॥ किंवा हे **प्राण! इंद्र** (परमेश्वर, तूं हैं। औ संहारके सामर्थ्यतैं जगत्कूं हरण करता हुआ रुद्र तूं हैं। औ स्थितिकालविषै विष्णु आदिक सौम्यरूपसैं जगत्का रक्ष-

---

४१ "ऋष" धातु जो है, सो गति (ज्ञान)रूप अर्थविषै वर्त्तता है। यातैं ऋषिशब्दका ज्ञानके जनक चक्षुआदिक इंद्रियरूप अर्थ है। इंद्रियरूप प्राणोंके अभाव हुये अंगनके शोषणके देखनेतैं तिन इंद्रियरूप प्राणोंकूं अंगिरसपना है। "प्राण वा अथर्वा है" इस श्रुतितैं तिनकूं अथर्वापना है। यद्यपि मुख्य प्राणका अथर्वापना श्रुतिविषै कहा है, तथापि चक्षु आदिकनकूं बी ता मुख्य प्राणके अंशरूप होनेतैं अथर्वशब्दका अर्थवान्‌पना है। यह भाव है।

**यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः । आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति । कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १० ॥**

**व्रात्यस्त्वं प्राणेकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः । वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥११॥**

---

णकर्त्ता तूं एकहीं हैं । औ तूं आकाशविषै निरंतर विचरता हैं । औ उदय अरु अस्तसैं सर्व ज्योतिनका पति सूर्य तूंहीं हैं ॥ ९॥

टीकाः—हे प्राण! जब तूं मेघ होयके वर्षता हैं, तब अन्नकूं पायके ये प्रजा प्राणकी चेष्टाकूं करैहैं, यह अर्थ है । अथवा, हे प्राण! तेरी स्वरूपभूत ये प्रजा, तेरे अन्नसैं वृद्धिकूं पाई हुयी औ तेरी वर्षाके दर्शनमात्रसैं सुखकूं प्राप्त हुयेकी न्यांई स्थित हैं । इच्छाहीं अन्न होवैगा । ऐसा तिन वर्षाके देखनेवाली प्रजाका अभिप्राय है ॥ १० ॥

टीकाः—किंवा, हे प्राण ! प्रथम उत्पन्न होनैंतैं अन्य संस्कारकर्तीके अभावतैं संस्काररहित व्रात्य तूं हैं । अभिप्राय यह है किः—तूं स्वभावतैंहीं शुद्ध हैं औ अथर्वण ऋषिनके मध्य प्रसिद्ध एकर्षि नामवाला अग्नि हुया सर्व हविनका भोक्ता तूं हैं । औ तूंहीं सर्व विश्वका विद्यमान पति है । वा तूंहीं सर्व विश्वका श्रेष्ठ पति हैं । औ हम फेर तेरे भक्षणके योग्य हवि-के दाता हैं । हे वायो ! तूं हमारा पिता हैं । [42]अथवा तूं वायुका पिता हैं । यातैं तेरेकूं सर्व जगत्‌काहीं पितापना सिद्ध भया ॥ ११ ॥

---

४२ इस अन्य प्रकारके व्याख्यानविषै प्राणकूं वायुमात्रका पिता होनेतैं, अस्मदादिक सर्वका पितापना नहीं कहा होवैगा ? तहां कहैहैं । इहां यह अर्थ हैः—वायुकूं अस्मदादिक सर्वका जनक होनेतैं तिस वायुके जनक आकाशरूप प्राणकूं सर्वका जनकपना सिद्ध भया ।

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि। या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥ १२ ॥

प्राणस्येदं वशे सर्व्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्। मातेव पुत्रान्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहि न इति ॥ १३ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषदि द्वितीयः प्रश्नः समाप्तः ॥ २ ॥

टीकाः—बहुत कहनेसैं क्या है! हे प्राण! जो तेरी अपानरूप तनु (मूर्ति), वक्ता होनेकरि वचनरूप चेष्टा-कूं करती हुयी वाणीविषै स्थित है, औ जो व्यानरूप तनु श्रोत्रविषै स्थित है, औ जो प्राणरूप तनु चक्षुविषै स्थित है, औ जो समानरूप तनु संकल्पादिव्यापारसैं मनविषै स्थित है; ताकूं शांत कर औ तेरे निकसनेसैं अमंगलरूप (कार्यके अयोग्य) मति कर ॥ १२ ॥

टीकाः—बहुत कहनेसैं क्या है! या लोकविषै यह जो कछु उपभोगका समूह है, सो सर्व प्राणकेहीं वशमैं वर्तता है। औ स्वर्गविषै स्थित जो देव आदिकका उपभोगरूप जगत् है, ताका बी प्राणहीं रक्षणकर्त्ता है। यातैं हे प्राण! तूं माताकी न्याई हम पुत्रनकूं पालन कर। औ ऋगादि तीनवेदरूप ब्राह्मणोकी लक्ष्मी हैं औ प्रसिद्ध धन आदिक ऐश्वर्यरूप क्षत्रियनकी लक्ष्मी हैं, तिन लक्ष्मीनकूं औ तेरी स्थितिरूप निमित्तवाली बुद्धिकूं हमारे ताईं देदे। ईसैरीतिसैं सर्वरूपसैं जो प्राण, वाक् आदिक इंद्रियनसैं स्तुतिकरि जनाये हुये महिमावाला है, सो प्रजापतिहीं है। ऐसैं निश्चय किया ॥ १३ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गत द्वितीयप्रश्न भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ २ ॥

४३ इस द्वितीय प्रश्नविषै निर्धार किये प्राणके गुणकूं संक्षेपसैं कहैहैं।

अथ प्रश्नोपनिषद्गततृतीयः प्रश्नः ॥ ३ ॥

**अथ हैनं कौशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ । भगवन्! कुत एष प्राणो जायते । कथमायात्यस्मिञ्छरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते । केनोत्क्रमते । कथं बाह्यमभिधत्ते । कथमध्यात्ममिति ॥ १ ॥**

---

## अथ प्रश्नोपनिषद्गततृतीयप्रश्नभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

**टीकाः–** [44]पीछे इस पिप्पलादमुनीश्वर-कूं अश्वल-मुनि-का पुत्र कौशल्य-नामा मुनि पूंछता भयाः–कौशल्य उवाचः–भो भगवन्! यह प्राण किस कारण-तैं उपजताहै? औ उपज्या हुया कैसैं (किस वृत्तिविशेषकरि) इस शरीरविषै आवताहै; कहिये इस प्राणकूं शरीरके ग्रहणका निमित्त कौंन है? औ शरीरविषै प्रवेशकूं पाया हुया आपकूं विभागकरिके किसप्रकारसैं स्थित होता है? औ किस वृत्तिविशेष-करि इस शरीरतैं निकसता है? औ [45]बाह्य जो अधिभूत अरु अधिदैव है, तिस-कूं कैसैं धारता है? औ [46]अध्यात्मकूं कैसैं धारता है? ॥ १ ॥

---

४४ ऐसैं प्रजापतिपनैं औ भोक्तापनैं आदिक गुणके समूहका निर्धार करिके, अब प्राणकी उत्पत्ति आदिकका निर्धार करते हुये तिसकी उपासनाका विधान करनेकूं तृतीयप्रश्नकूं प्रकट करैहैं।

४५ प्राणआदिक पांच वृत्तिके भेदवाले प्राणका सूर्य औ पृथिवी आदिक पांच अधिदैव औ चक्षुरादिक अधिभूतस्वरूप, बाह्यरूप है। यह आगे याहीके अष्टम वाक्यसैं कहियेगा।

४६ प्राण आदिकरूप अंतर्वर्ती जे प्राणकी पांच वृत्तियां हैं सो प्राणका अध्यात्मरूप है; यह बी आगे कहियेगा।

**तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि, ब्रह्मिष्ठोऽसीति। तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥ २ ॥**

**आत्मन एष प्राणो जायते । यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनाऽऽयात्यस्मिञ्छरीरे ॥ ३ ॥**

---

**टीकाः**—ऐसैं जब कौशल्यमुनिनैं पूंच्छ्या, तब तिसके तांई सो पिप्पलाद नामा आचार्य्य, कहते भयेः—पिप्पलाद उवाचः—हे कौशल्य! प्राणहीं प्रथम दुःखसैं जाननेकूं योग्य है। यातैं दुर्घट जैसैं होवै तैसैं प्रश्नके योग्य है। ताका बी जन्म आदिक तूं पूंछता हैं। यातैं तूं अति प्रश्नोंकूं पूंछता हैं। याहीतैं तूं ब्रह्मिष्ठ ( अतिशयकरि ब्रह्मवित् ) हैं। यातैं मैं संतुष्ट भयाहूं। तातैं तेरेतांई जो तैंनैं पूंच्छ्या है सौ मैं कहताहूं, तूं श्रवण कर॥ २ ॥

**टीकाः**—अक्षर ( अविनाशि ) सत्य परम-आत्मा-रूप पुरुष-तैं यह कथन किया प्राण उपजता है ॥ कैसैं उपजता है? तहां दृष्टांत कहिये हैः—जैसैं लोकमैं मस्तक हस्त आदिस्वरूप पुरुष-रूप निमित्त-विषै यह निमित्तसैं भई छाया उपजती है, तैसैं इस ब्रह्मरूप सत्य पुरुष-विषै यह प्राण नामक छायास्थानी मिथ्यारूप-वाला तत्त्व समर्पण किया है। औ देहविषै छायाकी न्यांई मन-के संकल्प इच्छा आदिक वृत्तिन-करि किये कर्मरूप निमित्त-सैं इस शरीरविषै आवता है। "पुण्यसैं पुण्य ( लोक )कूं लेजाता है" ऐसैं इसीहीं अर्थकूं आगे इसके सप्तम वाक्यविषै कहैंगे। औ "आसक्त हुया तिसी[47] हींकूं पावता है" इस अन्य श्रुतितैं ॥ ३ ॥

---

४७ इस कर्मीपुरुषका मन जिस फलविषै आसक्त होवैहै, तहां आसक्त हुया पुरुष ताही फलकूं कर्मसैं पावता है। या श्रुतिविषै शरीरका ग्रहण कर्मकरि साध्य कहा। यह अर्थ है।

यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते । एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राणः । इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ॥ ४ ॥

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः । एष ह्येतद्धुतमन्नं समन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥ ५ ॥

---

टीका:—जैसें लोकविषै चक्रवर्त्तीराजाहीं "तुम इतने ग्रामोंके प्रति इतने ग्रामोंके प्रति अधिपति होयके स्थित होहू" इसप्रकार ग्राम आदिकनविषै अधिकारी पुरुष-नकूं भिन्न भिन्न जोडता है; ऐसैंहीं यह मुख्य प्राण, चक्षुआदिक इंद्रियरूप अन्य प्राणनकूं भिन्न भिन्नहीं यथायोग्य नेत्रआदिक स्थानोंविषै जोडता है औ आपकी वृत्तिनके भेदरूप प्राण अपान आदिक वायुनकूं यथायोग्य गुदाआदिक स्थानोंविषै जोडता है ॥ ४ ॥

टीका:—तहां स्थानोंका विभाग दिखावै हैं:—जो मलमूत्रकूं नीचे डालता हुया स्थित है, ऐसा आपका भेद अपान वायु है, ता-कूं गुदा अरु उपस्थविषै जोडता है । तैसैं चक्षु अरु श्रोत्रविषै मुख अरु नासिकासैं निकसता हुया चक्रवर्त्ती राजास्थानी आपप्राण, स्थित होवैहै । औ प्राण अपान दोनूं स्थानोंके मध्य-रूप नाभि-विषै समान-वायु स्थित होवैहै । समान जो है सो खायेपीये अन्नादि वस्तुकूं सम लेजाता है; यातैं समान कहिये है । जातैं यह समानवायुहीं इस होम किये ( खाये पिये ) अन्नकूं सम लेजाता है, तातैं खाये पीये अन्नरसरूप इन्धनवाले जठराग्निरूप हेतुतैं हृदय-

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ ॥

---

रूप देशविषै ये सप्त संख्यावाले मस्तकगत नेत्रादि सप्त द्वार सम्बन्धि ज्ञानरूप ज्वाला निकसतियां हैं॥ अभिप्राय यह है किः– प्राणद्वारा दर्शन श्रवण आदिक रूपादि विषयनका प्रकाश होवैहै ९

टीका:–कमलके आकारवाले मांसके पिंडसैं परिच्छिन्न हृदय आकाश-विषै यह आत्मा-करि सहित जीवात्मा वर्त्तता है। इस हृदयविषै मुख्य नाडीनकी संख्याकरि यह एक अधिक एकशत (१०१) होवैहैं। तिनके मध्य एक एक मुख्य नाडी-विषै सौ सौ भेद हैं। फेर बी, एक एक प्रतिशाखारूप नाडीके भेदरूप बहत्तरहजार बहत्तरहजार नाडीयां होवैहैं । कहिये सुषुम्णानामक एक नाडीरूप मूलकी, स्कंधशाखारूप शतसंख्यावाली मुख्य नाडीनकी, शाखारूप जो सौ सौ नाडीयां है; तिन एकएककी उपशाखारूप नाडीनकी संख्या, बहत्तर बहत्तर हजार होवैहै । सर्व मिलिके बँहै-

---

४८ उक्त नाडीनकी संख्याका वृक्षके रूपकसैं यह वर्णन हैः–हृदयदेशतैं निकसी जे नाडीयां हैं, तिनके मध्य सुषुम्णा नामक मुख्यनाडी जो है, सो मूलस्थानी है । ताकी दशनाडीयां स्कंध ( पेड ) रूप हैं। तिन स्कंधरूप दश नाडीनमैंसैं एकएककी नव नव स्थूलशाखा हैं। जो स्थूल शाखा होवै सो लोकविषै स्कंधशाखा कहिये है । यातैं वे दश दश स्थूल नाडीयां स्कंधशाखाकेस्थानी हैं । ऐसैं हुये सुषुम्णा नामक मुख्यनाडीकूं छोडिके स्कंधशाखारूप नव्वे ( ९० ) नाडीनकरि सहित स्कंधरूप दश नाडीनकी गिनति कियेहुये सौ ( १०० )की संख्या होवैहै । तिन सौ नाडीनके मध्य एकएककी शाखारूप सौ सौ नाडीयां होवैहैं । तैसैं हुये एक मुख्य-

**अथैकयोर्द्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति। पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ ॥**

---

त्तरकोटि नाडीयां हैं। इन नाडीन-विषै व्यान-वायु विचरता है। यह सारेशरीरविषै व्यापनेतैं व्यान कहियेहै । सूर्य्यतैं किरणोंकी न्यांई हृदयतैं सर्वऔरतैं गमन करनेवाली नाडीनसैं सर्वदेहके तांई व्यापिके व्यानवायु वर्त्तताहै। सो सो शरीरकी संधियां स्कंध औ मर्मदेशनविषै विशेषकरि वर्त्तता है। यह प्राण औ अपान वृत्तिनके मध्य ( तिनके अभावकालमैं ) उद्भुत वृत्तिरूप है। औ पराक्रमवाले पुरुषनके कर्मका कर्त्ता होवैहै ॥ ६ ॥

**टीकाः**—[४८]औ जो तिन एक अधिक एकशत नाडीनके मध्य ऊंचे मूर्द्धनीस्थानविषै गमन करनेवाली सुषुम्णा नाम नाडी है, तिस एक नाडी-सैं ऊंचे जाता हुया औ पादसैं लेके मस्तकपर्य्यंत वर्त्तमान हुया उदान-वायु विचरता है। सो शास्त्रविषै विधान किये पुण्य-कर्म्म-सैं देवादिकके स्थानरूप पुण्यलोकके तांई प्राप्त करैहै। तिसतैं विपरीत पाप-कर्म-सैं पशु पक्षी आदिककी योनिरूप पापमय नरक-केतांई प्राप्त करैहै। औ सम अरु प्रधान पुण्य अरु पाप दोनूंसैंहीं मनुष्यलोकके तांई प्राप्त करैहै ॥ ७ ॥

---

नाडीं है औ सौ स्कंधरूप नाडीयां हैं। तिनकी शाखारूप दशहजार नाडीयां हैं। तिनशाखारूप दशहजार नाडीमैंसैं एकएककी उपशाखारूप बहत्तर हजार बहत्तर हजार नाडीयां होवैहैं। तैसैं हुये बहत्तर हजार (७२००० ) संख्याके दशहजार ( १०००० ) की संख्यासैं गुणना किये हुये बहत्तरकोटि ७२००००००० नाडीयां होवैहैं।

४९ अब उदानवायुके स्थानकूं कहते हुये “किसकरि शरीरतैं बाहिर निकसता है ?” इस चतुर्थ प्रश्नके उत्तरकूं कहैहैं।

**आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८ ॥**

---

**टीकाः**—आँदित्यहीं प्रसिद्ध अधिदैवतरूप बाहिरका प्राण है, सो यह ऊंचे जाता है। यह आदित्य इस आध्यात्मिक चक्षु-इंद्रिय-विषै स्थित प्राणकूं प्रकाशसैं अनुग्रह करता हुया, कहिये रूपविषयके ज्ञानविषै चक्षुके प्रकाशकूं करता हुया वर्त्तता है। तैसैं पृथिवीविषै अभिमानी जो प्रसिद्ध अग्नि-देवता है, सो यह पुरुषकी अपानवृत्तिकूं वश करिके नीचेहीं खीचनेसैं अनुग्रह करती हुयी वर्त्तती है। तिसविना शरीर भारी होनैतैं पतन होवैगा, वा अवकाशसहित स्थलविषै ऊंचा जावैगा। तैसैं होता नहीं। यह अग्निरूप पृथिवीकाहीं अनुग्रह है ॥ औ जो यह स्वर्ग औ पृथिवीके मध्यमैं आकाश है, तिसविषै स्थित जो वायु, सो मंचे[५१]विषै स्थित पुरुषकी न्यांई आकाशरूप कहियेहै। सो वायु समानरूप है, कहिये समानवायुके तांई अनुग्रह करता हुया वर्त्तताहै। काहेतैं, समानवायुकूं मध्यआकाशविषै स्थित होनेकी तुल्यतातैं ॥ औ सामान्यसैं जो बाहिरका वायु है, सो व्याप्तिकी समानतातैं व्यानरूप है। अभिप्राय यह है किः—सो वायु, व्यानवायुके तांई अनुग्रह करता हुया वर्त्तता है ॥ ८ ॥

---

५० अत्र अधिभूत औ अधिदैवरूप बाह्यकूं यह प्राण कैसैं धारण करैहै? इस पंचम प्रश्नका औ अध्यात्मकूं कैसैं धारण करैहै? इस षष्ठ प्रश्नका उत्तर कहैहैं।

५१ "मंचे पुकारतेहैं" इस वाक्यविषै जैसैं मंचशब्दसैं मंचनविषै स्थित पुरुष लक्षणासैं जानियेहै; तैसैं इहां आकाशशब्दसैं तिस आकाशविषै स्थित वायु लक्षणासैं जानियेहै।

**तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः । पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ॥ ९ ॥**

---

**टीकाः**–जो बाहिरका प्रसिद्ध सामान्य तेज है, सो उदान-रूप है। अभिप्राय यह है किः–सो तेज, अपने प्रकाशसैं शरीरविषै उदानवायुके तांई अनुग्रह करैहै[५२]। जातैं तेजस्वभाववाला औ शरीरतैं बाहिर निकासनेरूप कर्मका कर्ता उदानवायु बी बाहिरके तेजके अनुग्रहकूं पाया हुयाहीं शरीरविषै वर्तताहै, तातैं जब जीवके जीवनके हेतु कर्मके उपराम भये बाहिरके तेजके अनुग्रहके अभावसैं लौकिकपुरुष स्वाभाविक तेजसैं रहित होवैहै; तब तिसकूं क्षीण-आयुपवाला मरणेकूं तैयार भया जानना । सो पीछे मनविषै प्रवेशकूं प्राप्त भई वाक् आदिक इंद्रियनके साथि अन्य शरीरकूं पावता है ॥ ९ ॥

---

५२ ऐसैं सूर्य आदिकरूपसैं मुख्यप्राणकूं प्राण अपान समान उदान औ व्यानके अनुग्रह करनेके कथनसैं अध्यात्मरूप प्राण आदिक वृत्तिनके अनुग्रहका कर्त्तापनो कहा । सूर्य अग्नि आकाश सामान्यवायु औ तेजरूपी हुया मुख्य प्राण, सूर्य आदिक अधिदैवत स्वरूप बाह्यरूपकूं धारता है, ऐसैं कहा । तिस रूपसैं स्थितिहीं तिसका धारण है । प्राण अपान आदिकके अनुग्रहसैं चक्षु आदिकके अनुग्रहके कथनतैं तिसद्वारा तिस चक्षुरादि अधिभूत स्वरूप बाह्यरूपका धारणकर्त्तापना कहा । “ सो प्राण, सो चक्षु; सो अपान, सो वाक्; सो व्यान, सो श्रोत्र; सो समान; सो मन; सो उदान, सो वायु ” इस अन्य श्रुतिविषै चक्षु आदिककूं प्राण आदिक स्वरूपताके कथनतैं चक्षु आदिकके अनुग्रहकर्त्तापनैंके कहनेसैं चक्षु आदिरूप अध्यात्मका धारणकर्त्तापना कहा । इस रीतिसैं इहांपर्यंत बाह्यकूं कैसैं धारण करताहै ? अध्यात्मकूं कैसैं धारण करताहै ? इस पंचम औ षष्ठ प्रश्नका उत्तर कहा; यह जानना ।

**यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा यु-क्तः। सहाऽऽत्मना यथा सङ्कल्पितं लोकं नयति१०**

**य एवं विद्वान् प्राणं वेद। न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति। तदेष श्लोकः ॥ ११ ॥**

---

**टीकाः**—यह जीव, मरणकालविषै जिस पशु आदिक शरीर-मैं चित्तवाला होवैहै, तिस चित्तके संकल्प-सैं इंद्रियनके साथि मुख्य प्राण वृत्ति-कूं पावता है। कहिये मरणकालविषै इंद्रियनकी वृत्ति-नके क्षीण भये मुख्य प्राणवृत्तिरूपसैंहीं स्थित होवैहै। तब इसके ज्ञातिजन कहतेहैं किः—यह अबतलकि जीवताहै। सो प्राण जब तेज-के अनुग्रहकूं प्राप्त भई उदानवृत्ति-करि युक्त हुया शरीरके स्वामी जीवात्मारूप भोक्ता-के साथि तादात्म्यकूं पावता है, तब ऐसैं उदानवृत्तिसैंहीं युक्त भया भोक्तारूप प्राण तिसीहीं भोक्ताकूं पुण्यपापरूप कर्मके वशतैं जैसा इसका अभिप्राय है, तैसै लो-ककूं प्राप्त करैहै ॥ १० ॥

**टीकाः**— [५३] जो कोई बी विद्वान् ऐसैं उत्पत्ति आदिक उक्त विशेष-

---

५३ ऐसैं प्राणके स्वरूपका निर्धारकरिके अब ताकी उपासनाका वि-धान करैहैं। इहां यह अर्थ हैः—आत्मातैं प्राण उपजेहै। सो मनकृत धर्म-अधर्मसैं शरीरकेताईं अनुग्रह करैहै। आपकूं पांच प्रकार विभाग करिके, पायु औ उपस्थविषै अपानकूं स्थापन करैहै। चक्षु औ श्रोत्रविषै स्वस्वरूप प्राणकूं स्थापन करैहै। नाभिविषै समानकूं स्थापन करैहै। नाडीनके स-मूहविषै व्यानकूं स्थापन करैहै। सुषुम्णा नाडीविषै उदानकूं स्थापन करैहै॥ उदानवायुरूप निमित्तसैं शरीरतैं बाहीर निकसताहै। बाह्यरूप प्राण अपान समान व्यान औ उदानके अनुग्रहकर्त्ता सूर्य पृथ्वीदेवता (अग्नि) आकाश वायु औ तेजरूपसैं अधिदेवकूं धारता है। सूर्य आदिकनके किये अनुग्रहसैं प्राणादिवृत्तिरूप अध्यात्मकूं चक्षु वाक् श्रोत्र मन औ त्वचारूप औ चक्षुआदिककरि ग्रहण करनेयोग्य शब्दादिरूप अधिभूतकूं धारता है।

**उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा । अध्यात्मञ्चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते । विज्ञायामृतमश्नुत इति ॥ १२ ॥**

**इति श्रीप्रश्नोपनिषदि तृतीयप्रश्नः समाप्तः ॥ ३ ॥**

णोकरि युक्त प्राणकूं जानता ( उपासता ) है, [ तिसकूं यह इसलोकसंबंधी औ परलोकसंबंधी जो फल होवैहै, सो कहिये हैः—] इस विद्वान्-की पुत्रपौत्रादिरूप प्रजा उच्छेदकूं पावती नहीं । शरीरके पतन भये यह पुरुष प्राणके साथि सायुज्य ( एकता ) भावसैं मरणधर्मरहित होवैहै । इसीहीं अर्थ-विषै यह आगिला वाक्यरूप श्लोक ( मंत्र ) प्रमाण है ॥ ११ ॥

**टीकाः**—प्राणकी परमात्मातैं उत्पत्तिकूं औ मनके किये कर्मसैं इस शरीरविषै आगमनकूं औ गुदा अरु उपस्थ आदिक स्थानोविषै स्थितिकूं औ चक्रवर्त्ती राजाकी न्यांई प्राणवृत्तिनके भेदनके पांचप्रकारसैं स्थापनरूपहीं स्वामीपनैकूं औ सूर्य्यादिरूपसैं स्थितिरूप बाह्यकूं औ प्राणादि वृत्तिस्वरूप चक्षु आदिकके आकारसैं स्थितिरूप अध्यात्मकूं ऐसैं जानिके प्राणरूप अमृतकूं पावता है, जानिके अमृतकूं पावता है ॥ इहां दो बेरी जो कथन है, सो तृतीय प्रश्नके अर्थकी समाप्ति अर्थ है ॥ १२ ॥

**इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गत तृतीयप्रश्न भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ३ ॥**

---

सोई प्राण, उदानवृत्तिसैं भोक्ताकरि युक्त हुया भोक्ताकूं लोकांतरके प्रति ले जाता है ॥ अरे शिष्य ! सोई प्राण श्रेष्ठ है, प्रजापति है, अन्नका भोक्ता है । इस रीतिसैं उत्पत्ति आदिक उक्त विशेषणोंकरि युक्त प्राणकूं जानता है, सो ऊपर कहे फलकूं पावता है ।

५४ यह प्राणके साथि एकतारूप गौण अमृत तो सकामीपुरुषकूं होवैहै । निष्कामीकूं तो प्राणकी उपासनासैं चित्तकी एकाग्रता औ शुद्धिद्वारा तत्त्वज्ञान होयके मुख्यहीं अमृत होवैहै । यह जानना ।

अथ प्रश्नोपनिषद्गतचतुर्थः प्रश्नः ॥ ४ ॥

अथ हैनं सौर्य्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति । कान्यस्मिन् जाग्रति । कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति । कस्यैतत् सुखं भवति । कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ १ ॥

---

## अथ प्रश्नोपनिषद्गतचतुर्थप्रश्नभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

टीका:–पीछे[५५] इस पिप्पलाद मुनि-कूं सौर्य्य-मुनि-का पुत्र गार्ग्य नामा मुनि पूंछता भया ॥ इहां यह अभिप्राय है:–पूर्वके तीन प्रश्नोसैं संसाररूप व्याकृत ( कार्यमय जगत् )के अंतर्गत साध्य साधनमय अनित्य सर्व प्राणस्वरूप अपरब्रह्मकी विद्याके विषयकूं समाप्त करिके, अब असाधनरूप, प्रमाण अगोचर, मनका अगोचर, इंद्रिय अगोचर अविषय ( अकार्य्यस्वरूप ), शिव, शांत, अविकारी, अक्षर, बाहिरभीतर सहवर्तमान, अजन्मा, पुरुष नामक परब्रह्मकी विद्याका विषयरूप वस्तु कहनेकूं योग्य है । यातैं आगिले तीन प्रश्नोका आरंभ करिये है । तैहां " प्रज्वलित अग्निकी न्यांई

---

५५ ऐसैं प्रथम प्रश्न उक्त कर्मउपासनाकी गतिके श्रवणसैं विरक्त भया औ द्वितीय तृतीय प्रश्नविषै उक्त प्राणकी उपासनासैं चित्तकी एकाग्रता अरु शुद्धिवाला भया, औ याहीतैं च्यारी साधनकरि संपन्न जो मुख्य अधिकारी है, ताकूं परविद्याके कथन अर्थ अब चतुर्थ, पंचम औ षष्ठ; इन तीन प्रश्नोका आरंभ करैहैं ।

५६ ऐसैं सामान्यपनैंकरि आगे कहनेके तीन प्रश्नोके बी संबंधकूं कहिके, अब चतुर्थ प्रश्नके आपके संबंधकूं कहैहैं ।

जिसअक्षररूप परब्रह्मतैं चिणगारेकी न्यांई सर्व भाव ( पदार्थ ) उपजते हैं, औ तहांहीं लीन होवैहैं "; ऐसैं मुंडकउपनिषद्के द्वितीयमुंडकविषै कहा है ॥ कौंनसे वे सर्वभाव अक्षरब्रह्मतैं उपजते हैं, वा कैसैं वे विभागकूं पाये हुये तहांहीं लीन होवैहैं, वा किस लक्षणवाला सो अक्षरब्रह्म है ? इस अर्थके कहनेकी इच्छासैं अब गार्ग्यमुनि प्रश्नोकूं प्रकट करैहैः—गार्ग्य उवाचः—हे भगवन् ! इस मस्तक अरु हस्त आदिक अंगवाले पुरुषविषै कौंनसे करण अपनें व्यापारतैं उपरतिरूप निद्राकूं करैहैं ? औ कौंनसे करण इस पुरुष-विषै अपने व्यापारके करनेरूप जागरणकूं करैहैं ? औ कार्य्य अरु करणरूप देवनके मध्य जो यह देव स्वप्नोकूं देखता है, सो कौंन है ? अभिप्राय यह है किः—जाग्रत्के दर्शनतैं निवृत्त भये पुरुषकूं जाग्रत्की न्यांई शरीरके भीतर जो दर्शन है, ताका नाम स्वप्न है; सो क्या कार्य ( देह अरु प्राण )रूप देवसैं निर्वाह करिये है ? किंवा करण ( मन आदिक )रूप किसी वी देवसैं निर्वाह करिये हैं ? जाग्रत् अरु स्वप्नके व्यापारके निवृत्त भये प्रसन्न अरु विषयके अभावमात्रसैं देखनेयोग्य अरु विनाशरहित आत्माका स्वरूपभूत जो यह सुख है, सो किसकूं होवैहै ? तिस कालविषै जाग्रत् अरु स्वप्नके व्यापारतैं निवृत्त भये सर्व जीव, मधुविषै रसकी न्यांई औ समुद्रके तांई प्रवेशकूं पाये नदी आदिककी न्यांई किसैंविषै एकताकूं प्राप्त होयके विवेचनके अयोग्य हुये

---

५७ इस चतुर्थ प्रश्नविषै अक्षर( ब्रह्म )के स्वरूपकूंहीं कहनेकूं इच्छित होनेतैं, ताके निर्णय अर्थ " कौंन सोवते हैं ?" इत्यादिक पांचप्रकारका जो प्रश्न है, सो जाग्रत् आदिक अवस्थासैं धर्मीविशेषके निर्धारण अर्थ है, अन्यथा तिन जाग्रत् आदिककूं आत्माके धर्म होनेकी शंकाके भये तिस आत्माके निर्विशेष ( निर्धर्मक )भावके निर्णयकी असिद्धितैं । पदार्थनके स्वरूपके विभाग आदिकके कहनेकी इच्छा तो " वे सूर्यके किरण फेरी

फेरी उदय होनेवाले सूर्यतैं फैलतैं हैं " इस आगे कहनेके दृष्टांतके बलतैं जहां तिन पदार्थनका एकताभाव होवैहै, तिसीतैं फेर विभागकरि निकसना होवैहै । ऐसैं अक्षरविषै एकताकूं प्राप्त भये पृथिवी आदिक कार्य्यकारणरूप पदार्थनकी अक्षरतैं विभागकी प्रतीतितैं, तितनैंमात्रकरि भाष्यविषै कही है; ऐसैं जानना । तहां प्रथम प्रश्नसैं जाग्रत्का धर्मी पूंछ्या । काहेतैं, स्वप्नविषै जिसके व्यापारकी निवृत्तिके हुये जाग्रत् नहीं है, सो तिस जाग्रत्का धर्मी है; ऐसैं निश्चय करनेकूं शक्य होनेतैं ॥ द्वितीय प्रश्नसैं तीन अवस्थाविषै बी शरीरका रक्षण किसका धर्म है ? यह पूंछ्या । काहेतैं, जागते हुये औ व्यापारतैं अनिवृत्त भये प्राणकूं देहके रक्षक होनेके संभवतैं ॥ तृतीय प्रश्नसैं स्वप्नका धर्मी पूंछ्या ॥ चतुर्थ प्रश्नसैं सुषुप्तिका धर्मी पूंछ्या । काहेतैं, " मैं सुख जैसैं होवै तैसैं सोयाथा " ऐसैं सुषुप्तितैं ऊठे पुरुषकूं स्मरणके भये सुखके सुषुप्तिके साथि संबंधके जाननेतैं । सुषुप्तिविषै प्रकाशमान जो यह सुख है, सो "मैं सुख जैसैं होवै तैसैं सोयाथा" इस स्मरणका मूलभूत है । यातैं चतुर्थ प्रश्नसैं सुषुप्तिका धर्मी पूंछ्या ॥ पंचम प्रश्नसैं तीन अवस्थारहित औ तीन अवस्थाके स्थितिकी भूमिरूप तुरीय स्वरूप अक्षर पूंछ्या ॥ इहां " तिस कालविषै " ऐसैं आरंभ किये पंचम प्रश्नसैं यद्यपि तुरीय पद पूंछिये है, सुषुप्ति नहीं; तथापि संसारदशाविषै सर्व उपाधिरहित तुरीयअवस्थाके अभाव हुये किसी उपायतैंहीं तिस तुरीयकूं दिखावने योग्य होनेतैं, तिस सुषुप्तिवालेकी न्यांई ज्ञानके हुये बी अन्य उपाधिनसैं रहित होनेकरि तहांहीं उपाधिनतैं विवेकके करनेतैं; तुरीयपदके दिखावनेकूं सुगम होनेतैं तिस सुषुप्ति कालविषै तुरीयपदके अर्थ सर्वके लयका कथन है । इहां सुषुप्तिविषै सर्व प्रकारसैं लयके दिखावनेके अभावतैं भेदज्ञानरूप विवेकके अभावमात्रसैं मधुविषै रसनकी न्यांई औ समुद्रविषै नदीनकी न्यांई, ये दोनूं दृष्टांत हैं । या अभिप्रायसैं " विवेचनके अयोग्य " ऐसैं कहा । यातैं पूर्व विवेकके अयोग्य हुये पीछे लीन होवैहैं । यह अर्थ है । इस पंचम प्रश्नसैं बी अविद्याकी वासनासैं विवेचनकूं अप्राप्त भया सुषुप्तिका धर्मीहीं पूंछ्या होवैगा; यह शंका करनेकूं योग्य नहीं । काहेतैं, " परमात्मारूप अक्षरविषै लयकूं पावते हैं " ऐसैं नवम वाक्यविषै आगे कहनेतैं औ सुषुप्तिविषै अज्ञानविषैहीं लयके होनेतैं, "यहहीं

लीन होवैहैं ।। नैनु, त्याग किये दात्र ( धान्य आदिकके काटनेके शस्त्र ) आदिक करणकी न्यांई अपने व्यापारतैं निवृत्त भये करण, भिन्न भिन्नहीं अपने आत्मस्वरूपविषै स्थित होवैहैं, यह युक्त है; यातैं इहां सुषुप्तिकूं पाये पुरुषनके करणोंका किसीविषै एकता भावके गमनकी आशंकाकी प्राप्ति कहांतैं होवैगी ? तैहां कहैहैं:—पूंछनेवालेकी ऐसी आशंका युक्तहीं है, जातैं जाग्रत्‌विषै मिलित ( संघातरूप ) भये करण, स्वामीके ( संघातके अभिमानीके ) अर्थ हैं औ परतंत्र हैं । तातैं सुषुप्तिविषै बी मिलित भये करणोंका परतंत्रभावसैंहीं किसी बी वस्तुविषै मिलाप युक्तहीं है । तातैं आंशंकाके

---

द्रष्टा'' इत्यादि नवम वाक्यविषै उक्त अज्ञानविषै प्रतिबिंबित भोक्ता जीवके वी अक्षरविषै लयके कथनतैं औ "अच्छाय ( अज्ञानरहित )" इस दशम वाक्यविषै अज्ञानके अभावके कथनतैं, इहां इस पंचम प्रश्नसैं तुरीयरूप अक्षरहीं पूंछ्या है । यह भाव है ।

५८ ननु, कार्यकारणतैं भिन्न किसी एक लयके आधारके सामान्यपनैंकरि जाने हुये, "किसविषै लय होवैहै ?" ऐसा विशेषका प्रश्न घटे है । इहां जातैं तिस लयके आधारका सामान्यपनैंकरि ज्ञान नहीं भया है, तातैं ताके विशेषस्वरूपका प्रश्न कैसैं घटे ? जो कहो, लयकूं आधारसहित होनैकरि सामान्यपनैसैं ताके आधारका ज्ञान भया है । सो कहना बनै नहीं । काहेतैं, तिस तिस घटादिकके उपादान मृत्तिका आदिक अचेतनोकूंहीं तिनके आधार होनेकरि तिनतैं भिन्न चेतनरूप आधारकी असिद्धि है ? या अभिप्रायसैं इहां वादी शंका करैहैं ।

५९ मिलिके संघातरूपकूं प्राप्त भये पदार्थनकूं परकेअर्थ होनेकरि व्यवहारविषै वर्त्तमान होनैतैं संघात होनेरूप हेतुसैं तिनतैं पर ( अन्य ) चेतनरूप आधारके सामान्यपनैकरि जाने हुये पूंछनेवालेका लयआधारके विशेषस्वरूपका प्रश्न युक्त है; या अभिप्रायसैं सिद्धांती इहां कहैहैं ।

६० इहां मनविषै विद्यमान आशंकाके अनुसार वाणीसैं उच्चारण किया प्रश्न है । यह अर्थ है ।

तस्मै स होवाच। यथा गार्ग्य! मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छंतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति। ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति। तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानंदयते न विसृजते नेयायते। स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ ॥

---

अनुसारहीं यह प्रश्न है। ईहां तो कार्य्य औ कारणका संघात, सुषुप्ति औ प्रलयकालमैं जिसविषै लीन होवैहै "सो कौंन होवैगा?" ऐसैं तिसके विशेषस्वरूपके जाननेकी इच्छावालेका "किसविषै सर्व सम्यक् लीन होवैहै" यह प्रश्न है। सो आशंकाके अनुसारहीं है यातैं युक्त है ॥ १ ॥

टीकाः—ऐसैं जब पूंछ्या, तब तिस गार्ग्यनामा शिष्य-के तांई सो पिप्पलादनामा आचार्य्य कहतेभयेः—पिप्पलाद उवाचः—हे गार्ग्य! जो तैंनैं पूंछ्या है सो श्रवण करः—जैसैं सूर्य्यके सर्व किरण अस्तकूं प्राप्त हुये इस तेजोमंडलविषै विवेचनके अयोग्य होयके एकताकूं पावते हैं । वे तिसीहीं सूर्य्यके किरण फेरि-फेरि उदयकूं पाये हुये फैलते हैं ॥ जैसैं यह दृष्टांत है, ऐसैं प्रसिद्ध यह सर्व विषय औ इंद्रिय आदिकका समूह, चक्षुआदिक देवनकूं मनके अधीन होनेतैं परम (उत्कृष्ट) देव (प्रकाश-

---

§ १ इहां लयरूप विशेषणकरि युक्त आत्मा पूंछ्या नहीं, किंतु काककरि उपलक्षित देवदत्तके गृहकी न्यांई सर्वके लयकरि उपलक्षित केवल आत्मा पूंछ्या है। ऐसैं वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ ॥

---

मान ) जो मन है, तिस-विषै स्वप्नकालमैं सूर्य्यमंडलविषै किरणोकी न्यांई एकताकूं पावता है । औ जाग्रत्की इच्छावाले पुरुषके विषय अरु इंद्रिय आदिक, सूर्य्यमंडलतैं किरणोकी न्यांई मनतैंहीं अपने व्यापारके अर्थ प्रवृत्त होवैहै । जातैं स्वप्नकालमैं शब्दादिकके ज्ञानके साधन श्रोत्रादिक, मनविषै एकताकूं प्राप्त हुयेकी न्यांई करणके व्यापारतैं निवृत्त होवैहैं; तातैं तिस स्वप्न-कालविषै यह देवदत्त आदिरूप पुरुष सुनता नहीं, देखता नहीं, सूंघता नहीं, रसका स्वाद लेता नहीं, स्पर्श करता नहीं, बोलता नहीं, ग्रहण करता नहीं, आनंदकूं पावता नहीं, मलकूं त्यागता नहीं, औ चलता नहीं; किंतु सोवता है, ऐसैं लौकिकजन[६२] कहते हैं ॥ २ ॥

टीकाः—श्रोत्र[६३] आदिक करणोकूं सोये हुये, इस नवद्वारवाले देहरूप पुरविषै प्राणआदिक पंचवायुरूप-हीं अग्निकी न्यांई अग्नि हैं वे जागते हैं ॥ प्राणोकूं अग्निकी तुल्यता कहैहैं:—यह प्रसिद्ध जो अपान-वायु है, सो गार्हपत्य नामा अग्नि है । कैसैं है ? तहां कहैहैं:—जैसैं अन्य अग्निके रचनेवाले गार्हपत्य-नामक अग्नि-तैं

---

६२ इहां पर्यंत "कौंन सोवते हैं ?" इस प्रथम प्रश्नका उत्तर दिया ।

६३ "कौंन सोवते हैं ?" या प्रथम प्रश्नका "विषयसहित बाह्यइंद्रिय सोवते हैं (व्यापारतैं उपराम होवैहैं), यातैं तिनकाहीं जागरण धर्म है" ऐसा उत्तर कहिके । अब "कौंन जागते हैं ?" इस द्वितीयप्रश्नका उत्तर कहैहैं ।

**यदुच्छ्वासनिश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः । मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥ ४ ॥**

---

नित्यके अग्निहोत्रतैं अन्य अग्निहोत्रके कालविषै अन्य आहवनीय नामा अग्नि **निकासिये है,** तैसैं जातैं सुषुप्तिकूं प्राप्तभये पुरुषके गार्हपत्य अग्निभावसैं कथन किये अपानवायुके भीतर जाते हुये तिसतैं प्राणवायु जो है सो निरावरण होनेतैं निकासे हुयेकी न्यांई मुख औ नासिकासैं चलता है । यातैं अपानवायु **गार्हपत्यअग्निके** स्थानी है ॥ जैसैं गार्हपत्यअग्नितैं निकसनेवाला आहवनीय अग्नि है; तैसैं अपानवायुतैं निकसनेवाला प्राणवायु है । यातैं **प्राण-वायु** जो है सो **आहवनीय** नामक अग्निके स्थानी है ॥ **व्यान-वायु** तो हृदयदेशतैं दक्षिणबाजूके छिद्रद्वारा निकसनेतैं दक्षिणदिशाका संबंधी है, यातैं सो **दक्षिणाग्नि-**के स्थानी है ॥ ३ ॥

**टीकाः**—इहां अब आगिले वाक्यसैं अग्निहोत्रके होमका कर्त्ता ऋत्विक्‌रूप होता कहिये हैः—जातैं उच्छ्वास औ निश्वास ये दोनूं आहुति हैं; काहेतैं, अग्निहोत्रकी आहुतिकी न्यांई सदा दोनूंकी संख्याके तुल्य होनेतैं । जातैं ये दोनूं आहुतिरूप हैं औ जातैं इन **उच्छ्वास औ निश्वासरूप आहुतिकूं** अग्निहोत्रविषै होमकर्त्ताकी न्यांई शरीरकी स्थिति अर्थ **सम-**भावसैं जो वायु **प्रवृत्त करता है,** तातैं सो वायु दोनूं आहुतिनका प्रवर्त्तक होनेतैं पूर्व उक्तिके अनुसार [६४]अग्निस्थानी हुया बी होतारूप है ॥ यह होतारूप वायु कौंनसा है?

---

६४ यद्यपि "पांच प्राणरूप अग्निहीं या पुरविषै जागते हैं" इस तृतीय (३) वाक्यविषै समानवायु अग्निस्थानी कहा है; तथापि जैसैं

सो होतारूप वायु समान है । [६५]यातैं विद्वान्‌का स्वप्न वी अग्निहोत्रका हवनहीं है । तातैं विद्वान् कर्मरहित नहीं ऐसैं मानने योग्य है । यह अभिप्राय है ॥ बृहदारण्यकउपनिषद्‌विषै जातैं ऐसैं दृष्टिकरनेवाले पुरुषके स्वप्नकालविषै सर्वदा सर्वभूत चयन नामक यागकूं करैहैं; ऐसैं कहाहै । तैसैं इहां वी जानना । इहां (स्वप्नविषै) प्राणरूप पंच अग्निके जागते हुये बाहिरके करणोकूं औ विषयनकूं लयकरिके अग्निहोत्रके फल स्वर्गकी न्याई सुषुप्तिकालविषै ब्रह्मके ताई जानेकूं इच्छता हुया मन, यजमानकी न्याई प्रसिद्ध जागता है । सो मन, यजमानकी न्याई कार्य्य अरु करणोविषै मुख्य होनेकरि व्यवहार करनेतैं औ स्वर्गकी न्याई ब्रह्मके ताई प्रस्थानकूं पाया होनेतैं यजमान है, ऐसैं कल्पना करियेहै । उदान-वायु जो है सो यागका फलहीं है । काहेतैं [६६]यागके फलकी प्राप्तिकूं उदा-

---

अग्निहोत्रविषै होमकर्त्ता ब्राह्मण दोनूं आहुतिनकूं आहवनीय नामक अग्निके प्रति समानताकरि प्राप्त करैहै; तैसैं यह समानवायु उच्छास औ निश्वासरूप इन दोनूं आहुतिनकूं शरीरकी स्थिति होनेअर्थ समताकरि प्रवृत्त करैहै, तातैं आहुतिनका प्रवर्त्तक होनेतैं, सो समानवायु होता (होमका कर्त्ता) वी कहियेहै । समानवायुके होतापनैंके स्थित हुये जो अग्निपनैंका कथन है, ताका "छत्रवाले जातेहैं" इस दृष्टांतकरि अग्निरूप औ अग्निसैं भिन्नरूप दोनूंके ग्रहणविषै लाक्षणिक अर्थ है ।

६५ तीन अवस्थासैं रहित उच्छ्वास औ निश्वासरूप प्राणोकी अग्निहोत्रके अवयवरूपताके संपादनका उपासनारूप प्रयोजन नहीं है । काहेतैं, निर्विशेष आत्माके प्रसंगके होनेतैं औ तिस प्राणकी उपासनाके विधिके अदर्शनतैं । किंतु इंद्रिय उपराम होतेहैं औ प्राण जागतेहैं । ऐसैं इहां त्वंपदार्थके शोधनरूप ज्ञानकी स्तुतिहीं है; ऐसैं कहैहैं ।

६६ याका यह अर्थ है:—उदानवायुरूप निमित्तवाले मरणके अनंतर यागादिकके फलकी प्राप्तितैं ता उदानकूं यागफलका निमित्त कारण होनेतैं कारणविषै कार्यके आरोपतैं उदानवायु, इष्टफल होनेकरि कल्प्या है ।

**अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति । दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चाननुभूतञ्च सर्व्वं पश्यति सर्व्वः पश्यति ॥ ५ ॥**

---

नवायुरूप निमित्तवाली होनेतैं ॥ ॥ [६७]उदानवायुकूं यागका फलपना कैसैं है ? तहां कहैहैंः—सो उदानवायु इस मन नामक यजमानकूं स्वप्नवृत्तिरूपतैं बी चलायमान करिके दिनदिनविषै सुषुप्तिकालमैं अक्षर-ब्रह्म-रूप [६८]स्वर्ग-के तांईहीं प्राप्त करैहै, यातैं उदानवायु यागफलके स्थानी है ॥ ४ ॥

**टीकाः**— [६९]"ऐसैं विद्वान्कूं श्रोत्रआदिक करणोके उपरामकालतैं

---

६७ उदानवायुकूं केवल मरणद्वारा यागके फलकी प्रापकता है ऐसैं नहीं, किंतु "इसीहीं ब्रह्मानंदके लेशकूं अन्य भूत भोगतेहैं" इस श्रुतितैं, सर्व यागनके फलनकूं ब्रह्मरूप होनेतैं उदानकूं ब्रह्मका प्रापक होनेतैं बी दिनदिनविषै इष्ट फलकी प्रापकता है; ऐसैं अब प्रश्नपूर्वक कहैहैं।

६८ यद्यपि दिनदिनविषै जो ब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै, सो यागका फल नहीं । काहेतैं, यागसैं रहित पुरुषनकूं बी सुषुप्तिविषै ता ब्रह्मकी प्राप्तितैं। तथापि ब्रह्मकूंहीं सर्व यागनका फल होनेकरि सुषुप्तिद्वारा ता ब्रह्मके प्रापक उदानकूं इष्टफलकी प्रापकता है । यह भाव है ।

६९ ननु, "यह अपानवायु गार्हपत्यनामा अग्नि है" इस श्रुतिकूं आरंभ करिके "मनरूप प्रसिद्ध यजमान है" इस श्रुतिपर्यंत जो ग्रंथ है, तिसकरि विद्वान् कर्मी नहीं होवैहै, ऐसी विद्वान्की स्तुति करियेहै, यह जो कहा सो होहू । ऐसैं तहां अग्निहोत्रादि कर्मकी प्रतीतितैं उदानकूं यागफलस्थानीपनेके कथनतैं तो इस यागका फलपना नहीं है । काहेतैं, तहां कर्मकी अप्रतीतितैं । तहां कहैहैं । इहां यह भाव हैः—श्रोत्रादिक इंद्रिय स-

आरंभ करिके जहांलगि सुषुप्तितैं उत्थानकूं प्राप्त होवैहै, तहांलगि सर्व यागके फलके अनुभवके होनेतैं अविद्वानोकी न्याई अनर्थके वास्ते नहीं। ऐसैं इहां विद्वत्ताकी स्तुति करियेहैः—जांतैं केवल विद्वान्- केहीं श्रोत्रादिक इंद्रिय सोवतेहैं, वा प्राणरूप पांचअग्नि जागतेहैं, वा जाग्रत् औ स्वप्नविषै मन स्वतंत्रताकूं अनुभव करता हुया दिन-दिनविषै सुषुप्तिकूं पावताहै ऐसैं नहीं; किंतु सर्व प्राणिनकूं क्रमसैं जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्तिविषै गमन समानहीं है। यातैं यह विद्व-त्ताकी स्तुतिहीं संभवैहै ॥ औ जो पूंछयाथा "कौंन यह देव स्व-प्नोकूं देखता है" यह तृतीय प्रश्न है। ताका जो उत्तर है, सो अब कहैहैं:—पूर्व श्रोत्रादिक इंद्रियनके उपराम हुये औ देहकी रक्षा अर्थ प्राण आदिक पांचवायुनके जागते हुये सुषुप्तिकी प्राप्तितैं पूर्व इस संधि-मैं **यह देव** सूर्य्यके किरणोकी न्याई अपने स्वरूपविषै लय कियेहैं श्रोत्र आदिक करण जिसनैं, ऐसा हुया **स्वप्नविषै** वि-षय औ विषयीरूप अनेकवस्तुके आत्मभावकी प्राप्तिरूप **महिमा** (विभूति)—कूं **अनुभव करैहै** ॥ ननु, महिमाके अनुभव करनेविषै

---

प्नविषै उपराम होवैहैं औ प्राणहीं जागतेहैं, इस रूपवाली विद्यारूप विद्वत्ता है, ताकी इहां स्तुति करियेहै। इस विद्याकूं जागरण जो है सो श्रोत्रादिक बाह्यइंद्रियनका धर्म है, शरीरका रक्षण प्राणका धर्म है, आत्माका धर्म नहीं, इस प्रकारके त्वंपदार्थके विवेकरूप होनेतैं विद्वान्की स्तुति करनेकी योग्यताका संभव है, याहीतैं प्राणके जागरणकूं विद्वान् अविद्वान् दोनूंविषै साधारण होनेतैं कैसैं विद्वान्की स्तुति है? यह शंका बी निषेध भई। काहेतैं, तिस अविद्वान्कूं इस प्रकारके विवेकके अभावतैं।

७० ननु, विद्याके प्रसंगके होनेतैं या विद्वानकूं श्रोत्र आदिकका उप-राम आदिक सर्व होवैहै, ऐसैं विधान किया चाहिये; स्तुतिसैं क्या प्रयोजन है? यह आशंकाकरिके, विद्वान् औ अविद्वान्विषै साधारण होनेकरि श्रो-त्रआदिकका उपराम औ प्राणोका जागरण, ये दोनूं आपहीं होवैहैं, इनके विधान करनेकी योग्यता नहीं, ऐसैं कहैहैं।

अनुभवकर्त्ताकूं करण मन है, तातैं सो स्वतंत्र होनेकरि कैसैं अनुभव करैहै? तहां कहियेहैः—क्षेत्रज्ञ आत्मारूप जो देव है, सो स्वतंत्र हुया बी महिमाका अनुभव करैहै, यह दोष नहीं है। काहेतैं, क्षेत्रज्ञके स्वतंत्रपनैंकूं मनरूप उपाधिका किया होनेतैं। क्षेत्रज्ञ, परमार्थतैं आप सोवता नहीं वा जागता नहीं। तिस क्षेत्रज्ञका जागरण औ स्वप्न, मनरूप उपाधिका कियाहीं है॥ ऐसैं बृहदारण्यकविषै "बुद्धिसहित भया आत्मा स्वप्नरूप होयके ध्यावते हुयेकी न्याईं होवैहै" इत्यादि वाक्यसैं कहाहै। तातैं देवशब्दसैं उक्त मनकूं विभूतिके अनुभवविषै स्वतंत्रपनैंका वचन युक्तहीं है॥ औ केईकं[७१] कहतेहैं किः—क्षेत्रज्ञकूं स्वप्नकालविषै मनउपाधिकरि सहितपनैके हुये ताके स्वयंज्योतिपनैकी श्रुति बाधकूं पावतीहै? सो वनै नहींः—काहेतैं, यह तिनकूं श्रुतिअर्थके अज्ञानसैं भई भ्रांति है। जातैं मन आदिक उपाधिसैं जन्य स्वयंज्योतिपनै आदिकका व्यवहार बी मोक्षपर्यंत सर्व अविद्यावान्का विषयहीं है। काहेतैं, "जहां वा अन्यकी न्याईं होवै तहां अन्य अन्यकूं देखे" औ "इस आत्माकूं विषयनसैं असंबंध होवैहै" औ "जहां तो इस पुरुषकूं सर्व आत्माहीं होता भया तहां, किसकरि किसकूं देखे" इत्यादिक श्रुतिनतैं। यातैं मंद ब्रह्मविदनकीहीं यह आशंका है, एक आत्माके ज्ञानीनकी नहीं॥ ननु, ऐसैं हुये इहां यह पुरुष स्वयंज्योति होवैहै" इस श्रुतिविषै "इहां" यह स्वप्नका विशेषण व्यर्थ होवैगा। तहां कहियेहैः—हे वादी! यह तेरेकरि अल्प कहियेहै। जातैं "जो यह अंतरके हृदयविषै आकाश है, तिसविषै

---

७१ ननु यह ऊपर कही जो श्रुति, सो विभूतिके अनुभवसैं मनकी स्वतंत्रताके कहनेकूं अशक्य है। काहेतैं, अन्यश्रुतिके विरोधकी प्राप्तितैं। यातैं इहां देवशब्दसैं क्षेत्रज्ञहीं कहियेहै, मन नहीं। काहेतैं, तिसींहीं क्षेत्रज्ञकूं आपतैं स्वतंत्रताके होनेतैं, ऐसैं वादी शंका करैहै।

आत्मा रहताहै" इस श्रुतितैं, अंतरहृदयके परिच्छेदके भये अवश्य आत्माका स्वयंज्योतिपना बाधकूं पावैगा ॥ जो कहै यद्यपि यह दोष होवैगा, यह तुमारा कथन सत्यहीं है तथापि स्वप्नविषै आत्माकूं केवल ( मनके अभावयुक्त )पनैंसैं स्वयंज्योति होनेकरि तिस-आत्माका आधा बोज ( प्रतिबंधक ) दूर भया [ अवशेष रहे आत्माका बोध सुषुप्तिविषै होवैगा, यह अभिप्राय है ] सो कथँनै बनै नहीं:—काहेतैं तहां (सुषुप्तिविषै)वी "पुरीतति नामक नाडीनविषै रहताहै" इस श्रुतिकरि पुरीततिनाडीनके संबंधतैं ॥ तहां स्वप्नविषै बी पुरुषकूं स्वयंज्योति होनेकरि जब आधे बोजके दूरी करनेका अभिप्राय मिथ्याहीं है ॥ तब "इहां यह पुरुष स्वयंज्योति होवैहै" यह कथन कैसैं बनैगा? औ जो कहोगे अन्यशाखागत होनेतैं सो श्रुति, अन्यश्रुतिकी अपेक्षासैं रहित है? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं, सर्व श्रुतिनके अर्थकी एकरूपताकूं इच्छित होनेतैं, सर्व वेदांतनका अर्थरूप आत्मा एकहीं जनावनेकूं इच्छित है औ जाननेकूं इच्छित है। तातैं श्रुतिकूं यथार्थतत्त्वकी प्रकाशक होनेतैं

---

७२ जब ऐसैं होवै तब सुषुप्तिविषै स्वयंज्योतिपनैके सर्व प्रतिबंधके बी अभावकूं आश्रयकरिके आत्माके स्वयंज्योतिपनैका बोध कहनेकूं योग्य होवै। परंतु सो संभवै नहीं। काहेतैं, तहां सुषुप्तिविषै बी बहुत प्रतिबंधकके विद्यमान होनेतैं, ऐसैं सिद्धांती कहैहैं। इहां यह अभिप्राय है:—सुषुप्तिविषै जब आत्माके स्वयंज्योतिपनैके सर्व प्रतिबंधककी निवृत्ति होती होवै, तब स्वप्नविषै आधे प्रतिबंधककी निवृत्तिका अभिप्राय वर्णन करनेकूं शक्य होवै, परंतु सुषुप्तिविषै बी सर्व प्रतिबंधककी निवृत्ति होती नहीं। यातैं "इहां" यह जो किसी एक अवस्थाका वाची श्रुतिगत विशेषण है सोबी व्यर्थ है। इस कथनके अवसरके हुये इस श्रुतिगत विशेषणकी कोई गति कहनेकूं योग्य नहीं होवैगी। तातैं आधे प्रतिबंधककी दृष्टिकूं छोडिके "इहां" यह विशेषण स्वप्नकाहीं मानिके स्वप्नविषै आत्माका स्वयंज्योतिपना बोधन करनेकूं शक्य है। यह अभिप्राय है।

स्वप्नविषै आत्माके स्वयंज्योतिपनैंका संभव कहनेकूं युक्त है; ऐसैं वादीनैं कहा ॥ तब सिद्धांती कहैहैंः—हे वादी! जब ऐसैं जानताहै तब सर्व अभिमानकूं छोडिके श्रुतिके अर्थकूं श्रवण कर। अभिमानसैं तो शतवर्षपर्य्यंत बी सर्व आपकूं पंडित माननेवाले पुरुषनकरि श्रुतिका अर्थ जाननेकूं शक्य नहीं है ॥ इहां यह श्रुतिका अर्थ हैः—जैसैं हृदयाकाशविषै औ पुरीतति नामक नाडीनविषै स्वप्नकूं प्राप्त भये आत्माका तिनसैं संबंधके अभावतैं, आत्मा तिनतैं विवेचनकरिके दिखावनेकूं शक्य होवैहै; यातैं आत्माका स्वयंज्योतिपना बाधकूं पावता नहीं। ऐसैं अविद्या काम औ कर्मरूप निमित्तसैं उद्भवकूं पाई वासनावाले मनविषै कर्मरूप निमित्तवाली वासनामय अविद्यासैं अन्यकूं अन्यवस्तुकी न्याई देखनेवाले औ सर्व कार्य्य अरु करणतैं विवेचन किये द्रष्टाकूं दृश्यरूप वासनातैं न्यारा होनेकरि ताका स्वयंज्योतिपना सदा गर्वित नैयायिकसैं बी निवारण करनेकूं शक्य नहीं। तातैं करणोके मनविषै लीन हुये औ मनके अलीन हुये मनोमय देव, स्वप्नोंकूं देखता है, यह आचार्य्यनैं सम्यक् कहा है ॥ कैसैं महिमाकूं अनुभव करैहै? यह कहियेहैः—जिस मित्र वा पुत्रादिककूं पूर्व देखता भयाहै, ताकी वासनाकरि युक्त भया, पुत्र अरु मित्र आदिककी वासनासैं उद्भव हुये दृष्ट वस्तुकूं पुत्र औ मित्रकी न्याई अविद्यासैं देखे हुयेकी न्याई मानताहै। तैसैं जो अर्थ सुन्या है, तिसीही सुने अर्थकूं तिसकी वासनासैं पीछे सुने हुयेकी न्याई मानताहै। औ नदीके तीर आदिक अन्य देशनसैं औ पूर्व आदिक अन्यदिशासैं वारंवार अनुभव किया जो वस्तु, ताकूं अविद्यासैं अनेक दिनविषै वर्त्तमान अनेक स्वप्नविषै अनुभव करैहै। तैसैं, [७३]अन्यजन्मविषै देखे अरु

७३ अत्यंत अदृष्ट वस्तुविषै वासनाके असंभवतैं, इहां अन्यजन्मविषै देखे वस्तुकूं ऐसैं कहा।

**स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति । अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत् सुखं भवति ॥ ६ ॥**

---

इसजन्मविषै न देखे वस्तु-कूं, तैसैं अन्यजन्मविषै सुने औ इसजन्मविषै नहीं सुने वस्तु-कूं, औ अन्यजन्मविषै मनसैंहीं अनुभवकिये अरु इसजन्मविषै केवल मनसैं नहीं अनुभव किये वास्तव जल आदिक सत्‌रूप अरु मरीचिजल आदिक असत्‌रूप [बहुत क्या कहैं कथन किये इस] सर्व वस्तु-कूं जो देखता है, सो सर्व मनकी वासना-रूप उपाधिवाला हुया देखताहै। ऐसैं सर्व कारणरूप मनोमयदेव स्वप्नोकूं देखताहै ॥ ५ ॥

**टीकाः–**[७३]सो मनोरूप देव जिसकालविषै पित्ता नामवाले सूर्य्यके तेजसैं नाडीरूप शय्याविषै सर्व ओरतैं पराभवकूं प्राप्त होवैहै (वासनाके उद्भवके द्वाररूप स्वप्नभोगके दाता कर्मके तिरस्कार करि युक्त होवैहै), तब इंद्रियनसहित मनके वासनारूप किरण, हृदयविषै लय होवैहैं। तब मन, वनके अग्निकी न्याई सामान्यज्ञान (चैतन्य)रूपसैं सारे शरीरकूं व्यापिके स्थित होवैहै, तब सुषुप्तिकूं प्राप्त होवैहै। इस कालविषै यह मन नामक देव स्वप्नोकूं देखता नहीं। काहेतैं, देखनेके द्वारकूं तेजसैं निरोधकूं पाया होनेतैं। पीछे तब इस शरीरविषै यह सुख होवैहै। जो बाधरहित सामान्यरूपसैं शरीरविषै व्यापक प्रसन्न ज्ञानरूप स्वरूपसुख है, सो, यह अर्थ है ॥ ६ ॥

---

७४ "यह सुख किसकूं होवै है ?" इस चतुर्थ प्रश्नके उत्तरकूं अब कहैहैं।

**स यथा सोम्य ! वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते । एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ७ ॥**

---

**टीका:**—ईंसकालविषै अविद्या काम औ कर्मरूप कारणसैं भये कार्य्य औ करण निवृत्त होवैहैं। तिनके निवृत्त भये उपाधिनसैं विपरीत भासमान जो आत्माका स्वरूप, सो अद्वैत एक सुखरूप शांत होवैहै । यातैं इसीहीं सुषुप्ति अवस्थाकूं पृथिवी आदिक औ तिनकी अविद्यारचित मात्राके विवेककरि अक्षर ब्रह्मविषै प्रवेशसैं दिखावनेकूं दृष्टांत कहैहैं:—सो दृष्टांत यह है कि:—हे सौम्य ( प्रियदर्शन )! जैसैं पक्षी जे हैं, वे वासके अर्थ वृक्षकेताईं जातेहैं। जैसैं यह दृष्टांत है, ऐसैं प्रसिद्ध सो आगे कहनेका सर्व जगत् अक्षर (अविनाशी)रूप परमात्माविषै जाताहै (लय होताहै) ॥७॥

---

७५ ऐसैं इस षष्ठवाक्यकरि आनंदमयकोशशब्दका वाच्य अस्पष्ट औ मन आदिककी वासनावाला ज्ञान, सुषुप्तिका धर्मी है, ऐसा चतुर्थप्रश्नका उत्तर कहा । अब इस सप्तम ( ७ ) वाक्यसैं पंचम प्रश्नका उत्तर, विवेककी सुगमतातैं तुरीयस्वरूपकूं विवेचन करिके कहैहैं ।

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च। चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गन्तव्यञ्च मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोद्धव्यञ्चाहङ्कारश्चाहङ्कर्त्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च ॥ ८ ॥

---

टीका:—जो सर्व जगत् परमात्माविषै जाता है, सो कौन है? तहां कहैहैं:—पृथिवी औ पृथिवीकी मात्रा, जल औ जलकी मात्रा, तेज औ तेजकी मात्रा, वायु औ वायुकी मात्रा, आकाश औ आकाशकी मात्रा; अर्थ यह जो स्थूल औ सूक्ष्मभूत। तैसैं, चक्षु इंद्रिय औ देखने योग्यवस्तु, श्रोत्र औ सुनने योग्यवस्तु, घ्राण औ सूंघने योग्यवस्तु, रसना औ स्वाद लेने योग्यवस्तु, त्वचा औ स्पर्श करने योग्यवस्तु, वाचा औ बोलने योग्यवस्तु, दो हस्त औ लेने देने योग्यवस्तु, उपस्थ औ आनंद देने योग्यवस्तु, पायु औ त्यागने योग्यवस्तु, दोपाद औ चलने योग्यवस्तु, इहां ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रिय औ तिनके विषय कहे॥ पूर्व उक्त मन औ मनन करने योग्यवस्तु-रूप ताका विषय, निश्चयरूप बुद्धि औ जानने योग्यवस्तु-रूप ताका विषय, अभिमानमय अंतःकरणरूप अहंकार औ अभिमान करने योग्यवस्तु-रूप ताका विषय, चेतनावृत्तिवाला अंतःकरणरूप चित्त औ चिंतन करने योग्यवस्तु-रूप ताका विषय, त्वचा इंद्रियतैं भिन्न प्रकाश-

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ९ ॥

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते। स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य ! स सर्व्वज्ञः सर्व्वो भवति। तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

---

युक्त चर्मरूप तेज़ औ तिससैं प्रकाशकरने योग्य सोई तेजरूप वस्तु ताका विषय; औ जाकूं सूत्रात्मा कहते हैं, ऐसा प्राण औ तिसकरि धारने योग्य सर्व कार्य्यकारणका समूहरूप परके अर्थ होनेकरि मिलितभया नामरूपमय जगत् ताका उपाधिभूत, इतना हीं सो सर्व है ॥ ८ ॥

टीकाः—इस सर्वतैं पर जो जगत्का कर्त्ता आत्माका रूप है, सो सूर्य्यक (जलगतसूर्यके प्रतिबिंब ) आदिककी न्यांई भोक्तापनै औ कर्त्तापनैकरि इसविषै प्रवेशकूं पाया है। यहहीं द्रष्टा स्प्रष्टा (स्पर्शका कर्त्ता) श्रोता घ्राता (सूंघनेवाला), रसयिता (रसके स्वादका लेनेवाला), मंता (मननकर्त्ता), बोद्धा (ज्ञाता), कर्त्ता; औ विज्ञानात्मा पुरुष है। जिसकरि जानिये है ऐसा करणरूप बुद्धि आदिक विज्ञान है, सो यह नहीं; किंतु यह तो जो जानता है, ऐसा कर्त्ता औ कारकरूप विज्ञान है, तिस विज्ञानरूप आत्मा (स्वभाव )वाला है कहिये विज्ञातास्वभाववाला है, यातैं विज्ञानात्मा कहिये है, । कार्य्य अरु करणके संघातरूप उक्त उपाधिनविषै पूर्ण होनेतैं पुरुष कहियेहै। सो पुरुष, जल आदिक आधारके शोषणके हुये जलगत सूर्य्य आदिकके प्रतिबिंबके सूर्य्य आदिकविषै प्रवेशकी न्यांई अक्षररूप परमात्माविषै लीन होवैहै ॥ ९॥

टीकाः—तिन जीव औ परमात्माकी एकताके ज्ञाताकूं आगिला वा-

क्य, "सो आगे कहनेके विशेषणवाले अक्षररूप परब्रह्मकूंहीं पावताहै" इसरूप फलकूं कहैहै। यह कहियेहैः—हे सोम्य! जो कोईकहीं सर्व एषणातैं रहित हुया तिस ७६अज्ञानरहित औ नामरूप सर्व उपाधिके शरीरतैं रहित औ अलोहित (रक्तआदिक द्रव्यकी न्यांई सर्व रक्तआदिक गुणरहित), औ जातैं ऐसा है यातैं शुद्ध औ सर्व विशेषणोंसैं रहित होनैतैं अक्षर, सत्य, पुरुषनामक, प्राणरहित, मनके अविषय, कल्याणरूप, शांत, बाहिर भीतर सहित, अजन्मा-कूं जानताहै; सो अक्षर-रूप पर-ब्रह्म-कूंहीं पावताहै। औ जो सर्वका त्यागी हुया जानता है, सो ७७सर्वज्ञ है। तिससैं अज्ञात कछुबी संभवै नहीं। ७८पूर्व अविद्यासैं असर्वज्ञ था, पीछे विद्यासैं अविद्याके दूर भये, सर्व-रूप होवैहै। तिसी अर्थ-विषै यह आगे कहनेका वाक्यरूप श्लोक (मंत्र) प्रमाण होवैहै ॥ १० ॥

---

७६ इहां अज्ञानरहित इत्यादिक तीन विशेषणोंसैं कारण, सूक्ष्म औ स्थूल, इन तीन शरीरनके निषेधसैं औ तीन अवस्थाके निषेधसैं आत्माका तीन अवस्थासैं रहितपना जो है, ताका अनुवाद करियेहै,। "रक्त आदिक गुणरहित" इस कहनेसैं तिन गुणवाले स्थूलशरीरसैं रहित है, यह जान्या जावैहै। शुद्ध कहनेसैं तिसीहीं तुरीयपदका अनुवाद करिके ताकी अक्षर (ब्रह्म) के साथि सामानाधिकरण्यसैं एकता कही। इहां अक्षर, इस पदकरि "अक्षररूप सत्य पुरुषकूं जानता है। बाहीर भीतरसहित वर्त्तमान है, अजन्मा है, प्राणरहित है, मनरहित है, शुद्ध है" इस मंत्रविषै उक्त आत्माके उपलक्षणरूप सर्व विशेषण ग्रहण कियेहैं।

७७ इहां ज्ञानीकूं सर्वज्ञ कहनेसैं "हे भगवन्! किसके जाने हुये यह सर्व जान्या जावैहै?" ऐसैं प्रतिज्ञा किया सर्वका विज्ञान कहा।

७८ ननु, सर्वात्मभावकूं ज्ञानकरि जन्यताके हुये ताका अनित्यपना होवैगा? यह आशंका भई, यातैं कहैहैं।

**विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्व्वैः प्राणा, भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र। तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य ! स सर्व्वज्ञः सर्व्वमेवाविवेशेति ॥ ११ ॥**

इति श्रीप्रश्नोपनिषदि चतुर्थः प्रश्नः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतपंचमः प्रश्नः ॥ ५ ॥

**अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत । कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति? ॥ १ ॥**

---

**टीकाः**—हे सोम्य (प्रियदर्शन) ! अग्नि आदिक सर्व देवनकरि सहित चक्षु आदिक इंद्रिय औ पृथिवीआदिक भूत, जिस अक्षर-विषै प्रवेशकूं पावते हैं, तिस अक्षरकूं जो उक्त अर्थका ग्राहक विज्ञानात्मा ( जीव ) जानता है. सो सर्वज्ञ हुया सर्वकेताईहीं प्रवेशकूं पावताहै ॥ ११ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतचतुर्थप्रश्नभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ४ ॥

---

अथ प्रश्नोपनिषद्गतपंचमप्रश्नभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

**टीकाः**—अब गांर्ग्यमुनिके प्रश्नके निर्णयके भयेपीछे, परब्रह्म औ

---

७९ ऐसैं चतुर्थ प्रश्नविषै उक्त उत्तमअधिकारीकूं पदार्थके शोधनपूर्वक वाक्यार्थके ज्ञानसैं अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति कहिके, अब इसविषै अनधिकारी मंदवैराग्यवाले औ " ॐ " ऐसैं आत्माकूं ध्यान करनेहारे; "ॐकार

**तस्मै सहोवाच । एतद्वै सत्यकाम ! परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥**

---

अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होनेकरि ॐकारके उपासनके करनेकी इच्छासैं पंचमप्रश्नका आरंभ करियेहै ॥ पीछे इस पिप्पलाद मुनीश्वर-कूं शिबि मुनि-का पुत्र सत्यकाम नामा मुनि पूछता भया। सत्यकाम उवाचः—हे भगवन् ! मनुष्यनके मध्य सो अद्भुतकी न्याईं है, सो जो कोईक मनुष्य मरणपर्यंत इस ॐकारकूं सन्मुख होनेकरि चिंतन करै, कहिये, जो बाहिरके विषयनतैं रोके हुये इंद्रियवाला औ भक्तिसैं आरोप किया है ब्रह्मभाव जिसविषै, ऐसैं ॐकारविषै एकाग्रचित्तवाला औ उच्छेदरहित आत्माकारवृत्तिवाला औ अनात्माकारवृत्तिके अंतरायसैं रहित हुया वायुरहित स्थलविषै स्थित दीपककी शिखाके समान चित्तवाला होवै औ सत्य, ब्रह्मचर्य्य, अहिंसा. अपरिग्रह, त्याग, संन्यास, शौच, संतोष, निष्कपटभाव आदिक अनेक यम अरु नियमसैं अनुग्रहकूं पाया होवै, सो आश्चर्यकी न्याईं है । सो ऐसैं जहांलगि जीवै तहांलगि व्रतकी धारणावाला पुरुष उपासना औ. कर्मोंसैं पावनेयोग्य अनेकहीं लोक स्थित हैं, तिनविषै तिस ॐकारके अभिध्यान-सैं कौंनसे लोककूं पावताहै? ॥ १ ॥

**टीका**—ऐसैं पूंछनेवाले तिस सत्यकामनामक शिष्य-के ताईं सो पिप्पलाद मुनीश्वर कहतेभये । पिप्पलाद उवाचः—हे सत्य-

---

धनुष्य है" इत्यादिक मुंडकउपनिषद्के मंत्रसैं सूचन किये ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा क्रमसैं अक्षरकी प्राप्तिके अर्थ ॐकारकी उपासना कहने अर्थ पंचमप्रश्नकूं प्रकट करैहैं ।

८० इस उपासनाकूं ॐकारके अभिध्यानरूप होनेतैं, यह उपासना

काम! यह जो सत्य, अक्षर, पुरुषनामक **परब्रह्म** है; औ प्रथम-उत्पन्न भया प्राण ( सूत्रात्मा ) नामक **परब्रह्म** है, सो दोनूं प्रकारका ब्रह्म ॐकारहीं है, काहेतैं, ॐकाररूप प्रतीकवाला होनेतैं। जातैं सर्वधर्मके भेदतैं रहित परब्रह्म, शब्द आदिक प्रमाणसैं साक्षात् बोध करनेकूं अयोग्य है, यातैं इंद्रियके अगोचर होनेतैं केवल मनसैं जाननेकूं शक्य नहीं: किंतु विष्णु आदिककी प्रतिमास्थानी भक्तिकरि आरोप किये ब्रह्मभाववाले ॐकारविषै ध्यान करनेवाले पुरुषनकूं सो जाननेमैं आवता है, शास्त्ररूप प्रमाणके होनेतैं। तैसैं परब्रह्मबी जाननेमैं आवताहै। तातैं जो पर औ अपररूप ब्रह्म है, सो ॐकार है, ऐसैं आरोप करियेहै। तातैं ऐसैं **जाननेवाला पुरुष, इस** ॐकारके ध्यानरूप आत्माकी प्राप्तिके **साधन-रूप आश्रयसैं-हीं** परब्रह्म औ अपरब्रह्म, इन **दोनूंमैंसैं एककूं पावताहै** ॥ २ ॥

---

हृदयाकाश आदिकके उपासनाकी न्याईं अपरब्रह्मकी प्राप्तिकी साधनहीं है। अथवा परब्रह्मके प्राप्तिकी साधन बी है। ऐसैं पूंछनेवाले शिष्यके अभिप्रायके जाननेवाले पिप्पलाद मुनीश्वर, अपरब्रह्मके आलंबन होनेकरि जब ध्यान करिये, तब अपरब्रह्मकी प्राप्तिमात्रका साधन होवैहै। औ परब्रह्मके आलंबन होनेकरि जब ॐकारका ध्यान करिये, तब सो क्रमसैं परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होवैहै। ऐसैं उत्तर कहैहैं।

८१ ननु, ब्रह्म औ ॐकारके भेदतैं तिनकी एकता कैसैं बनै? यह आशंका करिके, तिनकी एकता उपचार ( आरोप ) तैं बनै है, ऐसैं कहैहैं इहां यह भाव है:—इस ब्रह्म औ ॐशब्दके एक अर्थविषै तात्पर्यरूप सामानाधिकरण्यसैं ॐकारका प्रतीकपना उपदेश करियेहै। पाषाणादिककी मूर्तिविषै विष्णुबुद्धिकी न्याईं, जिस अन्यविषै अन्यकी बुद्धि करिये सो ताका प्रतीक कहियेहै। इहां ब्रह्मसैं अन्य ॐकारविषै ब्रह्मकी बुद्धि करियेहै यातैं ॐकार ब्रह्मका प्रतीक है।

**स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥**

**टीका**—जो पुरुष, ब्रह्मका समीपवर्ती श्रेष्ठ आलंबन ( उपकारक साधन ) औ अकार आदिक तीन मात्रावाला सो ॐकार उपासना करनेके योग्य है, ऐसैं यद्यपि ॐकारकी अकार आदिक सकल मात्राके विभागका जाननेवाला नहीं होवै; किंतु ॐकारकी आकारमात्रा उपासना करनेके योग्य है, ऐसैं जानता है; तथापि सो दुर्गतिकूं पावता नहीं, किंतु ॐकारके ध्यानके प्रभावतैं श्रेष्ठगतिकूंहीं पावता है । [ ऐसैं तृतीय वाक्यके तात्पर्य्यार्थकूं कहिके अब अक्षरार्थकूं कहैहैं:—] ऐसैं सो जब केवल एकमात्राके विभागका जाननेवालाहीं सदा **एकमात्रारूप** ॐकार-कूं ध्यावता है सो पुरुष एकमात्रापनैंकरि युक्त तिस ॐकारके ध्यान-सैंहीं तिस मात्रा के साक्षात्कारवान् हुया तत्कालहीं पृथिवीविषै पावता है। पृथिवीविषै अनेक जन्म हैं, तिनविषै तिस साधक-कूं मनुष्य लोक (जन्म)के ताईंहीं ऋग्वेदरूप ॐकारकी प्रथम एक मात्रा जो है सो अभिध्यात हुई प्राप्त करैहै। सो साधक तिस प्रथममात्रारूप ॐकारके ध्यानसैं तिस मनुष्य जन्म-विषै द्विजोत्तम हुया औ तपसैं ब्रह्मचर्य्यसैं अरु श्रद्धासैं संपन्न हुया महिमा ( विभूति )-कूं अनुभव करैहै; परंतु श्रद्धारहित हुया जैसैं इच्छा होवै तैसैं चेष्टारूप यथेष्टाचरणकूं करता नहीं ॥ " एकदेशके ज्ञानसैं रहित जो योगभ्रष्ट है, सो कदाचित् बी दुर्गतिकूं पावता

---

८२ " अकार जो है सो ऋग्वेदरूप है " इस श्रुतितैं, अकाररूप ॐकारकी प्रथम मात्राकूं ऋग्वेदरूपता है ।

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते। स सोमलोकं। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ ४ ॥

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्म्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्म्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

---

नहीं" ऐसैं गीताविषै कथन किया होनेतैं, ॐकारकी एकमात्राके ध्यानवालेकूं उक्त फलका असंभव नहीं ॥ ३ ॥

टीका—फेर जब दो मात्राके विभागका ज्ञाता जो पुरुष, दो मात्रासैं युक्त ॐकारकूं ध्यावता है, सो स्वप्नरूप मनन करनेयोग्य यजुर्वेदमय चंद्रमारूप दैवतवाले मनविषै एकाग्रतासैं आत्मभावकूं पावता है। सो ऐसैं आत्मभावकूं पाया मरणरहित हुया द्वितीय मात्रारूपहीं यजुर्वेदसैं अंतरिक्षरूप आधारवाले द्वितीय लोकरूप चंद्रलोकके ताईं प्राप्त होवैहै। कहिये तिस साधककूं यजुर्वेदके वाक्य जे हैं, वे चंद्रलोकसंबंधी जन्मके ताईं प्राप्त करैहैं। सो तिस चंद्रलोकविषै विभूतिकूं अनुभव करिके मनुष्यलोकके ताईं फेर आवृत्ति(जन्म)कूं पावता है ॥ ४ ॥

टीका—जो पुरुष फेर तीनमात्रा-कूं विषय करने-वाले ज्ञानयुक्त "ॐ" इसप्रकारके इसींहीं अक्षर-रूप प्रतीक-सैं सह ॐकाररूप सूर्य्यके अंतर्गत परपुरुषकूं ध्यावता है, सो तीसरी मात्रारूप भया ध्यावता हुया, मरणकूं पाया हुया बी, तिस ध्यानसैं तेजरूप सूर्य्यविषै प्राप्त होवैहै। औ सूर्यतैं चंद्रलोक आदिक-

**तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥**

की न्याई पुनरावृत्तिकूं पावता नहीं; किंतु सूर्य्यविषै प्राप्तमात्र हुयाहीं होवैहै। जैसैं सर्प, त्वचा (कंचुक)-सैं मुक्त होवैहै; पीछे जीर्णत्वचासैं मुक्त हुया सो सर्प, फेर नवीन होवैहै। जैसैं यह दृष्टांत है ऐसैं प्रसिद्ध सो साधक, सर्पकी त्वचास्थानी अशुद्धिरूप पापसैं मुक्त होवैहै। पीछे मुक्त हुया सो तृतीयमात्रारूप सामसैं ऊंचे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्म-के सत्यनामक लोकके ताईं प्राप्त होवैहै। सो हिरण्यगर्भ, सर्व संसारी जीवनका आत्मारूप है। जातैं सो समष्टि लिंगदेहरूपसैं सर्व भूतनका अंतरात्मा है, यातैं तिस समष्टिलिंगरूप हिरण्यगर्भविषै व्यष्टिलिंगदेहके अभिमानी सर्व जीव मिले हुये हैं; तातैं सो हिरण्यगर्भ जीवघनरूप है ॥ अब वाक्यकी योजना करैहैं:—तीनमात्रारूप ॐकारका ज्ञाता सो विद्वान् ध्यावता हुया इस सर्वतैं पर (उत्कृष्ट) जीवघनरूप हिरण्यगर्भ-तैं पर, परमात्मानामक सर्व शरीररूप पूरीनविषै स्थित पुरुषकूं देखैंताहै । तहां ये उक्त अर्थके प्रकाशक दोनूं मंत्र प्रमाण होवैहैं ॥ ९ ॥

**टीकाः**—तीन संख्यावाली जो अकार उकार औ मकार नामवाली ॐकारकी मात्रा हैं, वे मृत्युकी विषयहीं हैं। औ परस्पर संबंधवाली हैं। वे तीन मात्रा विशेषकरि एक एक विषयविषैहीं योजना नहीं करी होवैं, ऐसैं नहीं होवैं, किंतु विशेषकरि

८२ इहां इस रीतिसैं अन्वय है:—सो विद्वान् अबी इस जीवनदशाविषै ध्यानकूं करता हुया पीछे ब्रह्मलोककूं पावता है। तहां ब्रह्मलोकविषै स्थावरजंगमरूप प्राणीनतैं पर जीवघनरूप हिरण्यगर्भतैं पर पुरुषकूं देखता है, तातैं मुक्त होवैहै।

**ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोंकारेणैवाऽऽयतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परश्चेति ॥७॥**

**इति श्रीप्रश्नोपनिषदि पञ्चमः प्रश्नः समाप्तः ॥ ५ ॥**

---

एकहीं ध्यानकालविषै त्याग करी हुई, जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्तिरूप स्थानके अभिमानी औ वैश्वानर आदिकसैं अभिन्न विश्व आदिक पुरुषनके अकार आदिक मात्रासैं तादात्म्यकरि ध्यानरूप जो **बाहिर भीतर औ मध्यकी योग क्रिया हैं,** तिन-के सम्यक् ध्यानके कालविषै **योजना किये हुये** जब [ वे तीनमात्रा ] यो**जना करी होवैं;** तब ॐकारके उक्त विभागका ज्ञाता जो योगी है, सो **चलायमान** ( विक्षेपकूं प्राप्त ) **होता नहीं;** किंतु अचलहीं रहता है । जातैं तिनसैं स्थानसहित जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्तिके अभिमानी जे पुरुष हैं, वे तीनमात्रामय ॐकाररूपसैं देखे हैं, यातैं तिस ऐसैं जाननेवाले योगीका चलना संभवै नहीं ॥ ६ ॥

**टीकाः**—जातैं सो ऐसा विद्वान् सर्वका आत्मारूप ॐकारमय है, यातैं किस कारणतैं ताका चलना (विक्षेप) होवै? आपतैं भिन्नवस्तुके अभावतैं किसीतैं बी चलना होवै नहीं । वा किस विषयविषै चंचल होवैगा? किसीविषै बी नहीं । इस अर्थवाले प्रथममंत्रकूं कहिके, अब सर्व अर्थके संग्रहरूप अर्थवाला द्वितीयमंत्र कहिये हैः—**सो विद्वान्, ऋग्वेदसैं इस मनुष्यलोककूं पावता है,** औ **यजुर्वेदसैं अंतरिक्ष-गत चंद्रमाके लोककूं पावता है** । औ जिसकूं **विद्यावान् पुरुष जानतेहैं,** अविद्यावान् नहीं; **ऐसा** जो तीसरा **ब्रह्मलोक है, तिसकूं सामवेदसैं पावताहै** । ऐसैं विद्वान् तिस अपरब्रह्मरूप तीनभांतिके लोककूं ॐकाररूप साधनसैं पावताहै ॥ जो **अक्षर** सत्य पुरुषनामक, **शांत,** मुक्त, अरु जाग्रत स्वप्न औ सुषुप्ति आदिक भेदरूप सर्व प्रपंचसैं रहित, औ याहीतैं

अथ प्रश्नोपनिषद्गत षष्ठः प्रश्नः ॥ ६ ॥

**अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन्! हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाज! पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद। यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं । स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष? इति ॥ १ ॥**

---

जरारहित, औ मृत्युरहितहीं है । जातैं जरारूप विकार आदिकसैं रहित, है, यातैं अभय है । जातैंहीं अभय है, तातैं सर्वसैं अधिक है । ऐसा जो पर-ब्रह्म है ताकूं बी तिसींहीं ॐकाररूप साधनसैंहीं पावताहै, इति, इहां जो "इति" शब्द है सो वाणीकी समाप्ति अर्थ है ॥ ७ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतपंचमप्रश्नभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ॥ ५ ॥

---

अथ प्रश्नोपनिषद्गतषष्ठप्रश्नभाष्यभाषादीपिका प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

टीकाः—"सुषुप्तिकालविषै विज्ञानरूप जीवसहित सर्व कार्यकारणरूप जगत्, अक्षररूप परब्रह्मविषै लय होवैहै," ऐसैं पूर्व चतुर्थप्रश्नविषै कहा था, तिस कथनके सामर्थ्यतैं प्रलयविषै बी तिसीहीं अक्षरविषै जगत्, लय होवैहै। जातैं कार्य्यका अकारणविषै लय संभवै नहीं । औ "आत्मातैं यह प्राण उपजैहै," ऐसैं श्रुतिविषै कहा

है; यातैं तिस ब्रह्मविषै लय होनेवाला जगत् ताहीतैं उपजेहै, ऐसैं सिद्ध होवैहै ॥ जगत्का जो मूल (कारण) है, ताके ज्ञानतैं परम मुक्ति[८४] होवैहै, यह सर्व उपनिषदनका निश्चित अर्थ है। पीछे चतुर्थ प्रश्नविषैहीं "सो सर्वज्ञ सर्वरूप होवैहै" ऐसैं कहा है। तब सो अक्षर ब्रह्मरूप सत्यपुरुषनामक जानने योग्य वस्तु कहां है, ऐसैं अब कहने योग्य हैः—ताकै शरीरके भीतर स्थित होनेके कथनद्वारा प्रत्यगात्मभावके ज्ञान अर्थ, यह षष्ठ प्रश्न आरंभ करियेहै। इहां सुकेशा नामक शिष्यनैं जो आगे पूर्वव्यतीत भये अर्थका फेर कथन किया है, सो ज्ञानकी दुर्लभताकी प्रसिद्धिसैं ताकी प्राप्तिअर्थ मुमुक्षुनके प्रयत्नविशेषके उत्पादन अर्थ है ॥ [८५]पीछे इस-पिप्पलाद मुनीश्वरकूं भरद्वाजका पुत्र सुकेशा नामक मुनि पूंछताभयाः—सुकेशा उवाचः—हे भगवन्! कोसलपुरीविषै भयाहै, यातैं कौसल्य कहियेहैं;

---

८४ यद्यपि अद्वितीय आत्माके ज्ञानतैं मुक्ति होवैहै, कारणके ज्ञानतैं नहीं; तथापि ता आत्माके कारणपनैके हुये तातैं भिन्न कार्यके अभावतैं ता आत्माके अद्वितीयपनैंका ज्ञान सिद्ध होवैहै; यातैं तैसै आत्माके ज्ञानतैं परममुक्ति होवैहै। यह "जगत् निश्चयकरि एकहीं आत्मा था" "सो इसीहीं पुरुषकूं परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखता भया," "प्रज्ञानं ब्रह्म है," "सो इस प्रज्ञानरूपसैं मरणरहित होता भया", "हे सोम्य! आगे एकहीं अद्वितीय सत्हीं था" ऐसैं आरंभ करिके "आचार्यवान् पुरुष जानता है, पीछे पावता है", "तिसीहीं एककूं जानो", "यह अमृतका सेतु है", "मैं ब्रह्म हूं" "तातैं सो सर्वरूप होता भया"; इत्यादिक वाक्यनविषै निश्चय किया है। यह अर्थ है।

८५ "पंचदशकला कारणभावकूं प्राप्त भई कर्म औ विज्ञानमय (जीव)" इस मुंडक उपनिषद्के ३ मुंडकके २ खंडके सप्तम (७) मंत्रविषै कर्मसहित षोडशकलाके परब्रह्मविषै लयकूं कहिके, "जैसैं नदीयां वहती हुयी" इस तिसीहींके अष्टम (८) मंत्रसैं दृष्टांतके कथनद्वारा परब्रह्मकी प्राप्ति कही। तिन दोनूं मंत्रनके विस्तारके कथन अर्थ षष्ठप्रश्नका आरंभ करैहैं।

ऐसा हिरण्यनाभ नाम क्षत्रियजातिवाला प्रख्यात राजपुत्र था, सो मेरे तांई आयके इस कथन करनेके प्रश्नकूं पूंछता भयाः—हे भरद्वाज! षोडश संख्यावाली जे कला हैं, वे शरीरके अवयवनकी न्याई जिस आत्मारूप पुरुषविषै अविद्यासैं आरोपितरूप हैं, सो यह पुरुष षोडशकलावाला कहियेहै। तिस षोडशकलावाले पुरुषकूं तूं जानताहैं? तिस पूंछनेवाले कुमार राजपुत्र-कूं "जो तूं पूंछता हैं, इसकूं मैं जानता नहीं," ऐसैं मैं कहताभया। ऐसैं कहनेवाले मुजविषै वी यह जानता होवैगा वा नहीं जानता होवैगा, ऐसैं अज्ञानके संशयके करनेवाले तिस राजपुत्रकूं मैं अपने अज्ञान-विषै कारण कहता भयाः—जब मैं तेरेकरि पूंछे हुये इस पुरुषकूं कैसैं वी जानता होउं, तब अत्यंत शिष्यके गुणवाले तेरे तांई कैसैं नहीं कहूं। फेर वी तिसके अविश्वासकूं जानिके विश्वासके करावने अर्थ मैं कहता भयाः—जो पुरुष ज्ञानी हुये आपकूं अज्ञानी हूं, ऐसैं आरोप करता हुया अन्यथा भये अर्थरूप अनृतकूं कहता है, सो यह मूलसहित सूक जाता है। कहिये इसलोक औ परलो-कतैं भ्रष्ट होवैहै। जातैं ऐसैं जानता हूं, तातैं मैं मूढकी न्याई अनृत (जूठ)-के कहनेकूं योग्य नहीं हूं। ऐसैं विश्वासकूं प्राप्त भया सो राजपुत्र लज्जित हुया चुप होयके रथकेतांई बैठिके जैसैं आया था तैसैं गया॥ यातैं, हे गुरो! न्यायतैं शरणकूं प्राप्त भये योग्य शिष्यकेतांई ज्ञाता गुरुकरि विद्या कहनेकूं योग्यहीं है। सर्व अवस्थाविषै बी जूठ कहनेकूं योग्य नहीं। ८६जाननेके योग्य होने-करि बाणकी न्याई मेरे हृदयविषै स्थित तिस पुरुष-कूं मैं तुह्मारे-तांई पूंछता हूं किः—यह जाननेयोग्य पुरुष कहां वर्त्तताहै?॥१॥

---

८६ जहांलगि जाननेकूं इच्छित वस्तु नहीं जानियेहै, तहांलगि सो वस्तु हृदयविषै बाणकी न्याईं भासता है; यातैं इहां बाणकी न्याई कहा।

**तस्मै स होवाच । इहैवान्तःशरीरे सोम्य! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति॥२॥**

**स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि । कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥**

---

**टीकाः**—ऐसैं पूंछनेवाले तिस सुकेशा मुनि-के तांईं सो पिप्पलाद मुनीश्वर कहते भयेः—पिप्पलाद उवाचः—हे सोम्य! जिस पुरुष-विषै ये आगे कहनेकी प्राण आदिक षोडशकला उत्पन्न होवैहैं, यातैं षोडशकलारूप उपाधिनसैं जो पुरुष निष्कल ( कलारहित ) हुयाबी अविद्यासैं कलावान्‌की न्याईं देखियेहै, ऐसा जो पुरुष है; सो पुरुष इसीहीं शरीरके भीतर हृदयकमलगत आकाशके मध्य जाननेकूं योग्य है । अन्य देशविषै नहीं ॥ २ ॥

**टीकाः**—विद्यासैं तिसकी उपाधिरूप कलाके अध्यारोपके अपवादसैं सो पुरुष केवल देखनेकूं योग्य है, यातैं कलाकी तिसतैं उत्पत्ति कहियेहै । अत्यंत भेदरहित अद्वैत शुद्ध तत्त्वविषै अध्यारोप कियेविना प्राण आदिक कलाका प्रतिपाद्य औ प्रतिपादन आदिक व्यवहार करनेकूं शक्य नहीं, यातैं इन कलाके अविद्याके अधीन उत्पत्ति स्थिति औ लयका आरोप करियेहै ॥ जातैं ये कला चैतन्यसैं अभेदकरि हीं उत्पन्न हुयी स्थित हुयी औ लय हुयी सर्वदा देखियेहैं । याहींतैं केईक (क्षणिक विज्ञानवादी) भ्रांतपुरुष, अग्निके संयोगतैं घृतकी न्यांईं चैतन्य ( विज्ञान ) हीं घटादिक आकारसैं क्षणक्षणविषै उपजेहै, औ नाश होवैहै, ऐसैं मानतेहैं ॥ औ शून्यवादी जे हैं, तिनकूं सुषुप्ति आदिकविषै तिन विषय औ ज्ञानरूपसैं चैतन्यके अभाव हुये सर्व शून्यकी न्याईं होवैहै, ऐसा भ्रम होवैहै ॥ दूसरे नैयायिक जे हैं, वे चेतनाके करनेवाला नित्य आत्माका घटादि

ककूं विषय करनेवाला चैतन्य (ज्ञानगुण) अनित्य उपजेहै औ नाश होवैहै, ऐसैं कहतेहैं। औ दूसरे चार्वाक जे हैं, वे चैतन्य जो है सो देह आकारसैं मिलेहुये पृथिवी आदिक च्यारीभूतनका धर्म है, ऐसैं कहतेहैं ॥ तिन सर्वकूं प्राणादिक कला औ चैतन्यके अभेदकी भ्रांतिहीं है। परंतु श्रुतिसिद्धांत यह है:—जन्म मरणरूप धर्मसैं रहित चैतन्यरूप आत्माहीं नामरूप आदिक उपाधिनके धर्मनसैं नानाभावसैं औ कार्य्यभावसैं प्रतीत होवैहै। "सत्य ज्ञान अनंतरूप ब्रह्म है" औ "प्रज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है" औ "विज्ञानघनहीं है" इत्यादिक श्रुतिनतैं। तैसैं हुये श्रुतिके विरोधतैं वे क्षणिकविज्ञानवादी आदिकनके पक्ष, त्यागने योग्य हैं ॥ ८७स्वरूपसैं अव्यभिचारी पदार्थनविषै चैतन्य (ज्ञान)के अव्यभिचारतैं, जैसैं जैसैं जो जो पदार्थ जानियेहै, तैसैं तैसैं जाननेयोग्य होनेतैंहीं तिसतिस पदार्थके चैतन्य (ज्ञान)का अव्यभिचारीपना है ॥ "८८कछु-

---

८७ अब ज्ञानकालविषै विषयनके सद्भावके नियमके अभावतैं औ विषयकालविषै ज्ञानके सद्भावके नियमतैं तिस ज्ञान औ विषयका भेद है। ऐसैं विज्ञानवादीके पक्षकूं खंडन करते हुये अव्यभिचारतैंहीं ज्ञानकी नित्यताकूं साधते हुये, नैयायिक आदिकके पक्षकूं वी खंडन करैहैं। इहां यह अर्थ है:—घटज्ञानके कालविषै पटके अभावके संभवतैं विषयनकूं ज्ञानसैं व्यभिचारीपना है। ज्ञानकूं तो विषयकालविषै अवश्य होनेके नियमतैं अव्यभिचारीपना है। औ पटकालविषै घटका ज्ञान वी नहीं है, ऐसैं घटके ज्ञानकूं वी पटरूप विषयसैं व्यभिचारीपना तुल्य है? यह आशंका मनमैं ल्यायके विषयनका स्वरूपसैं व्यभिचारीपना कहा। ज्ञानका विषयविशिष्टतारूपसैंहीं व्यभिचार है। विषयका तो स्वरूपसैंहीं व्यभिचार है। यह भेद है।

८८ ननु, उत्पन्न होयके झटिति नाश होनेवाले आदिक वस्तुकूं औ मेरुपर्वतकी गुहाके अंतर्गत वस्तुकूं अज्ञात होनेतैं ज्ञानका वी ज्ञेय (विषय) सैं अव्यभिचार असिद्ध है? यह आशंका करिके, ता वस्तुके अज्ञानके हुये ताके सद्भावकी असिद्धितैं, तैसा अज्ञात हुया पदार्थ असिद्ध है; ऐसैं कहैहैं।

क वस्तु नहीं जानियेहै औ होवैहै," यह कथन "रूप विषय नहीं देखियेहै औ चक्षु है" इसकी न्याई अघटित है। यातैं घटके ज्ञानकालविषै कदाचित् पटके अभावतैं ज्ञेय (विषय) तो ज्ञानके ताईं व्यभिचारकूं पावता है, परंतु ज्ञान जो है सो कदाचित् बी व्यभिचारकूं पावता नहीं। काहेतैं, ज्ञेयके अभाव हुये बी अन्य ज्ञेयविषै ज्ञानके स्वरूपकरि सद्भावतैं। सुषुप्तिविषै ज्ञानके न होते ज्ञेय कछुक होवैहै, ऐसैं किसीकूं बी प्रतीति होवै नहीं, यातैं बी ज्ञान, व्यभिचारकूं पावता नहीं॥ जो कहै, सुषुप्तिविषै अदर्शनतैं ज्ञानके बी अभावतैं, ज्ञेयकी न्याई ज्ञानके स्वरूपका व्यभिचार है। सो[८९] बनै नहीं:—काहेतैं, ज्ञेयके प्रकाशक ज्ञानकूं सूर्यादिकके प्रकाशकी न्याई ज्ञेयके प्रकाशक होनेतैं, अपने प्रकाश्य घटादिकके अभाव हुये सूर्यादिकके प्रकाशके अभावके असंभवकी न्याई, सुषुप्तिविषै ज्ञानके अभावके असंभवतैं।

---

८९ क्या तब सुषुप्तिविषै तूं ज्ञेयके अभावसैं ज्ञानका अभाव साधताहैं, अथवा ज्ञानके अदर्शनतैं ज्ञानका अभाव साधता हैं? [तिनमैं सुषुप्तिरूप ज्ञेयके अंगीकारतैं तब ज्ञानके अदर्शनकी असिद्धितैं द्वितीयपक्ष बनै नहीं, यह आगे कहियेगा] जो प्रथम पक्षकूं कहैगा, तौबी ज्ञेयकूं प्रकाश्य होनेतैं तिसके अभावतैं ताके प्रकाशक ज्ञानका अभाव है, ऐसैं मानताहैं; किंवा दोनूंकी एकताका अभावरूप ज्ञानका अभाव है; ऐसैं मानता हैं? तिनमैं व्यभिचारके होनेतैं प्रथमपक्ष बनै नहीं। जो कहै प्रकाश्यके ज्ञानरूप एक सामर्थ्यवाले प्रकाशका प्रकाश्यके अभाव हुये अभाव कहियेहै, प्रकाशकूं प्रत्यक्ष सिद्ध होनेतैं? सो बनैं नहीं:—काहेतैं, अंधकारविषै प्रकाश्य रूपकी अप्रतीतिके हुये ताके ज्ञानविषै समर्थ चक्षुरूप प्रकाशके अभावकी कल्पना करनेकूं अशक्य होनेतैं, प्रथमपक्ष बनै नहीं। सुषुप्तिविषै ज्ञेयके अभावरूप ज्ञेयके विद्यमान होनेतैं ज्ञान औ ज्ञेय दोनूंके तादात्म्यमय एकताके अभावरूप ज्ञानका अभाव है; यह द्वितीय पक्ष बी बनै नहीं। या अभिप्रायसैं सिद्धांती कहैहैं।

जैसैं अंधकारविषै चक्षुतैं रूपविषयकी अप्रतीतिके हुये क्षणिकविज्ञानवादीकरि चक्षुके अभावकी कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है, तैसैं सुषुप्तिविषै ज्ञेयके अभाव हुये ज्ञानके अभावकी कल्पना करनेकूं अशक्य है ॥ जो[९०] कहै, क्षणिकविज्ञानवादी जो है, सो ज्ञेयके अभाव हुये ज्ञानके अभावकूं कल्पताहीं है? तब ज्ञानके अभावके कल्पक, ज्ञेयके अभावका ज्ञान अंगीकार करियेहै वा नहीं। यह विज्ञानवादीकूं पूंछतेहैं, सो तिसकरि कहना योग्य है ॥ तिनमैं प्रथमपक्षविषै ज्ञानके अभावकी सिद्धि नहीं है। काहेतैं, तिसीहीं अभावके ज्ञानके सद्भावतैं। ऐसैं कहैहैं:—जिस ज्ञेयके अभावके ज्ञानसैं तिस ज्ञानके अभावकूं कल्पताहैं, तिस ज्ञानका अभाव किसकरि कल्पियेहै? किसीकरि वी कल्पना करनेकूं अशक्य है॥ द्वितीयपक्ष वी बनै नहीं। काहेतैं, तिस ज्ञेयके अभावरूप अज्ञानकूं बी ज्ञानके अभावके कल्पक होनेके असंभवतैं, अवश्य ज्ञेयरूप होनेतैं, ताके ज्ञानके अभाव हुये तिस ज्ञेयके अभावकी कल्पनाके असंभवतैं, ज्ञेयके अभावके ज्ञानके अनंगीकारका पक्ष युक्त नहीं॥ जो कहै ज्ञानकूं ज्ञेयसैं अभिन्न होनेतैं ज्ञेयके अभाव हुये ज्ञानका अभाव होवैहै? सो बनै नहीं:—काहेतैं अभावकूं बी ज्ञेयपनैंके अंगीकारतैं। जब विज्ञानवादीनकरि अभाव बी ज्ञेय औ नित्य अंगीकार करियेहै, तब सो ज्ञेयतैं अभिन्न ज्ञान नित्य कल्पना किया होवैगा औ तिसके अभावकूं ज्ञानरूप होनेतैं अभावपना कथनमात्रहीं है औ परमार्थतैं ज्ञानका अभावपना अरु अनित्यपना नहीं है औ नित्यज्ञानके नाममात्र अभावके आरोपविषै हमारी क्या हानि है? क-

९० विज्ञानवादीके मतविषै विज्ञानतैं भिन्न प्रकाश्य आदिकके अभावतैं प्रकाशरूप विज्ञानके परिणामके अभाव हुये प्रकाश्यरूप विज्ञानके परिणामके संभवकरि व्यभिचारके स्थलके अभावतैं, तहां सुषुप्तिविषै ज्ञान औ ज्ञेयके अभावका व्यभिचार नहीं है। या अभिप्रायसैं अत्र वादी शंका करैहै।

छुवी नहीं ॥ जो कहै, अभाव, ज्ञेयरूप हुया बी ज्ञानसैं भिन्न है ? तब ज्ञेयके अभाव हुये ज्ञानका अभाव सिद्ध नहीं होवैगा ॥ जो कहै ज्ञेयवस्तु ज्ञानसैं भिन्न है औ ज्ञान जो है सो ज्ञेयसैं भिन्न नहीं ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, शब्दमात्रके भेदकरि भेदके असंभवतैं । ज्ञेय औ ज्ञानकी एकता जब अंगीकार करता हैं, तब "ज्ञेय ज्ञानसैं भिन्न है औ ज्ञेयसैं भिन्न ज्ञान नहीं," यह जो कथन है, सो "अग्नि अग्निसैं भिन्न है औ अग्नि अग्निसैं भिन्न नहीं" इस कथनकी न्याई शब्दमात्रहीं है । यातैं ज्ञान, ज्ञेयसैं भिन्नहीं सिद्ध होवैहै । औ ज्ञानकूं ज्ञेयसैं भिन्न हुये सुषुप्तिविषै ज्ञेयके अभावके होते ज्ञानके अभावका असंभव सिद्ध भया ॥ जो कहै सुषुप्तिविषै ज्ञेयके अभाव हुये ज्ञानके अदर्शनतैं ज्ञानका अभाव है ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, सुषुप्तिरूप ज्ञेयके ज्ञानके अनंगीकारतैं ज्ञानका अदर्शन असिद्ध है । जातैं विज्ञानवादीके मतविषै सुषुप्तिमैं बी विज्ञानका सद्भाव अंगीकार करियेहै, यातैं ज्ञानका अदर्शन संभवै नहीं ॥ जो कहै सुषुप्तिविषै बी ज्ञानकूं आपकरिहीं आपका ज्ञेयपना है? सो बनै नहीं:—काहेतैं, अभावस्थलविषै ज्ञान औ ज्ञेयके भेदके सिद्ध होनेतैं । जातैं अभावरूप ज्ञेयकूं विषय करनेवाले ज्ञानकूं अभावरूप ज्ञेयतैं भिन्न होनेकरि ज्ञेय औ ज्ञानका भेद सिद्ध है, तातैं सो सिद्ध भया भेद मृतकके जीवावनेकी न्याई फेर विपरीत करनेकूं सैकडो विज्ञानवादीनसैं बी अशक्य है ॥ जो विज्ञानवादी कहै, ज्ञानकूं ज्ञेयपनाहीं है । सो बी अन्यज्ञानकरि ज्ञेय होवैगा, अरु सो बी, अन्यज्ञानकरि ज्ञेय होवैगा; ऐसैं तुमारे पक्षविषै अनस्थादोष होवैगा ? सो बनै नहीं:—काहेतैं सर्ववस्तुके समूहके विभागके संभवतैं । जिस पक्षविषै सर्व वस्तुका समूह आपतैं भिन्न किसीबी ज्ञानका ज्ञेय है, तिस पक्षविषै उक्तदोष है । ऐसैं जब हम मानते होवैं तब हमारे पक्षविषै अनवस्थादोष होवै । जातैं ऐसैं ज्ञानकूं विषय करनेवाला ज्ञानरूप

तीसरा भाग, हमोंकरि नहीं मानियेहै; किंतु तिस ज्ञेयतैं भिन्न जो ज्ञान, सो ज्ञानहीं है औ ज्ञानतैं भिन्न जो ज्ञेय, सो ज्ञेयहीं है। ऐसैं दूसरा विभागहीं मानियेहै। यातैं हमारे पक्षविषै अनवस्थारूप दोष संभवै नहीं॥ जो कहै, तुमारे मतविषै जब ज्ञानरूप ब्रह्म आपहीं आपका ज्ञेय (विषय) नहीं, तब ब्रह्मके सर्वज्ञपनैकी हानि होवैगी? सो दोष[91] बी तिस विज्ञानवादीकूंहीं होहु। हमकूं तिस मायिक सर्वज्ञपनैके खंडनसैं बी क्या दोष है! कछु बी नहीं। विज्ञानवादीनके मतविषै ज्ञान, ज्ञेयरूप है, यातैं ज्ञानके ज्ञेयपनैंके अंगीकारतैं दूसरा अनवस्थारूप दोष बी अवश्यहीं होवैगा। काहेतैं विज्ञानवादीनके मतविषै ज्ञानकूं[92] आपसैं अज्ञेय होनेंकरि अनवस्थारूप दोष निवारण करनेकूं अशक्य है॥ जो कहै, तुमारे मतविषै

---

९१ जाननेकूं योग्य सर्वके अज्ञानके हुयेहीं सर्वज्ञताकी हानि होवैहै, औरप्रकारसैं नहीं, अन्यथा शशशृंग आदिकके अज्ञानतैं किसीके बी मतविषै सर्वज्ञता नहीं होवैगी। यातैं हमारे मतविषै तिस सर्वज्ञताकी हानिरूप दोषकी प्राप्ति नहीं है, किंतु तिसीहीं विज्ञानवादीकूं तिस दोषकी प्राप्ति होवैहै। काहेतैं, तिस विज्ञानवादीकरि ज्ञानकी अवश्य ज्ञेयरूपताके अंगीकारतैं आप ज्ञानकरि आपका ज्ञेयपना मान्याहै। तिस आपकरि आपके ज्ञेयपनैंकूं "अभावरूप ज्ञेयकूं विषय करनेवाले ज्ञानकूं अभावरूप ज्ञेयसैं भिन्न होनेतैं, ज्ञेय औ ज्ञानका अन्यपना सिद्ध है" इस पूर्वके ग्रंथभागविषै दूषित होनेतैं अन्य ज्ञेयपनैके अनंगीकारतैं सर्वज्ञताके असंभवतैं। या अभिप्रायसैं इहां सिद्धांती कहैहैं।

९२ इहां यह अर्थ है:—विज्ञानवादीके मतविषै जो ज्ञानकूं आपकरि आपका ज्ञेयपना मान्या है, ताके असंभवकूं "ज्ञेय औ ज्ञानका अन्यपना सिद्ध है" इस उक्त पूर्व ग्रंथके भागविषै कथन किया होनेतैं, परिशेषतैं ज्ञानकूं अन्यज्ञानके ज्ञेयपनैके हुये तिसका अन्यज्ञाता है, तिसका बी अन्य है; ऐसैं अनवस्थारूप दोष निवारण करनेकूं अशक्य है।

बी यह अनवस्थादोष तुल्यहीं है? [९४]सो बनै नहीं:—काहेतैं, ज्ञानकी एकताके संभवतैं । सर्व देश काल औ पुरुष आदिक अवस्थावाला एकहीं ज्ञान, नामरूप आदिक अनेक उपाधिनके भेदतैं, सूर्य्य आदिकके जल आदिक उपाधिगत प्रतिबिंबकी न्यांई, अनेक प्रकारका भासताहै, यातैं हमारे मतविषै यह अनवस्थादोष नहीं है ॥ तैसैं चैतन्यके नित्यपनैकरि अधिष्ठानपनैके सिद्ध हुये, इस श्रुतिविषै यह षोडश कलाका आरोप कहियेहै ॥ ननु, इस श्रुतितैं मृत्तिकाके पात्रविषै बदरीके फलकी न्यांई इसीहीं शरीरके भीतर परिच्छिन्न पुरुष है, सो नित्य कैसैं संभवै? सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं, प्राणआदिक कलाका कारण होनेतैं । जातैं शरीरमात्रकरि परिच्छिन्न प्राणकूं श्रद्धा आदिक कलाका कारणपना निश्चय करनेकूं शक्य नहीं है, यातैं सो पुरुषहीं सर्वकलाका कारण है । जातैं सो सर्वकलाका कारण है, तातैं शरीरकूं कलाका कार्य होनेतैं सो शरीर, पुरुषकी कार्य कलाके कार्यरूप अपनी उत्पत्तितैं पूर्व अविद्यमान आपशरीरविषै अपने कारणके कारण पुरुषकूं मृत्तिकाके पात्रविषै बदरीके फलकी न्यांई परिच्छिन्न करनेकूं समर्थ होवै नहीं ॥ जो कहै, जैसैं बीजका कार्य वृक्ष औ ताका कार्य आम्र आदिक फल, सो अपने कारणके कारण बीजकूं आपके भीतर करनेकरि परिच्छिन्न करताहै । तैसैं शरीर जो है सो अपने कारणके कारण पुरुषकूं बी आपके भीतर करनेकरि परिच्छिन्न करताहै? सो कथन बनै

९३ हे सिद्धांती! तुह्मारे मतविषै बी ज्ञानकूं अज्ञेयपनैके हुये ताके व्यवहारकी असिद्धि होवैगी । अन्य ज्ञानकरि ज्ञेयपनैके हुये अनवस्था होवैगी । या अभिप्रायसैं वादी शंका करैहैं ।

९४ हमारे मतविषै ज्ञानकूं स्वप्रकाश होनेकरि आपहीं आपके व्यवहारकी सिद्धितैं औ ज्ञानके भेदकेहीं अनंगीकारतैं अनवस्थाकी प्राप्तिहीं नहीं है; या अभिप्रायसैं, सिद्धांती अब समाधान करैहैं ।

नहीं:—काहेतैं फलके कारण वृक्षकी उत्पत्तिके कारण बीजकी औ फलके अंतर्गत बीजकी व्यक्तिके भेदतैं अरु बीजकूं सावयव होनेतैं औ पुरुषके व्यक्तिकी एकतातैं अरु पुरुषकूं निरवयव होनेतैं। दृष्टांतविषै कारणरूप बीजतैं अन्यहीं बीज वृक्षके फलसैं आवृत है औ दार्ष्टांतविषै तौ अपने कारणका कारणरूप सोई पुरुष शरीरके भीतर किया सुनियेहै। किंवा:—बीज अरु वृक्ष आदिकनकूं सावयव होनेतैं तिनका परस्पर आधार अरु आधेयभाव बनैहै, औ पुरुष निरवयव है औ कला अरु शरीर सावयव हैं, यातैं तिनका परस्पर आधार अरु आधेयभाव बनै नहीं। जब इस हेतुकरि आकाशका बी आधारपना शरीरकूं अघटित है, तब आकाशके कारण पुरुषका आधारपना अघटित है, यामैं क्या कहनाहै! कछुबी नहीं। तातैं हे वादी! तैंनैं बीजका जो दृष्टांत दिया सो दार्ष्टांतके समान नहीं, किंतु विषम है॥ जो कहै दृष्टांतसैं क्या प्रयोजनहै, प्रमाणरूप श्रुतिके वचनतैं पुरुषकूं परिच्छिन्नपना होवैगा? सो बनै नहीं:—काहेतैं वचनकूं कारकताके अभावतैं। जातैं श्रुतिका वचन वस्तुके अन्यथा करनेविषै समर्थ होवै नहीं, किंतु जैसा अर्थ

---

९५ फल औ बीजकी व्यक्तिके भेदतैं, इस दृष्टांतगत प्रथम हेतुकूं इहां वर्णन करैहैं।

९६ अब बीजकूं सावयव होनेतैं इस दृष्टांतगत द्वितीय हेतुकूं वर्णन करैहैं। इहां यह रहस्य है:—दृष्टांतविषै यद्यपि कारणरूप बीजकेहीं वृक्ष औ ताके फल औ ता फलके अंतर्गत बीजरूपसैं परिणामतैं तिन कारण औ कार्य्यरूप बीजनकी व्यक्तिभेदके होतेबी एकता है, तथापि तिस कारणरूप बीजकूं सावयव होनेतैं वृक्षकी न्यांईं फलके आकारसैं परिणामकूं प्राप्त भये अवयवनतैं भिन्न जे अवयव हैं, तिनकेहीं ता फलके अंतर्गत बीजरूपसैं परिणामतैं तिन बीजनके भेदकरि फलका औ ताके अंतर्गत बीजका आधारआधेयभाव होवैहै। इहां दार्ष्टांतविषै तो पुरुषकूं निरवयव होनेतैं शरीरका औ पुरुषका आधारआधेयभाव बनै नहीं।

होवै तैसै अर्थके प्रकाशनेविषै समर्थ होवैहै, तातैं "शरीरके भीतर पुरुष है" यह जो श्रुतिका वचन है सो "अंडके भीतर आकाश है" इस वचनकी न्यांई जानना। औ ज्ञानका निमित्त होनेतैं, दर्शन श्रवण मनन अरु विज्ञान आदिक लिंगनसैं शरीरके भीतर परिच्छिन्नकी न्यांई प्रतीत होवैहै। यातैं "हे सोम्य! शरीरके भीतर सो पुरुष है" ऐसैं कहियेहै। फेर आकाशका कारण हुया मृत्तिकाके पात्रसैं बदरीके फलकी न्यांई शरीरसैं परिच्छिन्न पुरुष है, ऐसैं मूढ पुरुष बी मनसैं बी कहनेकूं इच्छता नहीं, तब प्रमाणभूत श्रुति कहनेकूं इच्छती नहीं, यामैं क्या कहना है॥ ननु, "जिसविषै ये षोडश कला उपजेहैं" ऐसैं द्वितीयवाक्यविषै पुरुषके विशेषण अर्थ अध्यारोप कहा है, फेर "सो ईक्षणकूं करता भया" इत्यादिरूप तृतीयवाक्यसैं जो कलाकी उत्पत्तिका कथन सुन्या है, सो यद्यपि अधिक अर्थ बी है; तथापि कलाकी उत्पत्ति, किस क्रमसैं होवैहै, इस अर्थके जाननेके प्रयोजनतैं "सो ईक्षणकूं करता भया" इत्यादिरूप यह अधिक अर्थ कहियेहै। औ चेतनपूर्वकहीं प्राणादि कलाकी सृष्टि होवैहै, इस अर्थके जनावनेकूं चेतनके आश्रित ईक्षण (अवलोकन)का कथन है ॥ ऐसैं शंका समाधानरूप उपोद्घातकूं कहिके, अब तृतीयवाक्यके अर्थकूं कहैहैं:— जो षोडशकलावाला पुरुष भारद्वाज (सुकेशामुनि)नैं पूंछ्याथा, सो "किस कर्त्ताविशेष-के देहतैं निकसे हुये मैंहीं निकस्या होउंगा। वा किसके शरीरविषै स्थित हुये मैं स्थितिकूं प्राप्त होउंगा" ऐसैं प्राणआदिककी सृष्टिके शरीरतैं बाहिर निकसने अरु शरीरके भीतर स्थित होनेरूप फलकूं औ "प्राणतैं श्रद्धाकूं

९७ अन्यके गृहसैं गोरसके मांगनेवाली स्त्रीकी न्यांई प्रतिपादन करनेके योग्य अर्थकूं मनमैं राखिके ताके अर्थ अन्यअर्थका जो प्रतिपादन, सो उपोद्घात कहियेहै।

**स प्राणमसृजत। प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म्म लोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ ॥**

---

रचता भया" इत्यादिरूप क्रम आदिककूं विषय करनेवाले ईक्षण (ज्ञान)-कूं करता भया ॥ ३ ॥

**टीका:**—इहां यह सांख्यमतके अनुसारीनकी शंका है:—ननु, आत्मा अकर्त्ता है औ प्रधान (प्रकृति) कर्त्ता है। यातैं पुरुषके भोगमोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनकूं अंगीकार करिके प्रधान जो है, सो महत्तत्व आदिक आकारसैं प्रवृत्त होता है। तहां यह पुरुषकूं स्वतंत्रताकरि ईक्षणपूर्वक कर्त्तापनैका वचन अघटित है। किंवा सत्वादिक गुणोके साम्य (मिश्र अवस्था)मय प्रमाणप्रतिपादित प्रधानरूप सृष्टिकर्त्ताके होते, वा परमाणुकारणवादीके अनुसार ईश्वरकी इच्छाके अनुवर्ती परमाणुके होते, आत्माकूं कर्त्तापनैके अंगीकार किये, आत्माकूं बी एक होनेकरि कुलालरूप कर्त्ताके दंडादि सहकारी साधनकी न्यांई, सहकारी साधनके अभावतैं दुःखादि अनर्थके हेतु प्राणआदिक संसारके कर्त्तापनैके असंभवतैं आत्माकूं सृष्टिके कर्त्तापनैका वचन अघटित है। जातैं चेतनावान् वुद्धिपूर्वक कार्य्यका कर्त्ता पुरुष, आपके अनर्थकूं करता नहीं; यातैं बी आत्माकूं अनर्थरूप संसारके कर्त्तापनैविषै प्रवृत्ति संभवै नहीं। तातैं पुरुषके भोगमोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनसैं ईक्षणपूर्वककी न्यांई नियमित क्रमकरि वर्त्तमान अचेतन प्रधानविषै राजाके सर्व अर्थके कारक किंकरविषै "यह राजा है" इस आरोपकी न्यांई "सो ईक्षणकूं करता भया" इत्यादिरूप यह चेतनकी न्यांई

---

९८ इहां आदिशब्दसैं "लोकनविषै नामकूं रचता भया" यह आधार औ आधेयका भेद ग्रहण करियेहै।

आरोप है ? यह सांख्यवादीका कथन बनै नहीं:—काहेतैं आत्माके भोक्तापनैंकी न्यांई कर्त्तापनैंके संभवतैं। जैसैं सांख्यवादीके मतविषै चेतनमात्र अपरिणामी आत्माका बी भोक्तापना मान्या है. तैसैं वेदवादी हमारे मतविषै स्वरूपतैं अकर्त्ता हुये आत्माकूं बी मायाउपाधिका किया श्रुति उक्त जगत्का कर्त्तापना घटित है॥ जो सांख्यवादी कहै, हमारे मतविषै आत्माके अन्य तत्त्वके स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणामतैं आत्माकी अनित्यता अशुद्धता औ अनेकताके निमित्त चेतनमात्र स्वरूपके विकारतैं पुरुषके स्वरूपविषैहीं भोक्तापनैके हुये, चेतनमात्र स्वरूपका जो विकार ( अविवेकतैं परिणाम ) है, सो दोषके अर्थ नहीं, औ तुमारे वेदवादीनके मतविषै आत्माकूं सृष्टिके कर्त्तापनैके हुये आत्माका अन्यतत्त्वनके स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणामहीं होवैहै। यातैं आत्माकूं अनित्यता आदिक सर्व दोषनकी प्राप्ति होवैगी? [१००] सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं हमारे

---

९९ बालकविषै पीतरंगकरि युक्ततारूप गुणके योगसैं अग्निशब्दके प्रयोगकी न्यांई मुख्य ईक्षणकर्त्ताविषै विद्यमान नियमित क्रमकरि प्रवर्त्तमान होनेरूप गुणके योगतैं "सो ईक्षणकूं करता भया" ऐसा प्रधानविषै गौणप्रयोग है। सोई उपचार औ आरोप कहियेहै।

१०० पूर्वरूपके परित्यागसैं अन्यरूपकी प्राप्ति, परिणाम कहियेहै। सो परिणाम, सजातीय अन्यरूपकी प्राप्तिके हुये वा विजातीय अन्यरूपकी प्राप्तिके हुये अनित्यता आदिककूं संपादन करैहीं है। यातैं भोज्यके अविवेकरूप उपाधिका किया आत्माका भोक्तापना मानना योग्य है। तिसकारणकरि सो भोज्यके अविवेकरूप उपाधिसैं रचितपना तिस परिणामके कर्त्तापनैंविषैबी तुल्य है। इस अभिप्रायसैं आचार्य, मुख्यसमाधानकूं कहैहैं। इहां यह भाव है:—परमात्मारूप पुरुषकूं उपाधिकृत कर्त्तापनैंके संभवतैं औ भ्रांतिसैं इस परमात्मातैं भिन्न अपूर्णकाम जीवनके संभवतैं, तिनके पुरुषार्थरूप प्रयोजनका सृष्टापना तिसी प्रकारके चेतनरूप पुरुषकूं बी बनै है। यातैं चेतनरूप अधिष्ठानवाले अचेतनरूप प्रधानकूं सो जीवनके भोगमोक्षमय पुरुषार्थरूप प्रयोजनका सृष्टापना युक्त नहीं।

मतविषै वास्तव सहकारीसाधनरहित, अकर्त्ता, पूर्णकाम, एक आत्माकूं बी अविद्यारूप सहकारीके अधीन नामरूप उपाधि औ अनुपाधिके किये भेदके अंगीकारतैं आत्माकूं नाम रूप उपाधिका कियाहीं बंध मोक्ष औ ताके साधनरूप शास्त्रउक्त व्यवहार आदिक विशेष मानियेहै, औ परमार्थतैं अनुपाधिका किया, एकहीं अद्वितीय शुद्धबुद्धिसैं ग्रहण करनेयोग्य, सर्व तर्कयुक्त बुद्धिनका अविषय, अभय, औ कल्याणरूप तत्त्व मानियेहै। तिसविषै कर्त्तापना वा भोक्तापना औ क्रिया अरु कारकका फल नहीं है। काहेतैं, सर्वपदार्थनकूं अद्वैतरूप होनेतैं ॥ सांख्यवादी तो वेदतैं बाहिर होनेतैं पुरुषविषै अविद्यासैं आरोपितहीं कर्त्तापना औ क्रिया कारकका फल है, ऐसैं कल्पिके, फेर तातैं भयकूं पावते हुये परमार्थतैंहीं पुरुषके भोक्तापनैकूं इच्छतेहैं। औ पुरुषतैं अन्यतत्त्व प्रधानकूं परमार्थवस्तुरूपहीं कल्पते भये, अन्य नैयायिकनकरि शिक्षाकूं प्राप्त भयी बुद्धिवाले हुये खंडनकूं पावतेहैं। तैसैं अन्य जे नैयायिक हैं, वे सांख्यवादीनसैं खंडनकूं पावतेहैं ॥ ऐसैं परस्परविरुद्ध अर्थकी कल्पनातैं मांसके अर्थी प्राणीनकी न्यांई परस्पर विरुद्ध भये भेदरूप अर्थके देखनेवाले होनेतैं परमार्थतत्त्वतैं दूरहीं खींचे गयेहैं। यातैं मुमुक्षुजन तिनके मतकूं अनादर करिके वेदांतअर्थके तत्त्वरूप एकताके ज्ञानके तांई आदरवाले होवैं, इस प्रयोजनके लिये हमोंकरि इन तर्क करनेवाले सांख्यवादीनके मतविषै कछुक दोषका दर्शन कहियेहै, तिनके मतके खंडनके तात्पर्य्यसैं नहीं। तैसैं इहां यह अर्थ शास्त्रांतरविषै कहाहैः—"वेदवेत्ता जो है, सो तिन वादिनसैं विवादकूं करता हुया चिदाकाशविषै विरोधकी उत्पत्तिके कारण (परमार्थसैं भेददर्शन)कूं छोडिके, रक्षणकूं प्राप्त भई सद्बुद्धिवाला

१०१ या पदका यह अर्थ हैः—भेददर्शनकूं परस्पर वादीनसैं उक्त दोषकरि ग्रस्त होनेतैं अद्वैतहीं निर्दोष है; ऐसै निश्चयवाली बुद्धिकरी युक्त हुया।

हुया सर्व विकल्पनतैं शांत होवैहै" । किंवा[१०२]:—तुह्मारे सांख्यमतविषै भोक्तापनैं औ कर्त्तापनैंरूप दोनूं विकारनके विलक्षणपनैंका असंभव है, तातैं पुरुषविषै यह कर्त्तापनैंरूप जातितैं अन्य जातिरूप भोक्तापनैंकरि युक्त विकार कौंन है? जातैं पुरुष भोक्ताहीं है, कर्त्ता नहीं, औ प्रधान तो कर्त्ताहीं है, भोक्ता नहीं; ऐसैं तुमकरि कल्पना करियेहै सो कहो ॥ ननु, भोक्ता औ चेतनमात्र स्वरूपहीं जो पुरुष है, सो चेतनरूपसैं विकारकूं पावता है, अन्य तत्त्वनके परिणामसैं नहीं । प्रधान तो अन्यतत्त्वनके परिणामसैं विकारकूं पावताहै; यातैं सो प्रधान, अनेकरूप है अशुद्ध है औ जड है; तातैं विलक्षण एक शुद्ध औ चेतनरूप पुरुष है । यातैं तिन दोनूंके भिन्न भिन्न धर्मरूप कर्त्तापनैं औ भोक्तापनैंका बी विलक्षणपना है? यह सांख्यवादीकी शंका भई; [१०३]तहां सिद्धांती कहैहैं:—यह विशेष बनै नहीं, काहेतैं भोगकी उत्पत्तितैं पूर्व प्रधान औ पुरुषके विकारके भेदकूं कथनमात्र होनेतैं । जब[१०४] केवल चेतनमात्र पुरुषकूं भोगकी उत्पत्तिकालविषै भोक्तापना विशेष होवैहै औ जब भोगके निवृत्त भये पीछे तिसविशेषतैं रहित पुरुष चेतनमात्रहीं होवैहै;

---

१०२ "कछुक दोषका दर्शन करियेहै," ऐसैं जो पूर्व कहा ताहीकूं वर्णन करते हुये, कर्त्तापनैं आदिकका आरोपितपनाहीं सांख्यवादीकरि बी कहना योग्य है; ऐसैं कहैहैं ।

१०३ पुरुषका चेतनरूपसैं परिणाम जो तैनैं (सांख्यवादीनैं) कहा, सो क्या आगंतुक (उत्पत्तिनाशवाला) है, वा नहीं? द्वितीय पक्षविषै कर्मजन्य कदाचित् होनेवाला भोग असिद्ध होवैगा औ प्रथमपक्षविषै आगंतुक विलक्षणतावाला होनेकरि अनित्यता आदिककी प्राप्तिसैं पुरुषका प्रधानतैं अविशेष है॥ जो सांख्यवादी कहै भोगके अनंतर पुरुषकूं फेर अपनैरूपकरि स्थित होनेतैं अनित्यता आदिक दोष नहीं है; तब प्रधानकूं बी प्रलयविषै अपने रूपकरि स्थितिके अंगीकारतैं तिनका विशेष नहीं होवैगा; ऐसैं अब सिद्धांती दूषण देतेहैं ।

१०४ संक्षेपसैं कथन किये वाक्यका इहां वर्णन करैहैं ।

तब प्रधान बी तैसैं महत्तत्त्व आदिक आकारसैं परिणामकूं पायके पीछे प्रलयकालविषै तिस आकारकूं छोडिके प्रधानस्वरूपसैं स्थित होवैहै; इसरीतिसैं चेतनरूपसैं पुरुषके विकारकी कल्पनाविषै बी विचार किये हुये अर्थतैं प्रधानका औ पुरुषका कछुबी विशेष नहीं देखियेहै। यातैं सांख्यवादिनकरि प्रधान औ पुरुषका विशेष ( विलक्षण ) विकार है, ऐसैं वाणीमात्रसैं कहियेहै; परंतु सिद्ध होवै नहीं ॥ [१०५]जो कहै, भोगकालविषै बी पूर्वकी न्याईं चेतनमात्रहीं पुरुष है, ताका कदाचित् होनेवाला अन्यरूप नहीं, यातैं प्रधानतैं विशेष है। सो बनै नहीं:—काहेतैं, जब ऐसैं मानोगे तब पुरुषकूं परमार्थतैं भोग होवैगा। कर्मतैं जन्य कदाचित् होनेवाला भोग असिद्ध होवैगा ॥ जो[१०६] कहै भोगकालविषै चेतनमात्र पुरुषका विकार परमार्थरूपहीं है, तिसकरि सो भोगकालसंबंधी विकारमात्र भोग, पुरुषकूंहीं होवैहै, प्रधानकूं नहीं। यातैं भोगके सद्भाव औ असद्भावकरि प्रधान औ पुरुषका विशेष ( भेद ) है? सो[१०७] बनै नहीं:—काहेतैं ऐसैं हुये भोगकालविषै प्रधानकूं बी सुखादिक आकारसैं विकारवाला होनेतैं भोक्तापनैंकी प्राप्ति होवैगी॥ [१०८]जो कहै,

---

१०५ अब पुरुषका चेतनरूपसैं जो परिणाम है, सो आगंतुक अन्यरूप नहीं। ऐसैं पूर्वयुक्त दोनूं पक्षनमैंसैं द्वितीय पक्षकूं मानिके वादी शंका करैहै।

१०६ इस दोषके निवारण अर्थ आगंतुक परिणामकूं मानिके, भोगकालसंबंधी विकारमात्र भोग है। सो भोग, पुरुषकूंहीं होवैहै प्रधानकूं नहीं। ऐसैं भोगके सद्भावरूप विशेषमात्रसैं वादी शंका करैहै।

१०७ तहां बी क्या भोगकालसंबंधी विकारमात्र भोग है, किंवा भोगकालसंबंधी चेतनमात्रगत विकारवान्पना भोग है? ऐसैं विकल्प करिके, प्रथम पक्षविषै भोगकालमैं प्रधानकूं बी सुखादिक आकारसैं विकारवाला होनेतैं भोग होवैगा; ऐसैं सिद्धांती कहैहै।

१०८ अब वादी, द्वितीयपक्षकूं लेके शंका करैहै।

चेतनमात्रकाहीं जो विकार सो भोक्तापना है ? [१०९]तौ उष्णतारूप विकारतैं असाधारण धर्मवाले अग्नि आदिकनके अभोक्तापनैविषै कारणका असंभव होवैगा; कहिये अपने असाधारण विकारवाले अग्नि आदिकनकूं बी भोक्तापनैकी प्राप्ति होवैगी ॥ जो कहै प्रधान औ पुरुष दोनूंका एककालविषै भोक्तापना है ? सो बनै नहीं:- काहेतैं, प्रधानकूं परमार्थरूपताके असंभवतैं, पुरुषके समान पारमार्थिक भोक्तापना असिद्ध है । औ दोनूंकूं भोक्ता हुये परस्परके प्रकाशनेविषै दोनूं प्रकाशनके गुण प्रधानभावके असंभवकी न्याईं प्रधान औ पुरुषका परस्पर गुणप्रधानभाव ( शेषशेषीभाव ) जो पूर्व मान्या है, ताका असंभव होवैगा ॥ जो कहै, भोग[११०]रूप धर्मवाले

---

१०९ हे वादी ! तैंनैं चेतनमात्रकाहीं जो विकार, सो भोक्तापना है, ऐसैं कहा; तहां निश्चयके वाची एवशब्दके पर्य्यायरूप "हीं" शब्दसैं अन्य धर्म्मीगत विकारकी अपेक्षासैं रहित चैतन्यका विकार भोग है, ऐसैं कहियेहै; वा चैतन्यमात्रगत तिस चैतन्यका असाधारण ( आपहींका ) विकार भोग है, ऐसैं कहियेहै ? तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं:-काहेतैं सुखादिरूप प्रधानके विकार विना भोगकी असिद्धितैं । औ द्वितीयपक्ष बी बनै नहीं:- काहेतैं चैतन्यका असाधारण विकार भोग है, इसविषै हेतुके अभावतैं । यातैं अपना असाधारण विकार भोग है, ऐसैं कहना योग्य है । तैसैं हुये सर्व वस्तुनके विकारनविषै भोगके लक्षणकी औ सर्व वस्तुनविषै भोक्ताके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । काहेतैं, सर्व वस्तुकूं बी अपने असाधारण विकारवाला होनेतैं औ भोगकालसंबंधी असाधारण विकारवालेपना तो प्रधानकूं बी है । काहेतैं, प्रधानकूं भोगकालसंबंधी सुखादिरूप विकारवाला होनेतैं । ऐसैं अब सिद्धांती दूषण देतेहैं ।

११० ननु, भोग जो है सो सत्त्वगुणप्रधान चित्तरूपसैं परिणामकूं प्राप्त भई प्रकृतिकाहीं धर्म है; काहेतैं, ता प्रकृतिके विकारके संभवतैं । औ पुरुषका धर्म नहीं; काहेतैं तिस पुरुषकूं अविकारी होनेतैं । औ तिस पुरुषकूं भोगके अभावका प्रसंग नहीं, काहेतैं ताकूं तिस प्रकारके चित्तके

मुख्य सत्त्वगुणयुक्त चित्तविषै पुरुषके चेतनपनैंके प्रतिबिंबरूपतैं निर्विकारपुरुषकूं भोक्तापना है ? सो बनै नहीं:—काहेतैं, जब ऐसैं है तब पुरुषकूं परमार्थसैं सुखदुःखादि भोगरूप अनर्थके अभावतैं किसके निवारण अर्थ पुरुषके मोक्षका साधन शास्त्र रचियेहै ! किसीके बी निवारण अर्थ संभवै नहीं ॥ जो कहै परमार्थसैं यद्यपि पुरुषकूं अनर्थका अभाव है, तथापि अविद्यासैं आत्माविषै आरोपित अनर्थ ( भोग )के निवारणअर्थ शास्त्रकी रचना है ? तब "परमार्थतैं पुरुष भोक्ताहीं है कर्त्ता नहीं, औ प्रधान कर्त्ताहीं है भोक्ता नहीं, औ पुरुषतैं परमार्थसैं सत्‌रूप अन्यवस्तु ( प्रधान ) है," इस प्रकारकी यह सांख्यवादीकी कल्पना, वेदतैं बाहिर व्यर्थ औ निष्प्रयोजन है । यातैं सो मुमुक्षुनकूं आदर करनेके योग्य नहीं ॥ जो सांख्यवादी कहै, तुह्मारे वेदांतिनके सर्वकी एकतारूप पक्षविषै बी निवारण करनेके योग्य बंधके अभावतैं शास्त्रकी रचना आदिक मोक्षके साधनकी व्यर्थता है ? सो बनै नहीं:—काहेतैं आत्माकी एकताके निश्चयवाले पुरुषतैं विपरीत अज्ञानी पुरुषके प्रति दोषके संपादन करनेके अभावतैं । जातैं शास्त्रकर्त्ता आदिक औ तिसके फलके अर्थी पुरुषनविषै शास्त्रकी रचना निष्प्रयोजन है वा सप्रयोजन है, इस प्रकारकी सो कल्पना होवै । आत्माकी एकताके निश्चय किये हुये शास्त्रके कर्त्ता आदिक पुरुष, तिस आत्मातैं भिन्न नहीं हैं। तिन शास्त्रकर्त्ता आदिकनके अभाव हुये, यह शास्त्रकी रचना सप्रयोजन है वा निष्प्रयोजन है, ऐसी यह कल्पना अघटित है [ अथवा तिस एकताके निश्चयके अभाव हुये निवारण करनेके योग्य बंधआदिकके सद्भावतैं बंधकी निवृत्ति अर्थ यह शास्त्रकी कल्पना अघटित नहीं है ] । [१११]जातैं आत्माकी एकताकूं माननेवाले

---

प्रतिबिंबके तत्त्व ( निजरूपता ) मात्रसैं भोक्तापनैंका कथन होवैहै; ऐसैं सांख्यवादी शंका करैहै ।

१११ किंवा आत्माकी एकताके निश्चयके भये ता निश्चयके जनक हो-

तुजकरि आत्माकी एकताके निश्चय किये हुये शास्त्ररूप प्रमाणका प्रयोजन अंगीकार किया; तातैं शास्त्र सप्रयोजन है वा निष्प्रयोजन है, यह शंका करनेकूं बी अशक्य है। औ तिस आत्माकी एकताके निश्चय किये हुये कल्पनाका असंभव है । या अर्थकूं "जहां ( जिस ज्ञानदशाविषै ) तो इस पुरुषकूं सर्व आत्माहीं होता भया, तहां किसकरि किसकूं देखे" इत्यादिरूप यह शास्त्र, कहता है। "जहां ( परमार्थ वस्तुस्वरूपतैं अन्य अविद्याके विषयरूप एकताके निश्चयकी अभावदशाविषै ) द्वैतकी न्यांई होवैहै, तहां अन्य अन्यकूं देखता है" इत्यादिरूप यह बृहदारण्यक उपनिषद्रूप शास्त्र, अज्ञानीविषै शास्त्रकी रचना आदिकके संभवकूं कहता है। "पर औ अपररूप विद्या औ अविद्या भिन्नरूप हैं" इत्यादि शास्त्रके आदिविषैहीं विद्या औ अविद्याका भेद सूचन किया है। यातैं वेदांतशास्त्ररूप प्रमाण राजाकी युक्तिरूप भुजाकरि रक्षित इस आत्माकी एकतारूप देशविषै तार्किकमतके वादकरि युक्त योधनका प्रवेश होवै नहीं ॥ इस कथनकरि ब्रह्मकूं अविद्याकृत नाम रूप उपाधिकरि रचित अनेक शक्ति औ साधनके किये अनेकपनैंके सद्भावतैं, ब्रह्मकूं सृष्टि आदिकनके कर्त्तापनैविषै साधनका अभावरूप दोष औ आपके अनर्थका कर्त्तापना आदिक दोष जो पूर्व नेडेहीं सांख्यवादीनैं कहाथा, सो निषेध किया जानना ॥ सांख्यवादीनैं जो पूर्व दृष्टांत कहा था किः—राजाके सर्व अर्थके करनेवाले कार्य्यके कर्त्ता किंकरविषै उपचारतैं "यह राजाके कार्य्यका कर्त्ता पुरुष राजा है" ऐसैं कहियेहै? सो दृष्टांत इहां बनै नहींः—काहेतैं "सो ईक्षणकूं करता भया" इस प्रमाणरूप श्रुतिके मुख्य अर्थके बाधतैं। "यजमान पाषाण है" इत्यादि

नेकरि शास्त्रकी प्रयोजनसहितताकूं अपने अनुभवकरि सिद्ध होनेतैं, तिस आत्माकी एकताके निश्चयवाले पुरुषकरि यह शंका करनेकूं बी शक्य नहीं; ऐसैं अब कहैहैं।

स्थलविषै जहां शब्दका मुख्यअर्थ संभवै नहीं, तहांहीं शब्दकी गौणीवृत्तिकी कल्पनारूप उपचार देख्या है । [112] ईहां प्रधानके पक्ष-विषै तो अचेतनरूप प्रधानकी मुक्त औ बद्धपुरुषनके भेदकी अपेक्षासैं औ कर्त्ता कर्म देश अरु कालरूप निमित्तकी अपेक्षासैं पुरुषके प्रतिबंध अरु मोक्ष आदिक फलके अर्थ नियमित प्रवृत्ति बनै नहीं । हमोंकरि उक्त सर्वज्ञ ईश्वरके कर्त्तापनैके पक्षविषै तो उक्त प्रवृत्ति बनै है ॥ ऐसैं परपक्षकूं खंडन करिके । अब श्रुतिके व्याख्यानकूं करते हुये " सो प्राणकूं सृजता भया " इस वाक्यके तात्पर्यरूप अर्थकूं कहैहैं:—ईश्वररूप पुरुषकरिहीं राजाकी न्यांई सर्व कार्यविषै अधिकारी ऐसा प्राण सृजियेहै ॥ ऐसैं तात्पर्यार्थकूं कहिके अब प्रश्नपूर्वक अक्षरार्थकूं कहैहैं:—कैसैं सृजता भया ? तहां कहैहैं:— सो पुरुष, उक्त प्रकारसैं तीनकालवर्त्ती वस्तुनकूं विषय करनेवाले ज्ञानरूप ईक्षणकूं करिके सर्वके **प्राण**-मय ( समष्टिप्राणरूप ) हिरण्यगर्भनामक सर्व प्राणिनके करणोके आधाररूप अंतरात्मा-कूं **सृजता भया** । इस प्राणतैं सर्व प्राणिनकी शुभकर्मविषै प्रवृत्तिकी कारणरूप **श्रद्धाकूं** सृजता भया । ताके पीछे कर्मफलके उपभोगके साधनरूप देहके अधिष्ठान औ कारणरूप पंचीकृत पंचमहाभूतनकूं सृजता भया । शब्दगुणवाले **आकाशकूं**; औ अपने गुण स्पर्शकरि औ कारणके गुण शब्दकरि युक्त दो गुणवाले **वायुकूं**, तैसैं

---

११२ प्रधानके पक्षविषै केवल ईक्षणकी प्रतिपादक श्रुतिका असंभवरूप दोष है, ऐसैं नहीं; किंतु वस्तुतैं तो ताकूं जगत्का सृष्टापना बी संभवै नहीं, ऐसैं अब कहैहैं । इहां यह अर्थ है:—प्रधानकी मुक्त पुरुषनकूं छोडिके बद्धपुरुषनके प्रतिहीं प्रवृत्ति औ कर्त्ता कर्म आदिककी अपेक्षासैं बंध मोक्ष आदिकशब्दके वाच्य भोग मोक्षके अर्थ वियमित ( व्यवस्था-वाली ) प्रवृत्ति संभवै नहीं । इस कथनकरि पुरुषके अर्थ, भोग मोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनकूं अंगीकार करिके, प्रधान प्रवृत्त होताहै । ऐसैं जो पूर्व शंकाके अवसरविषै सांख्यवादीनैं कहा था, सो खंडन किया ।

अपने गुण रूपकरि औ कारणके गुण शब्द औ स्पर्शकरि युक्त तीन गुणवाले तेजकूं, तैसें असाधारण ( आपके ) गुण रसकरि औ कारणके गुण शब्द स्पर्श अरु रूपके मिलावनेकरि च्यारी गुणवाले जलकूं, तैसें अपने गुण गंधकरि औ कारणके गुण शब्द स्पर्शरूप औ रसके मिलावने करि पांच गुणवाली **पृथिवीकूं** सृजता भया। तैसें तिनहीं पंचभूतनसें अपंचीकृत अवस्थाविषै ज्ञानके अर्थ औ कर्मके अर्थ, दशसंख्यावाले दो प्रकारके **इंद्रियकूं** औ तिस इंद्रियके ईश्वर ( नियामक ) शरीरके भीतर स्थित संशय अरु संकल्प आदिक लक्षणवाले **मनकूं** सृजता भया। ऐसैं प्राणीनके कार्य औ कारणकूं सृजिके तिनकी स्थितिके अर्थ तंडुल औ यव आदिरूप **अन्नकूं** सृजता भया। पीछे तिस भोजन किये **अन्नतैं** सर्व कर्मविषै प्रवृत्तिके साधन **वीर्य** ( बल )-कूं सृजता भया। अंतःकरणकी अशुद्धिकरि भया जो पापाचरण, तिन पापनकरि संकर-( मिश्रभाव )कूं प्राप्त भये तिस बलवाले प्राणीनके संकरके निवारण अर्थ चित्तशुद्धिके साधन **तपकूं** सृजता भया। पीछे, तपतैं शुद्ध भये हैं अंतरके औ बाहिरके करण जिनोके, ऐसै प्राणीनके अर्थ कर्मके साधनभूत ये ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद औ अथर्वणवेदरूप **मंत्र** प्रगट होते भये। तिन मंत्रनतैं अग्निहोत्रादिरूप **कर्म** होता भया। तिस कर्मतैं कर्मके फलरूप चतुर्दश-**लोक** होते भये। तिन लोकनविषै उत्पन्न भये प्राणीनका देवदत्त यज्ञदत्त आदिरूप **नाम** होता भया ॥ [११३] इसै रीतिसैं ये षोडश कला प्राणीनकी अविद्या आदिक दोषरूप बीजकी अपेक्षासैं, तिमिर दोष-

---

११३ ननु, ईश्वरकूं स्रष्टापनेके कथनसैं कलाका सत्यपना अंगीकार किया चाहिये। काहेतैं, शुक्तिरजत आदिकरूप आरोपविषै स्रष्टपनै ( उत्पन्न होने )के व्यवहारके अभावतैं ? यह आशंकाकरिके नेत्रविषै अंगुलिके धारण औ नेत्रमर्दन आदिक प्रयत्नसैं उत्पन्न किये दोचंद्र मशक औ म-

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते । स एषोऽकलोऽमृतो भवति । तदेष श्लोकः ॥ ५ ॥

---

करि युक्त दृष्टिसैं सृजे हुये दोचंद्र मशक अरु मक्षिका आदिककी न्याईं औ स्वप्नके द्रष्टाकरि सृजे हुये सर्व स्वप्नके पदार्थनकीं न्याईं सृजी हुई हैं । फेर[११४] समुद्रविषै नदीनकी न्याईं तिसीहीं पुरुषविषै नाम रूप आदिक उपाधिनके भेदकूं छोडिके अतिशयकरि लीन होवैहैं ॥ ४ ॥

टीकाः—सो समुद्रविषै नदीनके लयका दृष्टांत कैसैं है? तहां कहैहैंः—जैसैं लोकविषै ये नदीयां, वहन करती हुयी औ समुद्र है अयन (आत्मभाव) जिनका, ऐसी हुई समुद्रकूं पायके नामरूपके तिरस्काररूप अस्तकूं पावैहैं । औ अस्तकूं प्राप्त भई तिन

---

क्षिका आदिकके आरोपके देखनेतैं, औ "अब जाग्रत्‌के अनंतर रथनकूं औ रथसैं जुडनेंवाले अश्वनकूं औ मार्गनकूं सृजता है" इस श्रुतिविषै उत्पन्न होनेकरि उक्त स्वप्नके पदार्थनकी भ्रमरूपताके देखनेतैं, ईश्वररचित कलाका सत्यपना मान्या चाहिये । यह कथन बनै नहीं, या अभिप्रायसैं अब आचार्य्य कहैहैं । इहां तिमिरशब्द जो है, सो नेत्रविषै अंगुलिके धरने आदिक निमित्तके ग्रहण अर्थ है ।

११४ ऐसैं आत्माके निश्चय अर्थ अध्यारोपकूं कहिके, अब ताके अपवादकूं प्रकट करैहैं ।

**अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥ ६ ॥**

---

नदीन-के गंगा औ यमुना इत्यादि लक्षणवाले **नाम औ रूप** ये दोनूं **नाशकूं पावतेहैं** । तिन नामरूपके नाश भये पीछे अवशेष रहा जो जलरूप वस्तु, सो **समुद्र ऐसैंहीं कहियेहै** । जैसैं यह दृष्टांतहै, **ऐसैंहीं** उक्त लक्षणवाला प्रसंगविषै प्राप्त भया पुरुषरूप जो परिद्रष्टा (अपने प्रकाशके कर्त्ता सूर्यकी न्याई च्यारी ओरतैं स्वरूपभूत दर्शनका कर्त्ता ) है, **इस परिद्रष्टाकी** ये प्राण आदिक षोडश **कला** हैं । उक्त षोडश कला नदीनके अयनरूप समुद्रकी न्याई **पुरुष है अयन** ( आत्मभावकी प्राप्ति ) **जिन कला-की, ऐसी हुयी पुरुष-रूप** आत्मभाव-कूं **पायके** नामरूपके तिरस्काररूप **अस्तकूं पावैहैं** । **तिन कला-के** प्राण आदिक लक्षणवाले **नाम रूप, नाशकूं पावतेहैं** । नामरूपके नाश भये पीछे जो अविनाशी तत्त्व अवशेष रहताहै, सो ब्रह्मविद्‌नकरि **पुरुष ऐसैं कहियेहै** ॥ जो पुरुष, गुरुनैं दिखाया है कलाके लयका मार्ग जिसकूं, ऐसा हुया इस रीतिसैं जानताहै, **सो यह** पुरुष, अविद्या काम औ कर्मसैं जन्य प्राण आदिक कलाके विद्यासैं नाश भये, **अकल** ( कलारहित ) **होवैहै** । जातैं अविद्याकृत कलारूप निमित्त ( उपाधि ) का किया आत्माकूं देहतैं निकसने आदिक शब्दका वाच्य मरण आदिक व्यवहाररूप मृत्यु हैं, तातैं तिन कलाके नाश भये यह पुरुष, कलारहित होनेतैंहीं **अमृत** ( मरणरहित ) **होवैहै** ॥ **तिसीहीं इस अर्थ-विषै यह श्लोक** ( आगिला वाक्यरूप वेदका मंत्र ) **वर्त्तता है** ॥ ५ ॥

**टीकाः—रथचक्रके परिवाररूप अरें, जैसैं रथ-के चक्र-की नाभि**[११५]

---

११५ रथके चक्रकी नाभि ( मध्यके काष्ठ )तैं चारी औरसैं रथ-

**तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद । नातः परमस्तीति ॥ ७ ॥**

**ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्य इति ॥ ८ ॥**

इति प्रश्नोपनिषदि षष्ठः प्रश्नः समाप्तः ॥ ६ ॥

---

विषै प्रवेशकूं प्राप्त भये तिस रथचक्रके आश्रित होवैहैं, तैसैं प्राण आदिक कला, जिस पुरुष-विषै उत्पत्ति स्थिति औ लय, इन तीन कालनविषै आश्रित होवैहैं; तिस कलाके आत्मारूप जाननेकै योग्य पूर्ण होनेतैं वा शरीररूप पुरीन-विषै रहनेतैं पुरुषपदके वाच्य पुरुषकूं जैसा है तैसा जानना । हे शिष्यो ! तुह्मारेकूं मृत्यु जो है, सो पीडाकूं मति करहू ॥ तुम जातैं पीडाकूं प्राप्त भये हुये दुःखीहीं हो, यातैं तुह्मारेकूं सो दुःख मति होहू । यह अभिप्राय है ॥ ६ ॥

**टीकाः**—पिप्पलाद नामा मुनीश्वर, इस रीतिसैं तिनकूं उपदेश करिके फेर तिन शिष्यन-कूं कहते भये । पिप्पलाद उवाचः—हे शिष्य! इतनाहीं जाननेयोग्य परब्रह्म है, इसकूं मैं जानताहूं । इसतैं अन्य अत्यंत श्रेष्ठ जानने योग्य नहीं है। ऐसैं शिष्यनकूं अज्ञात अरु अवशेष रखनेके योग्य अन्यवस्तुके सद्भावके आशंकाकी निवृत्ति अर्थं, औ हम कृतार्थ भये ऐसी कृतार्थ बुद्धिके जनन अर्थ, पिप्पलाद मुनीश्वर कहते भये ॥ ७ ॥

**टीकाः**—ताके पीछे गुरुसैं उपदेशकूं प्राप्त भये वे शिष्य कृतार्थ

---

क्रकी नाभिविषै औ मार्गकूं स्पर्श करनेवाली धारारूप नेमिविषै परोये हुये वक्रकाष्ठविशेष, रथचक्रके परिवार कहियेहैं । तिनहींकूं अरा औ अर बी कहैहैं ।

हुये, तिस गुरुके तांई ब्रह्मविद्याके प्रतिउपकार (बदला)कूं न· देखते हुये क्या करते भये? तहां कहियेहैः—वे शिष्य, तिस गुरुकूं दोनूं पादनविषै पुष्पांजलिके गेरनेसैं औ मस्तककरि प्रणिपातसैं पूजन करते हुये कहते भये ॥ क्या कहते भये? तहां कहैहैं; शिष्या ऊचुः—हे गुरो! आप हमारे नित्य अजर अमर अभय ब्रह्मरूप शरीरके विद्यासैं जनक होनेतैं पिता हो। जो तुमहीं विपरीत ज्ञानमय जन्म जरा मरण रोग औ दुःख आदिक मकरकरि युक्त अविद्या-रूप महासमुद्र-तैं विद्यारूप नौकासैं महासमुद्रके पारकी न्याई अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष नामवाले परपारके ताई जातैं हमकूं तारते (प्राप्त करते) हो, यातैं तुह्मारा हमारे प्रति अन्य पितातैं अधिक पितापना घटित है ॥ जब अन्य पिता बी शरीरमात्रकूं जनता है, तथापि लोकविषै अत्यंत पूजने योग्य है; तब अत्यंत अभयके दाता गुरुरूप पिताके पूजनेकी योग्यताविषै क्या कहना है ॥ यातैं ब्रह्मविद्याके संप्रदायके कर्त्ता परम ऋषिनके ताईं नमस्कार होहू। परम ऋषिनके ताईं नमस्कार होहू ॥ इहां दो वार जो कथन है, सो आचार्यनविषै आदरके अर्थ है॥८॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गत षष्ठप्रश्नभाष्यभाषादीपिका समाप्ता ६

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्य पीतांबरशर्मविदुषा श्रीमत् भगवंत्पादकृत भाष्यानुसारेण विरचिता प्रश्नोपनिषद्भाष्यभाषादीपिका समाप्ता ४

---



राम राम राम राम



